

नोंदणी क्रं. एफ.१६०९४(मुंबई)





महाराष्ट्र शासन
मराठी भाषा विभाग
राज्य मराठी विकास संस्था
एल्फिन्स्टन तांत्रिक विद्यालय, ३, महापालिका मार्ग,
धोबीतलाव, मुंबई - ४००००१ दूरध्वनी : (०२२) २२६३१३२५ / २२६५३९६६
संकेतस्थळ https://rmvs.marathi.gov.in इ-पत्ता rmvs_mumbai@yahoo.com

निवेदन

महाराष्ट्र राज्याचे सांस्कृतिक धोरण २०१० अंतर्गत मराठी भाषेतील प्रतिमुद्राधिकाराची (कॉपीराइटची) मुदत संपलेले दुर्मिळ ग्रंथ महाजालावर उपलब्ध करून द्यावे असे म्हटले आहे. त्यानुसार मराठी भाषा विभागाच्या आदेशाप्रमाणे (शासननिर्णय क्र. रासांधो १०१२/ प्र. क./२०१२/भाषा-३ दि. २८ मार्च २०१३) राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे असे ग्रंथ आणि नियतकालिके महाजालावर उपलब्ध करून देण्याचा प्रकल्प राबवण्यात येत आहे. त्याच बरोबर प्रतिमुद्राधिकाराच्या कक्षेत येणारी काही साधनेही प्रतिमुद्राधिकारधारकांची उचित अनुमती प्राप्त झाल्यास संस्थेद्वारे संगणकीकृत करून अभ्यासकांसाठी उपलब्ध करून देण्यात येत असतात.

चित्रकार दीनानाथ दलाल ह्यांनी सन १९४७ ते १९७१ दरम्यान प्रसिद्ध केलेल्या दीपावली ह्या नियतकालिकाच्या अंकांचे संगणकीय स्वरूपात जतन करण्याबाबतचा प्रस्ताव चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई ह्या संस्थेद्वारे राज्य मराठी विकास संस्थेस प्राप्त झाला होता. सदर प्रस्तावानुसार दुर्मिळ मराठी ग्रंथांचे संगणकीकरण ह्या प्रकल्पांतर्गत दीपावली नियतकालिकांचे अंक संगणकीकरण करून ते सार्वजनिकरीत्या आणि विनामूल्य उपलब्ध करून देण्यासंदर्भात राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे सहमती दर्शविण्यात आली.

चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई ह्या संस्थेद्वारे सदर अंक संगणकीकरणासाठी उपलब्ध करून देण्यात आले. सदर संस्थेच्या सहकार्यामुळेच आपल्याला ही सामग्री संगणकीय स्वरूपात उपलब्ध होत आहे.

या अंकांच्या पीडीएफ प्रती आपण विनामूल्य उतरवून घेऊ शकता. असे करताना खालील सूचना लक्षात घेऊन त्यांचे पालन करावे.

१. सदर ग्रंथांच्या पीडीएफ प्रती या वैयक्तिक वापरासाठी विनामूल्य उतरवून घेता येतील तसेच इतरांनाही विनामूल्य देता येतील. पण कोणत्याही कारणासाठी त्याचा व्यावसायिक वापर करता येणार नाही.
२. सदर ग्रंथांचे दुवे इतरांना देताना त्यासाठी कोणतीही रक्कम आकारता येणार नाही.
३. पीडीएफ प्रतींवर असलेली राज्य मराठी विकास संस्था, मुंबई व चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई यांची मुद्रा आपणास काढता येणार नाही.
४. आपल्या अभ्यासासाठी, संशोधनासाठी या सामग्रीचा उपयोग करताना आपण योग्य तो श्रेयनिर्देश केला पाहिजे.

वरील अटींचा भंग झालेला आढळल्यास कायदेशीर कारवाई करण्यात येईल.

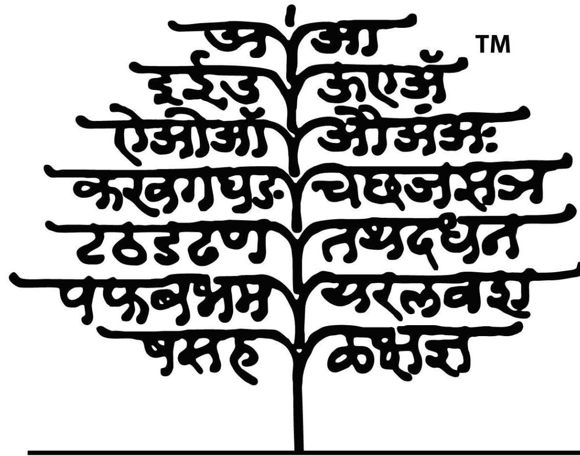
स्पष्टीकरण : सदर सामग्री ही केवळ ऐतिहासिक दस्तऐवज म्हणून उपलब्ध करण्यात आली असून या सामग्रीतून व्यक्त होणारी मते, विचारसरणी इ. त्या त्या लेखक, संपादक इ. कर्त्यांची आहे. त्यांपैकी कोणतेही मत, विचारसरणी इ. यांचा पुरस्कार महाराष्ट्र शासन, मराठी भाषा विभाग, राज्य मराठी विकास संस्था व चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई यांपैकी कुणीही करत नसून त्या त्या मताचे वा विचारसरणीचे दायित्व उपरोक्त विभागांवर/ संस्थांवर असणार नाही.

सदर अंक केवळ अभ्यासकांच्या सोयीसाठी संगणकीय स्वरूपात उपलब्ध करण्यात येत असून अंकांतील सामग्रीचे (लेखन, मांडणी, छायाचित्रे, रेखाचित्रे इ.) प्रतिमुद्राधिकार त्या त्या लेखकांकडे अथवा प्रकाशकांनी त्या त्या वेळी केलेल्या व्यवस्थेनुसार आहेत ह्याची नोंद घेण्यात यावी. त्या सामग्रीसंदर्भातील कोणतेही अधिकार वा दायित्वे राज्य मराठी विकास संस्था, मराठी भाषा विभाग किंवा महाराष्ट्र शासन ह्यांच्याकडे असणार नाहीत.





अनुक्रमणिका



मराठीचा विकास : महाराष्ट्राचा विकास

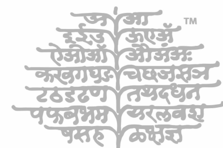
राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे
संगणकीकृत

दीपावली

DIPAVALI' 55

हिन्दी वार्षिक
मूल्य 2 रु.

अनुक्रमणिका


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



अनुक्रमणिका

'दीपावली' वार्षिक के प्रकाशक द्वारा अपूर्व भेंट !

शृङ्गार-नायिका

हिन्दी और मराठी भाषाओं में

संपूर्ण राष्ट्र के द्वारा प्रशंसित

सांकृतिक जीवन की शाश्वत रेखा!



'भारतीय प्रकाशन व चित्रकला के क्षेत्र में अनुपम और अद्वितीय... नितान्त सुन्दर संग्राह्य पुस्तक... नवीन और कुछ विशेष करके दिखाने का समर्थ प्रयत्न... रंजक व उद्बोधक... चित्र व शब्दकला का नयनरम्य संवाद... सर्वसाधारणों और पण्डितों को वैसे ही रसिकों और चित्रकला के साधकों को उपयुक्त... कामसूत्र, अनंगरंग, नागर-सर्वस्व, रतिरहस्य, पंचरूपक, नाट्यशास्त्र, दशरूपक, प्रतापरुद्रीय, रसमंजरी, शृंगारतिलक, शृंगारप्रकाश, शृंगारमंजरी, गाथासप्तशति इन श्रेष्ठ ग्रन्थों का पगपग पर आधार... संग्राह्य ग्रन्थ... इस प्रकार के प्रकाशन क्वचित् पाए जाते हैं। साढ़ेबारह रुपयों में भी सस्ता।'

लेखक : स. अ. जोगळेकर
चित्रकार : दीनानाथ दलाल

सप्तरंग के दस चित्र : साठ से अधिक रेखाचित्र पृष्ठसंख्या चौरासी : मोहरदार काग़ज़ : आकार १०"×१३" : घने कार्ड बोर्ड का बाइंडिंग : मूल्य साढ़े बारह रुपये। अधिक र. पो. सव्वा रुपया।

इस प्रकार के असंख्यात् स्तुतिसुमनों की वर्षा से वर्षित!
प्रकाशन जगत् का स्थायी कण्ठहार!

भेंट देनेयोग्य एकमेव पुस्तक!

प्रकाशक : दलाल आर्ट स्टुडिओ, ४०-४२ केनेडी ब्रीज बम्बई ४

प्रमुख विक्रेता : बॉम्बे बुक डेपो, बम्बई ४ — कॉण्टिनेण्टल प्रकाशन, पूना २
तथा भारतवर्ष के सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्य

दीपावली



१९५५

तृतीय वर्ष

साहित्य - कला संगम

संपादक दीनानाथ दलाल

दीपावली हिन्दी वार्षिक के इस दूसरे संकलन को प्रस्तुत करते समय हमें अपार आनन्द होता है। गत वर्ष सम्पूर्ण भारतवर्ष ने दीपावली का अत्यन्त उत्साह के साथ स्वागत किया, जिस के लिए हम संपूर्ण रसिक जन मात्र के कृतज्ञ हैं।

इस वर्ष के संकलन में भारतीय इतिहास के गौरवशाली प्रणयी अधिनायक-नायिकाओं के चित्र प्रस्तुत किए जा रहे हैं। चित्रकला के प्रति विशेष अनुराग होने के कारण सामयिक चित्रकला के प्रतिनिधि पाँच मॉडर्न आर्ट के पेंटिंग्ज तथा काशिमर के विभिन्न रेखाचित्र, विशेष रूप में संकलित किए हैं।

चित्रकला के दृश्य भाग का अधिकांश उत्तरदायित्व छापेखाने पर होता है, इस दृष्टि से चित्रोंकी बढ़िया छपाई का सम्पूर्ण श्रेय भारतीय कीर्ति के ऑफसेट मुद्रक श्री शिवराज फाईन आर्ट ॲण्ड लिथो वर्क्स नागपूर को देना चाहिए। हमारे और उनके इस प्रथम सम्पर्क पर उन्होंने यह जो अविशिष्ट स्नेहजनित कार्यकुशलता दिखलाई है अतः हम संपूर्ण मन से धनवटे बन्धुओं के कृतज्ञ हैं। वैसे ही सर्वोदय प्रिंण्टिग प्रेस, जय गुजरात प्रिंण्टिग प्रेस व सिद्धलिथो वर्क्स के सञ्चालकों व सेवकों की सत्वर कार्यतत्परता के कारण हम उपकृत हैं।

मे० टॉम ॲण्ड बे के श्री गणेश राव ताम्बे जी का बहुमूल्य सहयोग शब्दों में आँका नहीं जा सकता है।

'दीपावली' की सहायता करते हुए जिन विभिन्न भाषी लेखकों ने हमारी सहायता की है, उनके भी हम आभारी हैं। अकृत्रिम स्नेह के कारण हमारे प्रकाशन कार्य को उचित सहयोग देनेवाले हमारे मित्र श्री सुधाकर तोर्णे व कमलाकान्त कामत इनसे दीपावली भविष्यत् में भी अनुराग पा सकेगी ऐसा विश्वास है, उन के भी हम आभारी है।

यह दीपावली व नूतन संवत्सर हमारे रसिकों, पाठकों, लेखकों, विक्रेताओं व विज्ञापन दाताओं को सुखपूर्ण व मङ्गलदायी हो!

चित्रछपाई	मुद्रण स्थल	प्रकाशन स्थल
श्री शिवराज फाईन आर्ट ॲण्ड लिथो वर्क्स-नागपूर	जय गुजरात प्रिंण्टिग प्रेस गाँवदेवी-बम्बई ७	दलाल आर्ट स्टुडिओ ४०।४२ कॅनेडी ब्रीज बम्बई ४

मुद्रक: प्रकाशक: दीनानाथ दलाल • सहसंपादक: विजय पानसरे



कलाकृतियों का परिचय

बि ल्व म ङ्ग ल : **बिल्वमङ्गल – चिन्तामणि :** बिल्वमङ्गल का परिचय 'कृष्णकर्णामृत' के रचनाकार के नाते पाया जाता है। बिल्वमङ्गल वैष्णव सम्प्रदाय के द्राविड़ देशी माननीय तत्वज्ञ श्री. विष्णु स्वामीजी का शिष्य था। तथापि 'कृष्णकर्णामृत' कार 'बिल्वमङ्गल' के बारेमें ऐतिहासिक सत्यनिष्ठ जानकारी अप्राप्य है। तथापि सर्वश्रुत किम्वदन्ती की वंग देशीय भूप्रदेश की कहानी के अनुसार, बिल्वमंगल का चिन्तामणि नामक एक धार्मिक प्रवृत्तिप्रधान स्त्री के साथ सम्बन्ध था। वह स्त्री केवल अपने पिता के श्राद्ध के दिन पर इस से दूर रहती। ऐसे ही एक श्राद्ध दिनपर बिल्वमंगल को चिन्तामणि का विरह जलाने लगा और इसी धुन में साँप की रस्सी कर के वह चिन्तामणि के घर में गया। इस प्रयास में साँप ने उसे काँटा। चिन्तामणि ने अपने अथाह प्रणय की सम्पूर्ण श्रद्धा लगा कर उस की शुश्रूषा की और उसके प्राणों को बुझने से बचाया। होश में आने पर चिन्तामणि का तीव्र विद्रूप रूप उस के सामने अवलोकन के लिए खड़ा था। बिल्वमङ्गल के अन्तरंग के पटल खुल पड़े। श्री कृष्ण भक्ति सुधाने उसे सम्पूर्णतः मोहित किया। कहा जाता है इस महान् कृष्ण भक्त कवि की मृत्यु वृन्दावन पर हुई।

गं गा ल ह री : **जगन्नाथ पण्डित – लवंगी :** 'रसगङ्गाधर' कार जगन्नाथ पण्डित 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्' इस स्थायी उक्ति से कला क्षेत्र में नित स्मरणीय बना है। रसिक रुचि प्रिय 'भामिनी–विलास' व धार्मिकों का मनुहार 'गङ्गालहरी' रचनायें भी जगन्नाथ पण्डित की इत्तुंग प्रतिभा की शाश्वत रेखाएँ हैं। आन्ध्र देशीय गोदावरी तीरस्थ इस कलाकार की बहुमुखी प्रतिभा तथा काव्य कौशल ध्यान में आते के कारण सामनिक बादशाह शाहजहाँ ने उदार मन से 'पण्डितराज' इस सुयोग उपाधिद्वारा जगन्नाथ कवि को श्रेष्ठता ने सम्मानित किया। मुगल सम्राट के विशेष अनुराग का पात्र होने के कारण कविराज को बारम्बार अन्तःपुर में आना–जाना पड़ता। एक बार राजा के साथ शतरंज खेलते समय तृषित नरेशने किसी को जल लाने को कहा। जल के कलश को वाहित करते हुए स्वरूप अनुपमा राजकन्या लवंगिका उस स्थान पर आयी। तृषा को शान्त करने के बाद राजाने पण्डितराज से अनुग्रह किया कि राजकन्या को किसी श्लोक में अनुस्यूत करे। चपल प्रतिभा–पुत्र ने सत्वर एक श्लोक कहा : जिसे सुनकर राजा को बड़ा सन्तोष हुआ और इसलिए अतीव प्रसन्नतासे कहा, 'हे कवि! चाहे वह माँगो!' पण्डितराज ने मन का भाव पुनरपि एक श्लोक में व्यक्त किया। संक्षेप में भाव यह था कि मैं लवंगी को चाहता हूँ। राजाने उन दोनों का विवाह बड़ी धूमधाम से समारोहित किया। कवि को राज्याश्रय प्राप्त था। सालों तक के सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करते रहे। अपनी वृद्धावस्था में जगन्नाथ पण्डित काशी में जाकर रहने लगे। यवन संसर्ग के कारण 'भ्रष्ट' बने इसे 'द्विज' को काशी के ब्राह्मणोंने 'शुद्ध' कर लेना चाहा। अपनी 'जीवनसाथी लवंगी' के साथ यदि शुद्धीकरण की क्रिया हो सकेगी, तो मैं उसे मानूँगा इस प्रकार का उलझनी प्रश्न कविश्रेष्ठ ने ब्राह्मणों के सम्मुख उपस्थित किया, जिसको यथाकाल विरोधात्मक उत्तर प्राप्त हुआ। अतः जगन्नाथ कवि ने भागीरथी तट पर बैठकर गंभीर गंगौघ की भाँति प्रवाहित मन्दाक्रान्ता वृत्त में त्रिपथ गामिनी 'गंगा' जी की स्तुति प्रारम्भ की : " समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तत् –– " प्रत्येक श्लोक के साथ गंगा की लहरें घाट की एक एक सीढी चढने लगीं और कहानी में बतलाया जाता है कि गंगा की लहरों ने अन्त में पंडित श्रेष्ठी को स्नान शुचिर्भूत किया अतः शुद्धीकरण अपने आप हुआ।

श ति ले खा : **बिल्हण-शशिकला :** काश्मिर के प्रवर पुरा के परिसर में बिल्हण का परिचय पाया जाता है। इसकी कालावधि ई० १०३० से ११०० मानी जाती है। चालुक्य–सम्राट विक्रमादित्य (ई० १०७६–११२६) ने बिल्हण को अपने राज्याश्रय से विभूषित किया था। बिल्हण ने 'विक्रमांकदेवचरित' महाकाव्य की रचना कर अपनी अपनी कला–सामर्थ्य कापरिचय दिया है। इससे पहले अनहिलपट्टण के वीरसिंह राजा के दरबार में सम्राट ने बिल्हण की कला व विद्या निपुणता देखकर उसे राज्याश्रय प्रदान किया और आदेश दिया कि युवति सुन्दरी राजकन्या 'शशिलेखा' को विद्याभ्यास सिखाओ। शीघ्र बुद्धि राजकन्या ने किंचित् काल में संस्कृतप्राकृतादि भाषाएँ पढ़ीं। उपरान्त बिल्हण ने तरुणी राजकन्या को 'कामशास्त्र' की विद्या को सिखाना प्रारम्भ किया। वे दोनों युवा, सुन्दर, रसिक व विलासी थे, और तिसपर अध्यायन–अध्यापन के विषय की विशेषता ही स्वयं 'विषय' थी। गुरू शिष्या एक दूसरे के अनुराग से प्रभावी बने और उपरान्त छुपकछिपकर गान्धर्व-विवाह पद्धति से विवाहित भी बनें। राजा ने इस समाचार को सुन कर बिल्हण को प्राण दण्ड देना निश्चित किया। यह सुनकर सारी प्रजा ने अपार शोक व्यक्त किया। राजकन्या व्यथा से व्यग्र बनी। दण्ड देने वाले दण्डकों ने बिल्हण से कहा, " अन्तिम वेला समीप आयी है, इष्ट देवता को स्मरो!" बिल्हणने शशिकला को स्मरण किया





राजकन्या ने करुणा निवेदित की और पुरोहितों ने ब्रह्म हत्या का उल्लेख किया। राजाने बिल्हण को क्षमा किया, कवि ने पुनरपि राजाको अनुराग से जीता। शशिलेखा के साथ उसने अत्यन्त सुखपूर्ण जीवन व्यतीत किया।

स्वयंवरिता : 'राय पिठोरा' इस नाम से सुपरिचित पृथ्वीराज चाहमान (ई० ११७०–११९२) इतिहासोल्लेख के अनुसार
पृथ्वीराज संयोगिता : सर्वमान्य हिन्दु चक्रवर्ति व सम्राट था। राज्य के प्रभुत्त्व तथा चक्रवर्तित्व के सम्बन्ध में पृथ्वीराज व जयचंद्र में तीव्र स्पर्धा थी। राजा जयचंद्र ने राजकुमारी संयोगिता के विवाह के लिए स्वयंवर की आयोजना की, जिस में उस ने दूर दूर के सभी मान्य अधिपतियों को निमंत्रित किया परन्तु राजा पृथ्वीराज को अनिमंत्रित कर अवहेलना का पात्र बनाया, इतना ही नहीं तो उसे नीचा दिखाने के लिए स्वयंवर स्थान के द्वार के समीप 'द्वारपाल' रूप में उस ने 'पृथ्वीराज' की मूर्ति खड़ी की। पृथ्वीराज के साथ ही अपना विवाह सम्पन्न हुआ है इस प्रकार का दृश्य संयोगिता ने स्वप्न में देखा था। पिताजी की पृथ्वीराज सम्बन्धी निन्द्य धारणा को संयोगिता जानती थी। स्वयंवर के लिए सर्व अतिथि–गण एकत्र होने पर उसने 'द्वारपाल' पृथ्वीराज की मूर्ति पर अपनी स्वीकृति का हार चढ़ाया, त्यों ही वहाँ पृथ्वीराज अपने सैनिकों के साथ उपस्थित हुआ और विरोधियों को संपूर्णतः पराजित कर संयोगिता को ले कर चला गया। यह प्रसङ्ग इसवीं ११८५ के लगभग का माना जाता।

रूपमदा : मराठा व राजपूतों की सामूहिक शक्ति के कारण मालवा प्रदेश मुगलों के आधिपत्य से स्वतंत्र होनेकी बारी आ
बाजीराव मस्तानी : पहुँची। बुन्देलखण्ड प्रदेश का अधिपति राजा छत्रसाल प्रभुत्व जमाने लगा। दिल्ली के बादशाह ने अलाहाबाद के सूबेदार महंमदखान बंगश से आदेश दिया कि वह परिस्थिति की अपने कब्जे में करा ले। बुन्देलखण्ड के अधिपति ने मराठा वीर बाजीराव की सहायता माँगी। बाजीराव अपने सामर्थ्य सहित राजा की सहायता के लिए दौड़ा। बाजीरावने महंमदखान बंगश को पूरी तरह पराजित किया (ई० १७२९)। इस अपूर्व शौर्य व स्नेह के उपलक्ष्य में राजाने बाजीराव को अपना पुत्र मानकर राज्य का तीसरा भाग और अपनी मुसलमान रक्षित कन्या मस्तानी को भेंट के रूपमें दिया। बाजीराव जिस ऊँची वीरता को धारता था वैसेही श्रेष्ठ सुंदरता को भी अपनाए हुए था। हो सकता है मस्तानी इन दोनों गुणों से प्रभावित हुई और बाजीराव से अनुराग रखकर उसके साथ चली आयी। मस्तानी अपने सौकुमार्य व सौन्दर्य का अनुपम आदर्श थी। नृत्य तथा संगीत में भी वह प्रवीणा थी। मस्तानी को लेकर बाजीराव पूना में आया, और शनिवार वाडे में उसके लिए स्वतंत्र महल बान्ध दिया। दन्त कथा का सार है कि उसके सम्पर्क के कारण उसने मांस भक्षण व मद्य प्राशन करना शुरू किया। सामयिक राजा शाहू, तथा बाजीराव के सम्बन्धी व मराठों के साहूकार इन्हें 'मस्तानी' समस्या सुलझाना मुश्किल बना। नासीरजंग का पीछा करते हुए बाजीराव जब नर्मदा तट पर रावेर नाम के स्थानपर रुका था, तब यकायक उस की मृत्यु हुई। समाचार सुनकर मस्तानी ने 'सति' परम्परा के अनुसार अपने को भस्म किया। महाराष्ट्र में शिरूर के पास पाबळ पर मस्तानी की कबर है।

गानलुब्धा : बाजबहादूर मालवा प्रदेश का आखिरी सुलतान (१५५५–१५६४) था। बाजबहादूर नर्मदाके किनारे पर आया
बाजबहादूर–रूपमती : तब किसी वृक्ष के तले शिलाखण्ड पर आसीन कोई अपूर्व सुन्दरी गाती है इस दृश्य को उसने देखा। वह सुन्दरी निसर्ग देवता का स्तवन करती थी। उस के स्वर–स्वर्ग में वह अपने पार्थिव अस्तित्व को भूल गया और उस ने भी कुछ राग–रागिणियाँ मुखरित कीं। संगीत साधना की समाप्ति के बाद उन दोनों ने एक दूसरे के साथ अपना परिचय करा लिया। इस सुन्दरी का नाम रूपवती था, जो सारंगपूर ठाकूर की कन्या थी। बाजबहादूर ने उस से ब्याह करना चाहा लेकिन उस ने इन्कार किया। बाजबहादूर ने बार बार जिक्र किया तब उस ने एक शर्त डाली कि, नर्मदा यदि माण्डव गढ़ पर चली गयी तो मैं ब्याह करूँगी। शर्त को पूरा किया और रूपमती ने बाज बहादूर का स्वीकार किया। विवाहोपरान्त सुलतान रूपमती के संपर्क में विलास व संगीत साधनामें अपने राज्यकार्य को संपूर्णतः भूल गया, जिसके परिणाम स्वरूप में अधिकारी प्रबल बनने लगे। राज्य यंत्र की सारी सीढियाँ नाकाम की बनने लगी। इस परिस्थिति से लाभ उठाते हुए, अकबर शाहने अधमखान से आज्ञा की कि सारंगपूर पर कब्जा किया जाए। अब युद्ध शुरू हुआ तब शत्रुके विरोध में किसी भी सरदारने अपनी तलवार को उठाया नहीं, बाजबहादूर प्राणों को लेकर भाग गया, लेकिन भागते समय उसने जनानखाने के खोजा से कहा कि सब रानियों को मार डालो। उसने आज्ञाके अनुसार रूपमती पर वार किया लेकिन वह वार नाकामियाब निकला, उसकी मृत्यु नहीं हुई बादमें अधमखानने उसकी शुश्रूषा की और कहा कि सेहत ठीक होने पर उसे बाजबहादूर के पास भेजा जायगा। इस बीमार हालत में रूपमतीने बाजबहादूर पर कई दोहे रचे। बादमें बाजबहादूर की मृत्यु का दुष्ट समाचार सुनकर उसने निम्न लिखित दोहा कहा: तनमें जियरा रहत हैं, माँगत है सुखराज। रूपमती दुखिया भई, बिन बहादुर आज॥ कहते हैं, रूपमती ने भूप राग का अन्वेषण किया।





"भाग्यने एक बार नहीं कह दिया... अब कैसा संबंध..." अनजाने चौकन्नी आँखों में से झाँकता हुआ मन क्षीण स्वरमें बुद-बुदाया, और एकदम होश में आकर सामने रखे कागज़पत्तर में मिल गया। उसकी सौम्य, छोटी आकृति आसपास की फाइलों के ढेरमें देखते–देखते हुए अदृश्य हो गयी। जहाँ देखो तहाँ फाइलों के ढरे, टाइपरायटरोंका आल–जाल, न जाने कितने चपरासी अरदली, मुन्शीबाबू–किरानी, छोटे–बड़े अफसर। न जाने कितने, अनगिनती पड्यंत्रोंसे भरी हुई कचहरी। ऐसी ही कचहरियोंसे व्याप्त वह पँच मंज़िली इमारत। बड़ी–भारी इमारतों के चक्रव्यूह। उनसे गोदा गया बंबई का फोर्ट विभाग। मन को चक्कर दिलानेवाला और पैरोंको थकानेवाला बंबई का मस्तक...

श्रीरंग क्षीरसागर घंटे डेढ घंटेसे फोर्टमें इधर–उधर घूम रहा था। उस के हाथों में चार पंक्तियोंका विज्ञापन, राह के टेढे मेढे पटिये, बहुतसे पथिकों का ऐकने के बाद किसीके किया हुआ मार्गदर्शन; और फिर इमारत का प्रवेशद्वार मंजिल के नंबर का गडबड़झाला; चढना, उतरना; उतरना, चढना; फिर विज्ञापन में दिया पता पढना; फिर चिन्ह की तरह माने हुए चौकसे शुरूआत – इनसे वह हैरान हो गया था। पसीना पोंछ रहा था। होठ चबा रहा था। इतने सुधरे हुए, राजधानी जैसे महानगरमें एक बड़े दफ्तर का पता भी न मिल पाये, इस बात से वह चिढ गया था। बंबईवालों को गालियाँ दे दे कर उसका मुँह दुखने लगा और चल–चलकर, जीने चढते उतरते उसके पैर दुखने लगे। 'अब इस दफ्तरको गोली मारो' सोच कर वह पासके ईरानी की तरफ पैर बढाये। इतने में सामने उसे जो इमारत चाहिए थी वह; और जों दफ्तर चाहिए था उसीका पटिया दिखाई दिया।

नयी उमंगसे श्रीरंग उस इमारत में घुसा। यहाँ तो एक दो बार

अनुक्रमणिका

इन्कार याने 'नहीं' कहना !
कहनेवालो को जो कई वार
कहना पड़ता है
और
सुननेवाला तड़प से
कराहता है...

मैं झाँक गया था यह खयाल आकर वह लजा गया और फिर आरम्भ से मंजिलें गिनने लगा। लिफ्ट से तो यही सुविधाजनक था। मंजिल मिली। तो अब कार्यालयका प्रवेशद्वार नहीं मिल रहा था। एक चपरासी को विश्वांस में लेकर तुरंत वह भी उसने पा लिया। अंदर क्लर्कोंका जंगल। सब एकसे दिखाई देनेवाले, कोई भी उसकी ओर न देखनेवाला। 'आपके दिल्ली ऑफिस के लिए सेल्समन के पद के लिए मैंने अर्जी दी हैं—' एकदम किसी के टेबल के पास जाकर वह बोलने लगता। पर वह क्लर्क कहीं दूसरी ओर अंगुली निर्देश करता। ऐसे कबड्डी के खेलमें जैसे छूकर भाग जाते हैं वैसे श्रीरंग कई मेज़ोंपर वही अपना वाक्य दुहराता और कोई भी जवाब न पाता हुआ घूमा। आखिर एक किसीने, दुनिया से अलग तरीके से उससे बात की—बुलाया, सबकुछ पूछा और फिर कहा, "दरवाजे के पास, उस अलमारी के पास फाइलिंग क्लर्क बैठी है, उससे पूछो—" वह बेचारा फिर दरवाजे की ओर लौटकर आया और गर्दन टेढी करके लिखनेवाली उस क्लर्क लडकीसे बोलाः "तुम्हारे दिल्ली ऑफिस को—"

उस लडकीने हाथ में का होल्डर एक तरफ रख दिया और एक बार उसकी तरफ आँखे गडाईं और धीमेसे कहा, "तुम्हारी अर्जी हेडऑफिसको डाइरेक्ट की है..."

श्रीरंग कुछ सकपकाया। ठिठका। अनगिनती अर्जियाँ आई होगी और उनमें से हर एक आदमी पूँछता होगा। सब पूरे स्पष्टीकरण देनेवाले जवाब कैसे पा सकते हैं ? फिर भी बडे कष्टसे वह वहाँ आया था। उसने धीरज रख कर सौम्य भावसे उत्तर दिया—"आपने निश्चित रूप से भेज दिया हैं ? जरा अपनी फाइलें देखिये। क्यों कि—"

"अर्जी भेज दी गयी है। एस. जी. क्षीरसागर आप ही है न ?"

"हां—" अचरज से और ठिठककर वह "बोला— मेरा—मेरा नाम कैसे आपको मालूम है ? क्या अर्जियाँ थोड़ी ही हैं ? मेरी अकेले की फारवर्ड—"

"साढे सात सौ अर्ज़ियाँ हैं—" वह लडकी अलमारी पर फाइल सरकाते हुए बोली।

"फिर मेरा नाम—मुझे—" श्रीरंग समझ न सका। वह वैसा ही बुध्दू बना खड़ा रहा। फिर थोडी देर से बोला—"मुझे पहचानती है ! —"

दूसरी फाईल खोलकर बैठी हुई वह लडकी ऊपर देखने लगी। 'अब क्या संबंध ! भाग्य ने—' उसका हृदय उसके गले में आकर भरआया। और फिर सूखे सूर में वह बोली—"आप मुझे विवाह के लिए देखने आये थे !"

अब किसी और ही विस्मय से श्रीरंग वहाँ अटक गया। कागज़ फैलाकर बैठी उस युवती या लडकी की ओर वह चकित भावसे देखने लगा। शायद तीन साल पहले उसने विवाह करने का निश्चय किया था और पंद्रह बीस लडकियाँ देखी थीं। वह देशपांडे फौजदारकी, वह जोशी की फिड़ल बजानेवाली, वह और...उसके मन में कुछ स्पष्ट नहीं था। कुछ गड्ड मड्ड होने लगा। कुछ बराबर याद नहीं आ रहा था। उस लडकी की तो याद बिलकुल नहीं थी। सहज देखी हुई पंद्रह—सोलह लडकियाँ। सभीको 'नहीं' कहा था। अब याद भी कहाँ है ? और याद रखके करना भी क्या है ?— श्रीरंगने अपना अचरज समेटा। पर उस लडकी की ओर वह देखे कैसे, उसकी समझ में नहीं आ रहा था। पुरानी पहचान की वजह से, ज़रा आत्मीयता से ? या उसी पहलेवाले परायेपनसे ? या कुछ उचित खेद दिखाते हुए ? — पहले ही नौकरी के कारण से वह यहाँ आया था, और उस में यह किसीने अस्वीकृत की हुई लडकी सहसा राह में आयी है...... उसने हाथमें का कागज़ का टुकडा जेबमें डाला और रूमाल बाहर निकालकर पसीना पोंछा, जरा मुँह भी छिपाया।

निर्विकार भावसे देखनेवाली उस लडकी को श्रीरंग क्षीरसागर का यह संभ्रम छू गया। अकारण उसकी स्मृति चौंध गयी थी और मनने अनावश्यक टाँग अडाकर दालभातमें मूसल चंदकी तरहसे उसे पहचान करा दी थी। अपनी कोई गलती हुई हैं, स्वयन् की कुछ कमी दिखायी गयी है, कचहरीमें असभ्यतासे मैंने बर्ताव किया है—ऐसी बेचैनी उसके मनको खाने लगी। जब श्रीरंगने रूमालसे चेहरा पोंछा तो वह परेशानी मिट गयी। जरा कडुएपन की छटा कपालपर रेखित हुई। 'माफ कीजिए—' सूखे भावसे उसने कहा और फाइल लेकर श्रीरंग के पाससे वह निर्विकार भावसे निकल गयी। क्लर्कोंकी पाँतमेंसे और चपरासियों के आसपास चक्कर देते हुए कचहरीके अंदरके हिस्सेमें वह अदृश्य हो गयी।

वह जब जा रही थी तब उसकी पीठकी ओर की आकृति देखते हुए श्रीरंग भी फिर वहाँ से दूर हट गया। यह लडकी मिली इस बात की उसे अब कुछ खुशी—सी हुई। अपनी अर्जी गयी है, इस बातपर उसे संतोष हुआ। कचहरीके बाहर, इमारतके बाहर, उसी चिन्हवाले चौकमें वह लौट आया। वही चक्रव्यूह, वही इमारत, वही मंजिल, एक ओर छिपी—सी कचहरी और उसमें दुबककर बैठी

श्री अरविन्द गोखले : वर्तमान मराठी कहानी के मनोविश्लेषणात्मक पन्थ के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। आपकी कहानियों में सम्पूर्णतः मध्यवित्तवर्ग की अन्तःचेतना का अत्यन्त यथार्थवादी परिचय मिलता है। मन के सूक्ष्म व्यापारों को समर्थ शक्ति से निवेदित करनेवाली आपकी भाषाशैली स्थायी व धवल भविष्यत् का विश्वास दे रही है। 'इन्कार' आपकी कला का उचित प्रातिनिधित्व करनेवाली अनन्य साधारण कहानी है।

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका

हुई वह क्लर्क कुमारी अब बिल्कुल नहीं भूलूँगा, यह बात वह तीन तीन बार मनसे घोखकर कहने लगा।

● ●

श्रीरंग क्षीरसागर जल्दीही उस लडकी को भूल गया। चारही दिनों बाद उसकी कचहरी के दिल्लीवाले साहेब से उसकी अर्जीका जवाब आया: ' खेदपूर्वक नकार। ' फिर उस पत्रको, पत्रव्यवहारको, उस लडकी को और उसकी कचहरीको विस्मरण के कबाडखा में डालकर, कूडेकी चीज समझकर वह नयी अर्जियाँ भेजने लगा, नयी कचहरियों और नये रास्तोंको पार करने लगा। बंबई को गालियाँ देते हुए बंबईवाला बनने लगा। बंबईमें नौकरी मिलनेकी आशा दूर दूर होने लगी, त्यों त्यों उस सस्ते, सबमेल शहरमें बेकार रहना उसे जँचने लगा।

फोर्टके रास्तेमें से रोज आदतन अलसाते हुए भटकनेके बाद शामको मानों कामपरसे लौट रहा हो ऐसे अपने बडे भाई के घर दादरमें पहुँचता। एक शनिवार दोपहरको दफ्तर बंद हो गये और लोग रास्तेसे भीड बनाकर जाने लगे। तब घर जानेका समय हुआ, इस भावनासे श्रीरंग बोरीबंदरकी ओर गया और बिजली की रेल गाडियाँ देखने लगा। क्लर्कोंके झुंड, विद्यार्थियों की टोलियाँ, लडकियों के समूह, गाडीका समय दरसानेवाली बडी घडियोंकी ओर देखते खडे थे। और उनमें वह लडकी भी थी। उस कचहरी के घटाटोपमें खो जानेवाली, श्रीरंगने किसी समय सहज देखकर एक ओर जिसे टाल दिया था।

अब भी श्रीरंगने उसे झट से पहचाना नहीं। और पहचाना तब फिर उसे लगा कि जैसे वह अपराधी हो। मुँह फेरकर वह भीड में मिल जानेवाला था, तो उस लडकी की भी नजर उसकी ओर गयी। परस्पर की दृष्टियों में पहचान आकर ठिठकी, गर्दनें फेर लेनेका भाव जमा हुआ और अंतमें दोनों पास आये।

' अभी की फास्ट रद हो गयी शायद ?–हमेशा कुछ न कुछ गडबडी होती रहती हैं–' उसने कहा।

' हाँ, यही तो होता है।–' उसने उसकी बातमें हामी भरी। मानों कचहरी का काम पूरा करके वह रोज उसी ' फास्ट ' से जाता हो।

थोड़ा समय बीत गया। गाडी के समय के बारेमें बोलना बेकार है, ऐसा दोनों को जान पडा। क्या विषय हो जिसपर बात आगे चले, दोनों को मालूम था। श्रीरंगने बात शुरू की। ' आप से मुझे नकार मिला —'

ऐसा वाक्य उस के मुँह से कैसे निकल गया, उसकी समझमें नहीं आया। वह भी अचकचाकर देखने लगी। जेबमें से रूमाल निकाल कर पसीना पोंछते हुए उसने कहा, जल्दी–जल्दीसे,–। ' नौकरीके बारेमें।–आप के दिल्ली के बॉस की चिठ्ठी आयी हो गये तीन बार, पंद्रह —'

'समझीं–' छूटती हुई गाड़ी की ओर इकटक नजर लगाते हुए वह बोली। मेरा क्या अपराध है– अपने आपसे मानों वह कहने लगी। पर उसे अच्छी लगे इस इच्छा से एकदम बोली — "हमारा आफिस बड़ाही विचित्र है जी! – सब कुछ वसीले से चलता है –"

'मैं उस जॉब के बारेमें इतना सीरियस नहीं था। अब आउट-डोअर वर्कसे इतना ऊब आगया हूँ कि–' वह उडती उडती आवाजमें बोला।

जरा देर बाद उसने पूछा —

'राशन-आफिस में थे ना आप? नासिकमें—!'

'हाँ–' फिर वह चुप होगया। राशनिंग खत्म हुआ। वह नौकरी भी छूट गयी–इन सब बातोंकी चर्चा वह नहीं चाहता था। उससे ज्यादह बोलने की भी उसे उत्सुकता नहीं थी। इतनेमें कुछ कुतुहल जागकर उसने पूछा,–'आप–आपभी नासिक की ही हैं?'

'नहीं–' उसे क्या चाहिए था यह बात वह लड़की भाँप गयी। 'मेरी चाची रहती है नासिकमें। स्टेशनरोडपर। वही मुझे ले गयी थी, मेरी नुमायश कराने–'

'चाची—?'

'प्रेसमें के कुलकर्णी जी!' उसके लंबे से चेहरेपरसे प्रश्नचिन्ह नहीं हट रहा था। इसलिए उसने आगे कहा–'शहरके देशपांडे वकील तो मालूम होंगे! उनके यहाँ समारोह हुआ। आपकी पूनावाली बुआ और आप आये थे। तीन बरस हो गये। बारिश हो रही थी—बारिश की वजहसे मुझे याद है —'

अंतिम वाक्य वह डाँटते हुए आवाज़ में बोली और फास्ट गाडी रद हो गयी, इस खयालसे गुस्सा हो आयी।

बोरीबंदर की भीड में उस शाम की बारिश उस की विस्मृति पर वर्षा करने लगी। बुआ के साथ देशपांडे वकील के यहाँ वह गया था ज़रूर। उसे याद आया। परंतु–परंतु वही है यह लडकी?– ध्यान में रहे ऐसी रूपवती या सबसे अलग वह निश्चित नहीं थी। उसने उसकी ओर अलग दृष्टि से, निरखकर देखा ठिंगनीसी साँवली आकृति, बड़ासा जूड़ा, गहरी काली–काली आँखें। स्नेहाल और भावनाविवश लगनेवाली! उसे फिर लगा कि जैसे वह अपराधी हो। उस की आँखों से आँखें मिलाते हुए वह अनजान में बोला– 'सच्ची कहूँ मैं वैसे भूला नहीं था। सदाफुली कुलकर्णी नाम है न! हमारी बुआ के सनकी सुभाव के मारे मैं ने पहचान देने की बात टाल दी इतनाही — "

दूर आँखें लगाने वाली और मान-अपमान का सूक्ष्म शूल मन में पालने वाली सदाफुली चकित हो उठी। 'बुवा का सनकीपन?– मैं नहीं समझी।'

श्रीरंग ने ज़ोरों से हँसने की कोशिश की। प्लॅटफार्म की ओर भागते हुए जानेवाले दो बच्चों को राह देते हुए सहज भाव से कहा, 'अजी, उस दिन हम घर पर आये। सब पहले से निश्चित सा था। और आखिर में बुआ ने फिजूल बीच में बाधा डाली। कहने लगी, लडकी बहुत ठिंगनी है। बस, माँ को क्या —'

सदाफुली कुलकर्णी की गहरी आँखें देखते देखते फैल आईं। चेहरा व्यथित हो उठा। प्रत्येक युवक ने नकार के वार उस के हृदय पर किये थे। और अनेकों में से एक जख्म फूँक से जैसे ठंडी पड़ती जा रही थी। बहुत अपमान सहन किये... परंतु यह घाव ऐसा नहीं था। अच्छा! थोडे से संतोष से और बहुत से भौचक्के-पनसे उसने पूछा, — 'अच्छा, यानी आप, आप को... हमारे घर में तुम्हें ही लगा —'

'ना ना—'

'फिर —'

'जरा कोई किसी काम में अडचन डाल दे तो सब धीरे-धीरे खिसक चला जाता है — बाद में मेरी माँ बीमार पडी। महीने भर में चल बसी। फिर मैंने शादी का इरादा ही आजतक छोड दिया —'

सब संगतें लगती जा रही थीं, वैसे-वैसे सदाफुली का चेहरा चमकता जा रहा था। हृदय नरम पडा और बाद में सुखी हो गया। तो यह नकार सच नहीं था! इसे मैं पसंद ही थी, ऐसा ही माना जाय! इस से — इससे मेरा विवाह होने जा रहा था! वह कौहन बुआ क्यों बीच में आकर अटक गयी? — परंतु यह अभी थी, अभी भी अविवाहित है? — अपना आनंद संभाल कर, छिपाते हुए वह रेल गाडी का समय बतलाने वाला घडी का काँटा खोजने लगी। 'अब क्या मतलब है—' कोई तो भी

अनुक्रमणिका

उस के कानों में गुनगुनाने लगा। 'अभी भी संभव है—' उस का मन गरजने लगा। वह घवडा गयी थी। और बहुत ऊँचा जो नहीं था, और जो अब उसके पास लौट आया था, ऐसे श्रीरंग की ओर वह चोरीसे देख रही थी।

इतने में फास्ट ट्रेन की सूचना ललकार देने लगी। आदमी भागने लगे। आवाज़ और शोरगूल बढने लगा। सदाफुलीने जल्दीसे 'चलोगे?' कहकर श्रीरंग से पूछा। मनपर का बोझा जल्दीसे फेंककर निसाँस लेनेवाला श्रीरंग उस की आँखो में चमकनेवाला नया तेज देखकर चकरा गया। 'मुझे हार्बरसे जाना है!—' इतना कहा और झट से दूसरी दिशा में चलने लगा। फास्ट गाडी का सदाफुलीको गुस्सा आया! परंतु वह भी औरों के साथ जल्दी करने लगी।-श्रीरंग को छोड़कर वेपहचाने आदमियों में मिल गयी।

हार्बर ब्रांचकी ओर जानेवाला श्रीरंग धीमे से स्टेशन के बाहर खिसक आया! क्या घटित हुआ, क्या बडबडाया, यह खोजने लगा। बुआका निमित्त बनाकर उसने एक लडकीपर हुआ घाव पूरा भर दिया था। सचमुच, बुआका बहाना उसे सूझा यह लाख रुपये की बात हुई! नहीं तो लडकी को नाकारनेका किसी का क्या अधिकार हो सकता है? लडकियों को देखने लगा (विवाह-पूर्ण पसंद करने के लिए) यह बातभी उसे भयानक जान पडती थी। मां के लिए उसने यह तय किया था। परंतु हर पारीमें जनम-जनम की साथिन खोसने की यह पद्धति उसे बडी जंगली जान पडी थी। कुछ हो। कुलकर्णी की उस लडकीमें अपमान की चेतना मिट गयी; अपने बारेमें जो शिकन थी यह खत्म हुई! इस बातका उसे संतोष हुआ। और कचहरी के ढेर के नीचे, और बोरीबंदर की भाग-दौडमें, विस्मृति की गर्त में खोती जानेवाली वह लडकी उसे साफ, सामने एकसी दिखाई दे रही थी।

● ●

सदाफुली कुलकर्णी बराबर एक के बाद एक दो शनिवार को बोरीबंदर स्टेशनपर फास्ट गाडीके आसपास मँडराती रही। उसके मनमें कुछ अंकुराया था। जीवन में कुछ घटित होना शुरू हो रहा था। कुर्ली की मैली कुचैली बस्तीमें माँ बाप के घरमें रहकर एक बडे दफ्तरमें क्षुद्र नौकरी कर के वह ऊब चुकी थी। रूपगुणोंमें न्यून न होकर भी उसका ब्याह नहीं हुआ था। पच्चीस तीस जगह उसे दिखाने ले गये थे। ऊँचाई, रंग, ग्रह, दहेज आदि पचासों कारणोंसे वह ब्याह में नहीं दी गयी थी। अभी ब्याह की उम्र बीती नहीं थी। परंतु अब उसे नौकरी मिल गयी थी। सौ डेढसौ के नोट घरमें आने लगे थे। और विवाहेच्छु वरों की सूचियों के कागज कूडे में जा रहे थे। अब ऐसेही कुमारी रहना होगा, क्लर्की करनी होगी। यही भविष्य दिखाई दे रहा था। —परंतु फिर पहले एकबार बिल्कुल पास आकर दूर धकेला गया, अदृश्य हुआ वह युवक अचानक उसके जीवनमें झाँक गया था।

दो शनिचर श्रीरंग बोरीबंदरपर नहीं पाया गया, नहीं आया। और फिर आठपंद्रह दिन हृदयसे खिलाये गये सदाफुलीके सपने मुरझाने लगे। उसे लगा था कि अब उसकी बुआ या माँ की ओरसे कोई बाधा नहीं है। अब सबकुछ सीधा, सरल है – उसने ... परंतु उसने जानबूझकर टाला हो ऐसा क्रूर विचार उसके मनपर गुर्राकर आगे आता और वह उसे बार बार दूर हाँक देती। उसे भी लगन होती तो वह सबकुछ भूलकर आया होता ऐसा दूसरा तारदायक विचार दूसरी राहसे उसके मनमें घुसता। और फिर वह बेचैन हो उठती। उसे कहीं नौकरी तो नहीं मिल गयी?— उसका कही- वह विचार करनेका टालती थी।

तीसरे शनिवार को उसने जरा राह देखी; और फिर वह उलटे कडुई मुद्रा धारण करके निकली। तीन बरसों पहले वह जो चिढ गयी थी, उससे भी ये क्लेश अधिक भडकीले थे। घर भी क्यों जायँ, ऐसा विचार उसने किया और पेशानीपर बल डाले वह फास्ट ट्रेनमें न चढकर बोरीबंदरके बाहर आई और राह फूटी उधर भटकने लगी।

उस भटकनेमें धोबीतलावके पास उसे श्रीरंग मिल गया।

बोरीबंदरसे, अपनेसे वह ज्यादह दूर नहीं था, इस कल्पनासे

सदाफुली खिल उठी। पुरुष उसे अब देखने नहीं आते थे। और प्रेमका आगमन उसे अबतक महसूस नहीं हुआ था। ऐसी त्रिशंकु अवस्थामें यह पहचानको चमक देनेवाला पुरुष मिला इस बातसे वह हर्षित हो उठी। वर दूर नहीं था, और बहुत ऊँचा भी नहीं था।

'ओ हो– आप!' सदाफुली सामने आतेही वह चौंका, हँसा। वह मिलेगा ऐसी उसकी कल्पना नहीं थी। वह मिले ऐसा भी उसे खास तौरसे नहीं लगा था। एक पावसकी साँझको की हुई गलती देरसे क्यों न हो, पर इस भीडभरे स्टेशनमें सुधार दी थी। सब समाप्त!—परंतु अब खुले मन में और खाली समयमें वह फिरसे झाँक चुकी थी।

"कहाँ चले?" सदाफुलीने पूँछा। उसके बोलनेमें जो रूखापन था और देखनेमें जो शून्यता थी वह लुप्त हो चुकी थी। उसका मोर्चा होटलकी ओर था। दूसरे किसी के साथ चाय पीने जैसी उसकी परिस्थिति नहीं थी, और मनस्थिति भी नहीं थी। वह ठिठका और फिर अपने एकाकी, सुने जीवनके बारेमें उसे ऊब आने लगी। वह सीधे बोला, 'चलो, चाय पियें।'

उसके साथ वह अकडसे होटलमें घुसी, खास कमरेमें गयी और पर्स टेबलपर डालकर और पीठ कुर्सीसे टिकाकर बोली "मेरे लिये कोकाकोला बुला दो। मैं चाय नहीं पीती —"

ऑर्डर दे कर उसने कहा, "चाय बिल्कुल नहीं लेते?"

गर्दन हिलाकर वह बोली — 'बचपनसे ही नहीं —'

शांति। और फिर उस छोटे कमरे के दोनों ओर लगे हुए बड़े बड़े आईनों में उसके प्रतिबिंब धीमे धीमे हिलने लगे, अस्वस्थ होने लगे।

बहुत अधिक घनिष्ठता जिसके साथ न हो ऐसी लडकी के साथ होटेल के प्राइवेट कमरे में उस ने चाय नहीं पिया था सो बात नहीं। कालेज को लडकियाँ, राशन आफिस की क्लर्क लडकियाँ। स्त्रियोंके बारे में न उसे गाढ घृणा थी और न खास आसक्ति। परंतु ऐसी बेचैनी उसे कभी नहीं जान पडी थी! आज ऐसा क्यों जान पडता है यह उसकी समझ में सहसा नहीं आया। सदाफुली कुछ सुखी हो गयी थी, यह उसके बहुत संभलकर बरतने में से भी झलक पडा था, खुलखुल जाता था! वह सुखी नहीं हुआ था और ऊब भी नहीं था। फिर...!

नौकरने दरवाज़ा धकेलकर एकदम चाय की प्याली और कोका-कोला बोतल टेबल पर जोरोंसे पटक दी। उसके ऐसे उद्धत व्यवहार से श्रीरंग कुछ पीछे, जरा एक ओर खिसक गया। सदाफुली की पिंडली को उसका पैर लगा। नौकर गया; दरवाजा झूलता रहा, और श्रीरंग के घबराये से हृदय का रक्त तपने लगा।

कितनी संभावना!—मुखसे कोका का 'स्ट्रा' ओठोंकी चोंच में पकडनेवाली कुमारी सदाफुली कुलकर्णी की ओर पागल की तरह देखते हुए श्रीरंग मन ही मन बुदबुदाया। कितनी संभावना थी। निकटता, रिक्ता होने का क्षण. बिलकुल हाथमें आ चुका था। बुआकी ओरसे बाधा नहीं थी, मां तो आतुर थी ही। सिर्फ हाँ, सिर्फ 'हूँ' कह देता तो सारा विश्व बदल जाता! फिर इतनी दूरी अंतर भी नहीं बची रहती। फिर ऐसे दूर बैठना, दबकर बोलना, हलकासा स्पर्श, संयमसे वशमें रखा हुआ मन... उसने उसके ओठोंकी, आंखोंकी केशभार की ओर, अंचल जहाँसे खिसक गया था ऐसे कंधेकी ओर नजर डाली। यह सब उसका हो जाता! यह विपुल केशसंभार और यह काली-काली आँखें! यह ओठ उसने चूमे होते, यह देह उसने बाँहोंमें भर लिया होता, सब कुछ उपभोग्य होता!— जो कदाचित् उसीका था वह ऐसा सामने देखकर वह जल उठाव!

एक साँसमें आधी बोतल पीकर उसने गर्दन उठायी। "यह क्या, आपने ता चाय भी नहीं लिया। ठंडी होगी ना—" गृहिणी की चिंता से और सहृदयता से उसने कहा, "आप चाय बहुत पीते हैं?"

"व्यसन है! पर यह दूध की पाउडरवाली चाय मुझे पसंद नहीं!—"

"मैं चाय बहुत अच्छी बनाती हूँ! उस दिन भी मैंनेही बनाई थी—" वह अनजाने बोल गई; और जैसे अपने ही आप को बरतने लगी—'क्या हुआ ऐसा कहा तो?" उसे लगा मानों इनसे मेरा विवाह हुआ होता तो शायद सिर्फ चाय बनाने के गुण पर ही यह आसक्त हो गया होता। शायद मुझे भी चाय की आदत इनके कारण पड जाती। उसकी एक दो सहेलियाँ विवाह के बाद पति के कारण चाय पीना सीख गयी थी। उसे उस विचार से सुख हुआ। चाय पीने की इच्छा हुई। उसके कप में की, उसके ओटों में की!

रम्यताकी कल्पना और वासना की आगसे वह अभी भी बेचैन था। बिगडी हुई जिंदगी में अचानक मिला हुआ एकांत और विश्वास और प्रेम दिखानेवाली तरुणी, उसका रक्त और उसका मन चैन से नही बैठने देते थे।

"नौकरी छूटे पाँच छः महीने हुए?"

"छः—"

"आजकल कहाँ कोशिश चल रही है—"

"एक जगह आशा है...वैसें नौकरी करनी ही चाहिये यह आवश्यक नहीं—"

राशनविभाग में ऊपर कमाई हुई आय उसने मनमें दबा दी। उसकी आँखों के आगे उसका न देखा हुआ नासिक का वाडा खडा हो गया।

"मुझे ढाई बरस हुए इस नौकरी में करीब करीब परमनंट ही हूँ। यानी चाहे जब छोड़ भी सकती हूँ...... पिताजी आधी तनखा मेरे नाम से बैंक में रखते हैं—"

जैसे ताश खेलते समय अपने पास के सब पत्ते खुले कर के बता दिये जायँ, वैसे उसने मन के भीतर का सबकुछ उसे कहा। चाय बनाने के गुण से बैंकबुक के हिसाब तक। श्रीरंग देखही रहा था! चाय का प्याली खाली हो चुकी थी और मेजपर की उसकी पर्स पडी हुई थी।

सचमुच, क्या हुआ होता, विवाह हो गया होता तो! इस लडकी के साथ गिरस्ती शुरू की होती तो!— श्रीरंग का मन वही

ताल पकडने लगा। पाउडर के दूध की चाय पीकर और बंबई में पैदल घुमते घुमते वह थक गया था। ऊब आ गया था। यदि शादी हो जाती तो वह आज उसके पैसोंपर जी सकता होता! — पर वैसे जाना अच्छा है क्या? ब्याह के बाद स्त्रियाँ नौकरी करें यह बात उसे खास जँचती नहीं थी। वह सूनी आखों से उसकी ओर और उसकी पर्स की ओर देखने लगा। यह देह और ये पैसे, इनपर मेरी मिल्कियत होती यही एक विचार उसके मन में घुसने लगा, बढने लगा।

इतने में बिल लेकर और दरवाजा धकेलकर नौकर अंदर दाखिल हुआ। झटसे दोनो के शक्ल हुए। दरवाजा झूलता रहा और उसका झूलनेवाला मन ठिकानेपर लगा।

"मैं पैसे देती हूँ —" पर्स खोलते हुए वह बोली।

"वह — ऐसे कैसे? —" झूठा बहाना बनाकर उसने जेब में हाथ डाला।

"क्या हुआ! क्या आप और क्या मैं —" वह मृदु शब्दों में बोली! और पर्स में के सिक्के बिल के कागजपर टपके।

दरवाजा झल ही रहा था। लेकिन उसका समेटा हुआ मन अब अलग दिशा में देख रहा था। शादी हुई होती तो इस स्थिति से बहुत कष्ट उसे हुआ होता, ऐसा वह बराबर सोचने लगा। शादी हुई होती तो होटल के कमरे में बैठना और वासना ओं की भाँप बेकार जाने देना यह भी नहीं हो पाता! सदाफुली पूरी फूली थी, और श्रीरंग के मन में काँटे बढ रहे थे। नौकर पैसे लेकर उसे सलाम करके गया, तब न जाने कैसा सा उसे लगा और वह उठा।

किसी विवाहित जोड़े की तरह दोनों कमरे के बाहर, होटेल के बाहर आये। यह आशिकी-माशूकी नहीं थी, पुराना शादीशुदा जोडा है यही मतलब सबकी नजरों में था। वह उससे चिपककर चल रही थी; और दूर रहकर भी लोगों के धक्के दूर करते हुए श्रीरंग उसके साथ जा रहा था। मानों यह सब करना, ध्यान रखना उसका कर्तव्य था। उसके साथ जाना यही उसका जीवन था!

"चलो। घर चलते हो? —"

"तुम्हारे घर?"

"कुर्ला में। चलो। बाबा से तुम्हारा परिचय करा देती हूँ। सब कुछ कहूँगी नहीं— "

सब कुछ कहना क्या है यह श्रीरंग की समझ में नहीं आया। उसके बाप से पहचान क्यों की जाय, यह भी नहीं समझमें आया। पर भाई के घर रहने और शहर भर बेकार भटकने से वह अजिज आ गया था। उसे लगा, एक मजेकी बात मानकर उसके पास चलें! नही तो भी वह ससुराल ही हो चुकी होती, उसकी। उदि उस शाम को...

वह शाम और वह वर्षा उसकी आँखों के सामने शुरू हो गयी। वय ठिंगनी छोटीसी लडकी उसके सामने खडी हुई। ऊबे हुए, तंग आये हुए उसके मन में कोई बुआ आयी और कहने लगी— 'बहुत ठिंगनी है—'। वह होश में आया और बोला— "नहीं। आज नहीं। आज जरा मुझे और कहीं जाना है। — "

वह किंचित् रुष्ट हुई......गुस्सा होना बुरा लगेगा इसलिए हँसी। और बोली, "कम से कम उस स्टेशनतक— "

उसके लिए मनमें अभिलाषा जगी। उसके पैसोंकी चाय पी, इस बात का उसके मन में काँटा सा सालने लगा। और वह वैसे ही उसके साथ चुपचाप चलने लगा।

अब वे दोनों एक दूसरे के सामने खड़े थे। अनेक पुरुषों द्वारा अधिकृत और ढाई बरसतक नौकरी करनेवाली सदाफुली और नौक-रीकी कोशिश करनेवाला और शादी का सौदा न करनेवाला श्रीरंग! ऐसीही तो वह शाम हो रही थी। वर्षा के चिन्ह भी दिखाई देते थे। और दो जने अपनी ज़िंदगी की चौसर बिछा रहे थे।

दोपहर पूरी होने से पहले ही सदाफुली उस संकेतस्थानपर आ पहुँची थी। उस छोटे से सार्वजनिक बाग की जगह उसीने निश्चित की थी। ऑफिस में से वह आधा वक्त टालकर आयी थी। अर्जी देते समय त्यागपत्र भी जल्दीही लिखना पडेना इस विचार का सुख उसने अनुभव किया। क्षणभर, केवल क्षणभर! फिर श्रीरंग गये दा-ढाई महीनेमें नहीं मिला। आज भी आयगा या नहीं इत्यादि अनेक विकल्प उसे सताने लगे।

पर ढाई महीनें अदृश्य हुआ श्रीरंग निश्चित समय पर उपस्थित हुआ। वे छाँहमें एक बेंचपर बैठे थे तभी उसकी छाँह उसकी ओर एकदम खिंचती हुई आई। और ठिठकी। वह बड़ीसी छाँह, वह ऊंचासा श्रीरंग देखकर यह बेचैन हो गई। लेकिन वह आया और सामने खडा रहा, यह देखकर वह आनंदातिशयसे खडी रही।

"आ गये! मैंने कहा आते हैं या नहीं —"

"क्यों इतनी जल्दीसे बुलाया मुझे?"

ऐसे प्रश्नोत्तर उसे ओर श्रीरंग को भी नहीं चाहिये थे! पर मनमें जो धुल रहा था वह ओठोंपर भी आ ही गया। खुदको सँभालते हुए और उसे निरखते हुए वह बोली।

"बैठो न! इतने दिन मिले नहीं। मुझे फिक्र लगी। कुर्ला में आऊंगा कहा था ... बोरीबंदरपर भी नहीं दिखाई दिये ..."

उसका प्रेमल स्वर, बिरह कि व्यथा और मनस्वी बोलना देखकर उसका गुस्सा कुछ कम हुआ। पुरानी याद आयी। मानों पत्नी समझ कर धोबीतलाव से मरीन ड्राइव तक वह उसके साथ गया था। उसके पैसे की ओर देह की ओर साधिकार उसने देखा था। संभावना के पेट में जो घटनाएँ होने जा रही थीं, उनकी गंध सूंघी थी। उसका हुआ अपमान धो कर छुडाने का सफल यत्न किया था। और एक समय, एक शाम को वह उसे देखने गया था!—

वह उसके साथ बेंचपर बैठा था और मृदु स्वर में बोला,

"मैं जल्दी में था। बीच में मैं नासिक गया था—"

"नौकरी मिली—"

"नहीं। पर नाशिक में दूकान खोल रहा हूँ खिलौनों की—"

वह रास्तेपर लग जायगा, बंबई से जायगा, इसके लिए असूया की शिकन उसकी पेशानीपर उभरी। पर बाद में आगे आनेवाली बाल की लट पीछे हटा कर वह बोली,





"खिलौनों की दुकान? बडी मजेदार बात होगी न खिलौने बेचना? और बंबई का लाइफ कुल मिलाकर बुरा ही है। भागादौड, परेशानी; फिर जगह नहीं मिलती—"

उसके हावभाव, आशा, इच्छा वह समझ गया, उसे अच्छी लगी। लगा, क्या हर्ज है?—वह भावी पत्नी की और देखने लगा। देखने का यत्न करने लगा। ऐसे ही किसी लडकी की पहिचान करके, स्नेह बढाकर, प्रेम करके उसे विवाह करना था। यह लडकी सिर्फ़ दिखाई जाय तो शायद कोई उसे पसंद नहीं करेगा। पर स्नेह संपादन के बाद, प्रेमल स्वभाव और...

वह देखने लगा। अंतर्मुख होकर विचार करने लगा। – और फिर आगे न बढा हुआ उसका मन पीछे मुड़ा। कुंडलिका ग्रहयोग जमा और मां ने कहा इसलिए वह देखने गया। इसके साथ संबंध नहीं, न हो, ऐसा लगा इस कारण से किया गया घाव भरकर पूरा किया। इतनी ही इसकी मर्यादा, यही कीमत!—अधिक हो तो पहिचानी हुई लडकी। साथिन। पर प्रेम?–ऊँचीसी, कांतिमान्, गोरी, गाँवकी, खिलाड़ी वृत्ति की किसी लडकी की अधूरीसी आकृति धूसर-अस्पष्ट उसके बधिर मनमें तैरने लगी। उस आकृति को वह आजतक खोज रहा था। वह केवल एक मँगनी की विवाहेच्छु लडकी थी। लाइलाज होकर क्लर्की करने वाली। केवल पति खोजनेवाली।

"तुम्हें चिठ्ठी भेजकर बुलाया इस बातसे नाराज़ तो नहीं हुए न?—" उसकी तनी हुई सी मुद्रा देखकर वह बोली।

"पर आपको मेरा पता कैसे मिला?"

"पुराना पत्रव्यवहार मैंने खोजा। नाशिक में पहले कुंडली भेजी थी न आपके घर, उसपरसे पता मिल गया। फिर वहाँसे वह तुम्हारे भाई के घर—"

"छिः छिः इतनी तकलीफ क्यों की—" वह त्रस्त होकर बोला। सचमुच उसने बडी मिहनत की थी उसका पता मिलानेमें। परंतु उसी बात पर चिढा था। ऐसा पता मिलाकर, पत्र भेजकर फिजूल किसीको ऐसी जगह बुला लेनेकी उसे चिढ हो गयी थी।

"तकलीफ काहेकी–क्या करें? आप मिलते नहीं थे तो—"

"क्यों मिलें? काम नहीं तो—"

"क्यों? – इस अधूरे उद्‌गारसे उसने मनमें उठनेवाली डरकी टीस दबा डाली। तो भी उसके हाथपैरों में कंपन छूटा। श्रीरंग ऐसा क्यों बोलता है–उसकी समझमें नहीं आया। उसकी करुण आँखों में, आत्मीयताके व्यवहार में जो उसे पहले लगा था वह अब झूठा था क्या? ऐसा कैसे होगा? वह ऐसी धोखा खानेवाली नहीं थी।

फिर उस ने उस की ओर खिंचे हुए जैसे देखा। श्रीरंग ने पहचाना और फिर स्वयम् की भावनाओं की अज़माइश की। सचमुच में उस ने उसे आशा दिखाई थी क्या! वह तो बोरीबंदर पर और ईरानी होटल में समतोल रूप से समझदारी से बरताव करता था। कुछ ऐसा-वैसा बोला नहीं था। गये कई हफ्तों में उस की याद भी उसे नहीं आई थी। फिर उस ने क्यों ऐसी ममता पाल ली? न जाने क्या गलत सलत सोचकर उसे यहाँ बुलाया? — उसका तन कडुआ हो उठा। उठ कर यहाँ से चले जायँ! पर वह नहीं जम सका और वह मुँह फेर की बैठी।

श्रीरंग की वह स्तब्धता, विमनस्कता सदाफुली के मन में जंगल जगा रही थी। अपने हाथ में आया हुआ, भाग्य से मिला हुआ कुछ अमोल कायम का चला जा रहा है इस भावना से वह हतबल हुई। और धैर्यपूर्वक, अशा के कसे हुए तंतु पकडकर हलकी आवाज में बोली—'

"क्या–क्या आगेका–?"

"तुम्हारा नकार नहीं था, ऐसा तुमने ही उस दिन कहा था। पर आगे क्या? हाँ, तुम बाबा को सूचित करोगे या मैं कहूँ?– तीन बाण व्यर्थ चले गये; अब—

श्रीरंग पागल की तरह इसकी ओर देखने लगा... मेरा नकार था, मेराही नकार था। बुआ की बात थी। बहाना था। केवल तुम लडकियों का जानवरोंकी तरह प्रदर्शन किया जाता है। कोई भी किसी भी कारण से 'तुम्हें' नहीं कहते हैं, अस्वीकार करते हैं और तुम्हें वह घाव झेलना पडता है। सूजे हुए मनसे जीना पडता है– इसलिए मैंने तुम्हें समझाया था, तुमसे बोला, तुम्हारे साथ चला और जो घाव दिया था, वह अब पूरा भर आया, अच्छा हो गया है। परंतु उसका अर्थ–मुझे–नहीं नहीं–श्रीरंग का मन तार स्वरमें चिल्लाने लगा। परंतु उसकी वाचा बंद हो गयी और वह सिर्फ देखता ही रह गया।

सदाफुली रूकी, राह देखने लगी। श्रीरंग विचार कर रहा है ऐसी धुँधली आशा उस के मन में घिर आई। परंतु न बोलनेवाली निराशा उस के परिचय की थी। अब जरा भी राह देखना उसे कठिन लगता था। काल, विवेक भूलकर वह बोली, —

"चाहे तो तुम्हारे भाई को मेरे पिताजी जाकर मिल लेंगे। जो चाहोगे हो जायगा। पर अब विलंब न हो श्रीरंग। मैं ऊब गयी हूँ—"

किसी प्रेयसी के मुँह से जो शब्द निकलने चाहिए वे शब्द उस के मुँह से सुन कर श्रीरंग चौंककर और फिर वह उठकर खड़ा रहा।

"माफ कीजिये मिस् कुलकर्णी। तुम्हें गलतफहमी हुई है। तुम्हें उस समय नहीं कहने का बुरा लगा होता इसलिए "मैंने —"

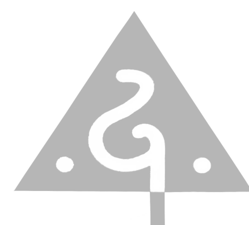
"यानी फिर तुम्हारा वह 'नहीं' हाँ सच था? मुझे समझाते बुझाते हुए... मुझे फँसाया?—और अब भी नहीं हो?" वह उठी और घबडाकर थरथराते हुए बोली।

"नहीं", नहीं था ऐसा नहीं... परंतु – सच कहूँ, लडकियों को पहले देखकर फिर शादी करना मुझे पसंद नहीं। नहीं—"

"फिर क्या — स्नेह बढाकर, प्रेम करके... और फिर अपनी मैत्री है या नहीं? मैं रूकती हूँ चाहो तो!... प्रेम जमने पर..."

पगलीकी तरह मैं बडबडा रही हूँ यह समझकर सदाफुली एकदम चुप रही। दहेज की रकम बढानेवाला, याचना करनेवाला वधूपक्ष श्रीरंग के सामने लाचारी से खडा रहा। उसे एकदम घिन हो आयी सदाफुलीने आँसूसे भरी आँखें छिपानेके लिए मुँह फेर लिया।





मनमें आशा आकांक्षाकी जो खिले हुए गुंचे और क्यारियाँ थी, वे उखडकर फेंक दो। मानहानिसे वह लजा गयी; संताप से हीन दीन बनी। पीठ फेरी हुई सदाफुलीकी भावनाओंका अंदाजा श्रीरंगको बहुत अस्पष्टसा लगा। क्षणकाल दया से उसका मन व्याप्त हो उठा इसके बदले साफसाफ नहीं कह दिया होता तो बहता था। यह वार बहुत गहरा हुआ, यह उसे जान पड़ा। परंतु अब उसका ला-इलाज था। समझाना भी उसके लिए कठिन था। वह हफलाते हुए बोला– "माफ करो—"

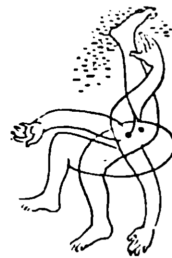
उसने गर्दन हिलाई। उसका सारा शरीर जैसे घुमड आया फिर उसने अंपना पूरा बल जमा करके निजको शांत किया। वैसी ही वह चलने लगी। बागके बाहर इसी। अब उसे अपने निलके जीवन की ओर मुडना जरूरी था। आफिस में जाना सच था। उसीकी गलती थी। किसलिए उसने इतना मोह पाला? झूठी आशा बढाई? देखी जाकर भी वह विवाहिता न हो सकी और प्रेम करके भी जाँची नहीं गयी थी। तब उसे पुरानी रूढ पद्धतिके प्रति तिरस्कार था ही और अब नयी पद्धति का मार्ग भी नहीं मिल रहा था।

फोर्ट की टेढी-मेढी गलियों में घुसी और अंधेरी इमारत की प्रचंड कचहरीके पास आई तब फिर कोल्हू के बैल जैसा होदनेवाला उसका मन और चीत्कार कर उठा–"भाग्यने एकबार नहीं कहा था— फिर लोभी की तरह मैं बार बार उसके पास गई। जो नसीब में नहीं लिखा था, वह खुद बनाने गयी। पर मेरा कपाल ही फूटा हुआ था—नसीबने नहीं कहा तो खूब सहनीय लगा पर वह मुझे काफी नहीं जान पड़ा। और इसलिए इसके मुँह का 'नहीं' सुननेका हतभाग्य मुझे सहना पड़ा।—'

रूपान्तर : **प्रभाकर माचवे**



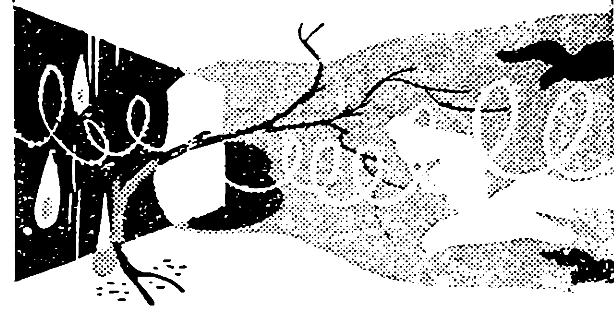
विष का स्वाद बताना होगा!



यह सरासर गलत फहमी है कि श्री. शंकर भगवान् ने हलाहल प्राशन करे संसार को उपकृत किया है। आपही सोचिए, भगवान् होनेके बाद भी कुटुम्ब कबीले की जिम्मेदारी उसे उठानी थी ही। गर्दन में गूंथा साँप और गणेश का चूहा, कार्तिक स्वामी का मोर और वह नाग, पार्वती का सिंह और 'गजानन', कक्ष पर बैठी पार्वती और मस्तिष्क पर विराजित गंगा, मत्थे में लगे हुए तीसरे नयन की आग और सिर पर चढी चंद्रकी कोर, इन के झगडोंसे भगवान् ऊब गए और गरीब बेचारेने जहर का घूँट पी डाला!



सीधी राह मुझे चलने दो!



सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सीधी राह मुझे चलने दो,
अपने ही जीवन फलने दो।

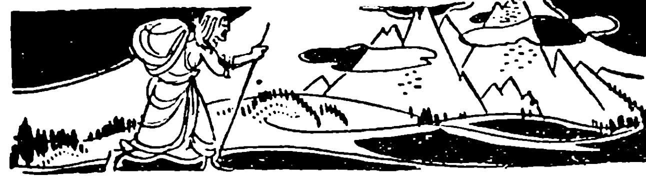
जो उत्पात घात आये हैं,
और निम्न मुझको लाये हैं,
अपने ही उत्ताप बुरे फल—
उठे फफोलों-सा गलने दो।

जहाँ चिन्त्य है जीवन के क्षण,
कहाँ निरामयता संचे तन?
अपने रोग-भोग में रहकर
निर्यातन के कर मलने दो।

सीधी राह मुझे चलने दो!



चरथ भिख्खवे चारिकं



किसी देशमें बौद्ध धर्म के प्रचार का प्रारम्भ करने की बात बुद्धदेव सोच रहे थे। कई अनुयायोंकी उन्होंने जाँच पड़ताल की, कि इस काम को संपूर्ण मन से तथा दृढ संकल्पसे कौन कर सकेगा। निराशा का राज्य अब भी निरंतर था।

आशा की किरन बन, पूर्ण नाम का एक शिष्य बुद्धदेवके सम्मुख आया और कहने लगा —

"भन्दे! आपके संकल्प को मैं पूर्ण करूँगा!"

गौतम ने परख करने के प्रयोजन से कहा :

"मित्र पूर्ण! जानते हो तुम्हें किस देश में जाना होगा?"

"जी, हाँ भगवन्!"

"क्या ये भी जानते हो, कि उस देश के लोग बडे पाशवी, निर्मम तथा दुराचारी हैं!"

"हाँ... भन्दे!

"यदि वे तुम्हारा अवमान करें तो?"

"मैं मानूँगा कि, इन्होंने मुझे ताड़ना नहीं दी है, इसलिए मानूँगा कि जनता सुविचारी है!"

"मान लो उन्होंने ताड़ना दी तो?"

"भन्दे मैं समझूँगा कि इन्हों ने मुझे पत्थरों से पीटा नहीं, अतः लोग बडे विवेकपूर्ण हैं।"

"पूर्ण – शिष्य, समझ लो कि, उन लोगोंने तुम्हें पत्थरों से पीटा तो?"

"गुरो, मैं समझूँगा कि उन्होंने मुझे विकट दण्ड की सजा नहीं दी है इसलिए वे लोग सचमुच ही अच्छे हैं!"

"पूर्ण, सोचो कि उन्होंने तुम्हें मार ही डाला, तो?

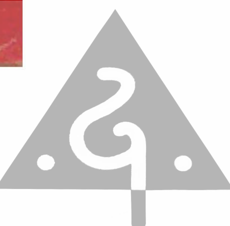
"भन्दे! नश्वर जीवन को त्याग कर कई भिक्षु अपने को मिटाते हैं! ऐसी कोई विनाशकारी वेला मेरे जीवन में आने से पहले ही यह शरीर नष्ट हुआ, इसलिए मैं इन लोगों को ऊंचे उपकारी सुसंस्कृत जन मानूँगा!"

"धन्य! धन्य!! पूर्ण, जाओ! तुम अपने ईप्सित को सफल करो!"

● ●







अनुक्रमणिका

जानते हो, घिनौनी जगह में
सृजन शक्तियाँ मुखरित
होती है, इसलिए—



इ ला च न्द्र जो शी

बात १९३२ के मध्य की है। मैं तब पिछले दो वर्षों से साहित्य-चर्चा एकदम छोड़कर भाई साहब के साथ कलकत्ते में एक लॉण्ड्री के संचालन-कार्य में व्यस्त था। भाई साहब ने जर्मनी से कपड़ा धोने, सुखाने, रंगाने और कलफ करने की ऐसी मशीनें मंगायी थीं, जो इस देश के लिये संभवतः एकदम नयी थीं। उनमें एक साथ सैकड़ों कपड़े मिनटों में धुलकर एकदम साफ हो जाते थे और उतने ही कम समय में उन्हें सुखाया भी जा सकता था।

बालीगंज के एकडालिया रोड़ पर एक बहुत बड़ा मकान हम लोगों ने किराये पर ले रखा था। पन्द्रह-बीस आदमी उस लॉण्ड्री में काम करते थे। नगर के विभिन्न स्थानों में हमारी शाखाएं खुली हुई थीं। मुझे कभी केंद्रीय-शाखा का कार्य-भार सौंप दिया जाता और कभी नगर के मध्य में स्थित किसी दूसरी शाखा का। डॉक्टर लेन की निम्न-मध्यवर्गीय बस्ती के बीच भी हमारी लॉण्ड्री की एक छोटी सी शाखा खोल दी गयी थी। वह जगह इतनी गंदी थी कि कोई भी आदमी वहाँ जम कर बैठना पसंद नहीं करता था। दो-एक दिन के अनुभव के बाद सभी वहाँ से एक एक करके भागकर केंद्रीय शाखा में चले जाते थे। भाई साहब नहीं चाहते थे कि वह शाखा टूटे। इसलिये मैंने साहस करके वहाँ जाकर जमने का निश्चय कर लिया।

एक तो वह गली ही गंदी थी, तिस पर जो दुकान हमें मिली थी वह और थी मनहूस थी! बहुत ही पुराने, छोटे से दुमंजिला मकान के नीचे एक दुर्गंधियुक्त नाली की बगल में वह दुकान थी, फर्श का सारा सिमेण्ट उखड़ चुका था, बिन पुती हुई मैली दीवारों पर यत्र-तत्र दरारें पड़ी हुई थी, मकड़ीके जाले प्रतिदिन सुबह साफ किये जाने पर भी शाम हो फिर नये रूप में दिखायी देते थे। विभिन्न जातियों की चींटियां और चींटे सब समय फर्श के चारों ओर निर्मुक्त विचरा करते थे। बड़े बड़े तिलचट्टे सैकड़ों संख्या में काग़ज़ से बँधे हुए कपड़ों के ऊपर रात-रात भर खसर-खसर, फसर-फसर शब्द करते हुए उनींदे मस्तिष्क में एक विचित्र प्रकार की कटीली सिहरन जगाते रहते थे। अक्सर लंबे-लंबे कनस जूरे और कभी कभी छोटे-छोटे बिच्छू फर्श के नाना छिद्रों में निकलते रहते थे। गरमी और बरसात के दिनों में भी मुझे उसी दुकान में भीतर से दरवाजा बंद करके फर्श पर ही सोना पड़ता था! कई छोटे-छोटे तख्तों को जोड़कर 'फोल्डिंग' की किस्म का विचित्र दरवाजा था वह। कमरे में न कोई खिड़की थी, न बाहर कोई बरामदा, तख्तों के बीच के छिद्रों से थोड़ी-थोड़ी हवा कभी-कभी भीतर आ जाती थी। ऊपर से मच्छर और नीचे से खटमल मेरे रुग्ण शरीर में अवशिष्ट यत्किंचित् रक्त के सोखने रहने के कार्य में निरंतर व्यस्त रहते थे।

ऐसी विकट वस्तुस्थिति में मेरी मानसिकता भी विचित्र रूप धारण करती चली जा रही थी। रात-रात भर जागता हुआ अक्सर मैं सोचता कि ये सब कष्ट हम लोग आखिर किसलिए स्वीकार किये चले जा रहे हैं? जीवन में आर्थिक रूप में सुरक्षित होने के लिये यह जो स्वेच्छाकृत शारीरिक शोषण और मानसिक पेषण हमने सहज रूप में स्वीकार कर लिया है वह क्या सहज ही रूप में आर्थिक संघर्षों से मुक्त कर देगा? मैं इस संबंध में प्रारंभ ही से विशेष संदिग्ध था। फिर सोचता कि यदि इस सारे चक्कर के फलस्वरूप सुदूर भविष्य में कभी आर्थिक मुक्ति मिल भी गयी, तो भी क्या उस से उस शारीरिक तथा मानसिक क्षति की पूर्ति कभी हो सकेगी जिस से हो कर हम लोग गुजर रहे हैं? फिर भी, इस थण्ड के बावजूद, मेरा मन इस सारी परिस्थिति में दिलचस्पी ले रहा था। ऊपर की भारी पीड़ा भीतर से — मेरे अनजाने ही — रस का सृजन कर रही थी।

साहित्य-चर्चा तो पिछले दो-ढाई बरसों से इस तरह बंद की जैसे जीवन में वह कभी मेरा क्षेत्र रहा ही न हो। न मैं कुछ लिखता था, न पढ़ता था। पर सहसा एक दिन उस डाक्टर लेन वाली दुकान के बंद कमरे के भीतर, रात में, खटमलों और मच्छरों की सक्रिय हिंसात्मकता और शोषण क्रिया के बीच में, मेरी तन्द्रित अवचेतना

न जाने किस अज्ञात धक्के में जाग पड़ी, और 'नरक – निर्वासी' कविता का सारा रूपक समूर्त रूप में मेरी आँखों के आगे खड़ा हो गया। दूसरे ही दिन सुबह मैं ने इधर – उधर से कागज़ कलम जुटा कर एक लंबी रूपकात्मक कविता लिख ही डाली।

कविता काफी लंबी थी। उसमें नरक-निवासी की वह स्थिति दिखायी गयी है, जब वह एक ओर अपनी अवचेतना के सहस्रों बंधनों को प्रत्यक्ष देखता हुआ उनकी जकड़ का अनुभव अत्यंत तीव्रता से करता है, और, दूसरी ओर, अपने अंतर असंख्य अंधग्रहाओं के उपर स्थित आलोक राज्य का चित्र-विचित्र रूप भी उसकी आँखों के आगे सुस्पष्ट भासित होता रहता है।

यह कविता मैं जब पूरी लिख चुका तब मुझे सहसा ऐसा अनुभव होने लगा कि युगों से लोहे की वज्र दीवार मेरे अन्तर्जगत और बाह्य – जगत् के बीच पड़ी हुई थी वह जैसे पवन में कपूर की तरह विलीन हो गयी। इतना बड़ा परिष्करण — अंगरेजी में जिसे कहते—कैथार्सिस—मेरे जीवन में इसके पहले कभी नहीं हुआ था। मैं यह सोचने का आदी होने बगर था कि मेरे बाहरी और भीतरी जीवन की सारी अनुभूतियाँ इस लॉंड्री वाले छोटे से कमरे के गंदे, घिनौने और बद्ध वातावरण में सिमट हुई धीरे-धीरे सिमेंट की तरह जकमर पत्थर बनती चली जा रही हैं। पर मैं ने देखा कि वह वज्र-पाषाण फट गया और उसकी दरारों के भीतर में सौ-सौ भाव-निर्झर निर्मल धाराओं में, स्वच्छंद छंदों में फूटकर अनिर्बंध गति से चारों दिशाओं में प्रवाहित होते चले जा रहे हैं।

वह कविता अपने-आपमें कोई महत्त्वपूर्ण कृति नहीं थी, पर उसने मेरी अवचेतन के हृद्य स्रोत को खोलकर मेरे भीतर के मृत कवि और जड़ पाषाणवत् साहित्यकार को जीवित और जागृत बना दिया आज मेरी रचनाओं से पाठक को यह बात अविश्वसनीय लगेगी, और स्वयं मुझे अपनी उन दिनों की मानसिक स्थिति पर विश्वास करने में कठिनाई होने लगती है, फिर भी यह सूर्य-प्रकाश की तरह, मेरे पैरों के नीचे की धरती के तरह, मेरी एक-एक साँस की तरह सत्य है कि उस लाण्ड्रीवाले काम में—प्रायः ढाई बरसों तक—मैं ने अपने भीतर के साहित्य-सृष्टि से एकदम मृत और सदा के लिये प्रासिमूल मान लिया था। उन दिनों मैं इस वक्त को एकमात्र भी कल्पना नही कर पाता था कि इस जीवन में फिर कभी मेरे भीतर का साहित्यकार प्राण घायल कर मरेगा।

इस साहित्यिक पुनर्जन्म के बाद युग–युग में मेरे अन्तर में सोयी पड़ी हुई सृजनशील शक्तियाँ ऐसी जागरित हुई जैसे अमावस्या के कारण अंधरात्रि के बाद सूर्य की पहली किरणों के स्पर्श से जगकर सैकड़ों पंछी एक दूसरे से पहले चहकने के लिये उतावले हो उठे हों। उस लॉंड्री के संकीर्ण घेरे और चारों ओर के अस्वास्थ्यकर वातावरण के बीच में बँधे रहने पर भी मेरी आत्मा के लिये जैसे अपना के सौंदर्य–लोक का पर्दा एकदम उघड़ गया था और विश्व के विराटता का पथ जैसे पूर्णतः प्रशस्त हो गया था। धुलने को आये हुए गंदे कपड़ों के बीच में बैठकर मैं दिन–पर छंद पर छंद गढ़ता और कविता पर कविता रचता चला जाता था। पुरानी से पुरानी भाव छवियाँ नये से नये प्रतीकों के रूप मे मेरे आगे भासित होती जाती थीं और न ये प्रतिमान पुरानी से पुरानी भावाकृतियों को अपनाते चले जाते थे। 'विजनवती' की अधिकांश कविताएँ इन्हीं दिनों रची गयी थीं।

मेरे भीतर इस प्रकार सहसा साहित्यिक भूत के फिर नये सिरेसे जाग उठने के चिह्न स्पष्ट ही लॉंड्री के अस्तित्व के लिये शुभ नहीं थे। इस बीच कुछ ऐसी रहस्यात्मक शक्तियाँ चारों ओर से काम करती चली गयीं जो लाण्ड्री के केन्द्रगत अस्तित्व के लिए विधातक सिद्ध होने लगीं। कहीं किसी शाखा में चोरी हो गयी, कहीं कपड़े समय पर नहीं पहुँचने लगे, कहीं गाहक दंगा मचाने लगे। इस प्रकार सारी व्यवस्था गड़बड़ हो गयी और सारा कारोबार ठप्प होने की स्थिति में आ गया। फल यह हुआ कि भाई साहिब ने डाक्टर लेन की शाखा बंद करवा के मुझे एक दिन फिर केन्द्रीय शाखा में बुला लिया और उसी दिन उन्होंने एक नयी योजना मेरे सामने रखी। वह योजना थी 'विश्ववाणी' नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन। उन्होंने कहा कि सारी मशीनों बेचकर जो रुपया प्राप्त हो उसे पत्रिका के प्रकाशन–कार्य में लगाया जाय। इस मनोनुकूल योजना की खुशी के सागर में इतने दिनों के परिश्रम मे जमायी हुई लॉंड्री के चौपट होने का सारा दुख ऐसे बह गया कि कहीं उसका लेश भी न रहा।

उसी दिन संध्या को हम दोनों के बैठकर पहले तीन अंकों की विषय–सूची प्रत्येक लेख के सुस्पष्ट नामकरण के साथ क्रमबद्ध रूप में तैयार कर ली।

दूसरे दिन से मशीनों के गाहक की तलाश की जाने लगी। गरज के वक्त गाहक मिलना दुर्लभ हो गया। बड़ी खोज़ के बाद अंत में एक गाहक मिला जो दो हजार से एक पैसा भी अधिक देने को किसी भी हालत में तैयार न रहा। मशीनें हमने कईगुना अधिक दामोंपर खरीदी गयी थी। दोनों की सलाह से अंत में यह तय हुआ कि उतने ही मूल्य पर मशीनों को बेच देना चाहिए। उसका दर्शन–मात्र अब आँखों को खटकने और पीड़ादायक स्मृतियों को जगानेवाला बन गया था।

नकद रुपया प्राप्त होने पर तत्काल

आवश्यक कागज़ खरीद लिया गया। एक बंगाली मुद्रक मिल गये। [जिन्हों ने बताया कि मेकमिलन कंपनी की हिंदी संबंधी छपाई का काम वही करते हैं। सच झूठ का कुछ खयाल न करके] हम लोगों ने उन्हीं से छपाई की बात तय कर ली। अब मैटर तैयार करने का काम आरंभ हुआ। भाई साहब ने सामयिक दृष्टि से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और रोचक लेख तैयार किया: 'स्पेनिश विप्लव की रोमांचकर झाँकियाँ।' रोमांच का 'एण्टीथीसिस' हास्य होता है। इस लिये दूसरा लेख मैं ने तैयार किया, जो एक हास्यरसात्मक फेन्टेजी थी। उस का शीर्षक रखा गया 'मेरा स्वर्ग-प्रवास।' इस के बाद एक नोबेल पुरस्कार प्राप्त डाक्टर के लेख का निचोड़ भाई साहब ने तैयार किया, जिस में उक्त डाक्टर ने बड़ी सरल भाषा और सुगम शैली में यह बताया था कि पिछले पचास वर्षों में चिकित्सा के क्षेत्र में क्या-क्या नये और महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए हैं। कम से कम दो कहानियाँ आवश्यक समझी गयीं मैं ने एक मौलिक कहानी लिखी: 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ।' यह शीर्षक भाई साहब ने सुझाया था। यह कहानी इम्प्रेशनिस्टिक अथवा बिंबात्मक शैली में लिखी गयी है और मुझे आज भी अपनी कहानियों में सर्वाधिक प्रिय लगती है। भाई साहब ने एक मूल नार्वेजियन कहानी का अनुवाद दिया। उन के पास तब भी नार्वेजियन, जर्मन, फ्रेंच और इटालियन पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें नियमित आती जाती रहती थीं।

एक मौलिक लेख भाई साहब ने नीत्शे के जटिल और गहन दर्शन के मूलगत तत्त्वों पर लिखा। [हिंदी में वह अपने विषय का पहला लेख था। पता नहीं वह लेख बाद में कैसे यूरोप पहुँच गया और नीत्शे के एक अंगरेज भक्त के हाथ लग गया। इसने उसे (अथवा इसका अनुवाद) पढकर भाई साहब को अपने द्वारा किये गये नीत्शे के अनुवाद भेट किए थे।] एक और मौलिक लेख भाई साहब ने साहित्य की मूल प्राण -धारा पर लिखा। उस में हिन्दी साहित्य की तत्कालीन छापी प्रगति पर कुछ छींटे कशे गये थे, जो हिन्द के कई लेखकों और कवियों को अप्रिय लगे। विश्वविख्यात नाटककार स्ट्रिन्डबर्ग के कुछ पत्रों का अनुवाद भी एक लेख के अंतर्गत उन्होंने दिया। वे पत्र स्ट्रिन्डबर्ग ने उस स्थिति में अपने प्रकाशक के नाम लिखे थे जब वह नया-नया साहित्य क्षेत्र में उतरा था और अपनी शोचनीय आर्थिक स्थिति के कारण विवश होकर प्रकाशक की मूर्खतापूर्ण माँग को अनुसार अपनी दुर्दमनीय प्रतिभा की सहज आवेगमयी प्रवृत्तियों को यत्र-तत्र दबाने के लिये बाध्य हो रहा था। उस घोर विवशता की स्थिति में भी अपने अपने प्रकाशक पर बीच-बीच में कड़े व्यंग कसे हैं।

'मैं ने 'आगामी' अर्थात् (द्वितीय) महायुद्ध के विश्व-विनाशी रूप पर एक लेख तैयार किया, जिन में आंतरराष्ट्रीय आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष,

जर्मनी, अमेरिका और रूस को निरंतर बढ़ती हुई शक्तियाँ, 'टोटल वार' 'ब्लिटस-क्रीग,' आनेवाले अणु-अस्त्रों की संभावना आदि पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया था। एक और लेख मैं ने लिखा जिसका शीर्षक था, हमारी देवियाँ किस ओर जा रही हैं। इसमें यह दिखाने की चेष्टा की गयी थी कि हमारे देश के सामूहिक नारीमन पर एक ओर गांधीवादी शक्तियों का और दूसरी ओर अंतर-राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का प्रभाव कैसी प्रचंड रासायनिक प्रक्रिया द्वारा कुछ प्रकट में और कुछ अदृश्य में पडता हुआ भी विचित्र करिश्मे दिखाने जा रहा है।

इन लेखों के अलावा दो विशेष स्तंभों की अवतारणा 'यत्किंच जगत्यां जगत्' और 'प्रबोध-चंद्रोदय' नाम से की गयी। पहलेवाले स्तंभ में संसार की विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामयिक, राजनीतिक तथा आर्थिक विषयों पर चुने हुए चुनते मंतव्य संकलित किये गये और दूसरे स्तंभ में कुछ विशेष रोचक मायाभरे प्रसंगों को व्यंगात्मक लेंस के फोकस पर उतारा गया।

पर इन मन लेखों व प्रसंगों से भी कमाल की चीज सिद्ध हुई मेरी 'नृत्य' शीर्षक कविता, जो पत्रिका के प्रथम पृष्ठ पर छापी गयी थी। इस कविता के कारण हमारी नव प्रकाशित प्रत्रिका पर सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े। इस कविता में मैं ने महाकाल की चिरन्तर भैरव-लीला की पृष्ठभूमि में जीवित जगत् के प्रतिदिन के वैयक्तिक तथा सामूहिक जीवन की करुण विवशता-जीवन वेदना का 'कंट्रास्ट' विविध प्रतिमाओं द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया था। उस का अंतिम छन्द इस प्रकार था :

नाचो नाचो भ्रमानिश के महाकामंडल में
लयंकरी लीला दिखला पल-पल में
हडकास! तुम करो विभूषित नर्तन
अंध सृष्टि के रंध्र-रंध्र में
जगे बंधहर चेतन
तुम तो नाच रहे हो प्यारे
वसन कराल पहनकर
अगणित सूर्यों की माला
की ज्वाला नित्य पहन कर
पर यह देखो लक्ष-लक्ष
नर-नारी आर्त हृदय से
अन्न-वस्त्र की भिक्षा चाह
रहे हैं किस निर्दय से
रोग शोक से क्षुधा-तृषा से
जन्मावधि है पीडित
जगत्-चक्र के पेषण से
हैं निशिदिन त्रस्त विताडित
नहीं शक्ति जीने की उनमें
नहीं चाह मरने की
ज्ञानहीन पशु-सम चिंता
है क्षुधा शांत करने की
इनकी वह मोहार्त वेदना
कैसे हाय भुलाऊं
मस्तक ऊँचा करने का क्या जीवन-
मंत्र सुनाऊँ।

पहला अंक जब पूरा छप गया तब उसकी सचित्र रूप रेखा, सुन्दर छपाई मनोरम कलेवर और मनोनुकूल लेख देख कर मेरा मन फूला नहीं समाया, पर उसे निकले एक सप्ताह की न बीतने पाया कि सहसा लाल बाज़ार थाने के खुफ़िया विभाग में एक पत्र हमें मिला जिसमें यह आदेश जारी किया गया था कि हम उक्त विभाग के दफ्तर में जाकर यह प्रमाणित करें कि हमें अपने पत्र में राजद्रोहात्मक कविता लिखने के लिये क्यों न सजा दी जाय, और क्यों न पत्र में जमानत माँगी जाय! वह पत्र पढ़कर हँसते-हँसते मेरे पेट में बल पड़ गये। 'सजा' की कोई चिंता मुझे नहीं थी, क्योंकि तब गांधीजी सबके भीतर में जेल का भय भगा चुके थे। पर अपना प्रिय पत्र बंद हो जाने की आशंका में चिंतित हो कर नियत दिन पुलिस के दफ्तर में पहुँचा।

वहाँ एक अधेड़ वयस्क बंगाली सज्जन ने मेरा नाम पूछा और फिर 'विश्ववाणी' का वह अंक खोलकर मेरी कविता मुझे दिखाते हुए बोले। "यह क्या तुम्हारी ही लिखी हुई है?" मेरे स्कारने पर उन्होंने कहा : "इस प्रकार की राजद्रोहात्मक कविता छापने का दुस्साहस तुमने क्यों किया?" मैं ने उन्हें समझाया कि उनमें कहीं राजद्रोह का लेश-गंध भी नहीं है और वह विशुद्ध काव्य-कलात्मक दृष्टि से लिखी गयी है, मैं ने ह्युगो, बायरन और शेली की कुछ जोशीली कविताओं के नमूने उन्हें सुनाते हुए कहा कि उन्हें कभी किसीने राजद्रोहात्मक नहीं माना। महाशयजी पर कोई प्रभाव न पडते देखकर मैंने अपनी समझ में ब्रह्मास्त्र छोडा — रवीन्द्रनाथ की 'एबार फिराओ मोरे' तथा कुछ दूसरी कविताओं में कुछ ऐसी पंक्तियाँ सुनायीं जो वास्तव में राजद्रोहात्मक मानी जा सकती थीं। और तब उनसे पूछा कि रवीन्द्रनाथ से क्यों उस तरहकी कविताओंके लिये जवाब तलब नहीं किया गया? तब तक मेरी धारणा थी कि प्रत्येक बंगाली रवीन्द्रनाथ की कविताओंका भाव समझता होगा-फिर चाहे वह पुलिसवाला ही क्यों न हो। पर मैं ने देखा कि महाशय जीपर मेरी उस बात का भी तनिक प्रभाव न पड़ा और स्पष्ट था कि वह उन कविताओं का भाव तनिक की समझ न पाये। बोले : "कवि ठाकुर की इन कविताओं में कहीं भी विद्रोह का भाव नहीं है।"

उसके बाद उन्होंने अँग्रेजी में टाईप किया हुआ एक कागज़ इस तरह उठाकर मेरे मुँह के सामने रखा जैसे वह कोई शीशा दिखाते हुए मुझसे कह रहे हो कि

(शेष : पृष्ठ ३० पर शुरू)

जातीयता का खण्डन करनेवाले
महानुभावों को
एक पन्थ



लेखकों की जातियाँ

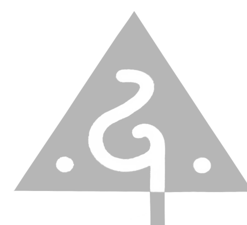
प्र भा क र मा च वे

आप कहेंगे कि धर्मातीत, जात्यातीत (कम से कम संविधान के अनुसार) भारत वर्ष में आप यह और कौनसा जातिभेद का पचड़ा ले बैठे ? निवेदन है कि यहाँ जाति से मतलब कबीर वाली 'याति' से नहीं है, व संताराम जी की 'जात-पाँत-तोड़क-मंडल,' वाली जन्मता जाति से। पर जाति का यहाँ अर्थ है 'किस्म', स्पीशीज़। मेरी सैंतीस बरस की अल्पायु में, होशमें आने के बाद से; गये बीस बरस में बीसियों ('चौर सौ' में संज्ञा विशेषणरूप संख्याबोधक अव्यय का जानबूझकर प्रयोग नहीं कर रहा हूँ) अच्छे-बुरे और-दोनों कोठियों से गये-बीते साधारण – अतिसाधारण– अनन्य–साधारण, श्रेष्ठ– ज्येष्ठ–कनिष्ठ–निकृष्ट–इतने प्रकार के लेखकों और साहित्यिकों के संघर्ष में आया हूँ कि उनका कच्चा चिट्ठा लिखूँ तो एक महाभारत बन जाय। एकबार जब बेवर्ली निकोल्स की किताब '25' पढी थी तो मन में हुआ था कि ३६ नामकी किताब लिखी जाय। ३ और ६ तो वैसे ही हैं। सोचा कि वैसे ही 'सादुल्ला खरी – खरी कहे, सब के मन से उतरा रहे' वाली कहावत हमपर चरितार्थ होती हैं; और वैसे ही यार लोग खिंचे – खिंचे, जले – भुने रहते हैं—हिंदी भाषावाले, हमें मराठी भाषी समझते हैं, और वक्त – ज़रूरत अनुवादक समझकर कार्य करा लेते हैं; और मराठीवाले तो हमें मराठीभाषी मानते ही नहीं, हिंदी का पक्षधर कहकर जैसे मैं मातृ–भाषाद्रोही हूँ, ऐसा सलूक करते हैं — ऐसी दशा में 'आ बैल और मुझे मार' के हिसाब से लेखकों के बारे में कुछ खरी – खोटी कहने जाओ और उलटे जो आज दो-चार भूले भटके दोस्त बचे हैं उन्हें भी दुश्मन बना लो, ऐसा किसने कहा है ? सो, शुरूमें ही केहुनीजोड़ निवेदन है कि उक्त या निम्न लेख में लेखक का अर्थ हिंदी या मराठी का लेखक नहीं। पर भारत की सभी भाषाओं के लेखकसे हैं। सन् ४८ से ५४ तक छह बरस रेडियो में खाक़ छानते हुए, बन्दे को इलाहाबाद, दिल्ली, नागपुर जैसे लेखकों के 'गढों' में या 'दुर्गों' में भाँति – भाँति के क़िसम – क़िसम के और तरीक़ तरीक़ लेखकों से पाला पडा है, उनकी सुहबत संगत का सौभाग्य – दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है, कइयों को भुगता है, सहा है, झेला है ! बहुत निकटतासे जाना है, पह-चाना है, गुना है, सुना है, पाया हैं–खोया है। और गये डेढ दो सालसे हिंदी–उर्दू–पंजाबी–इंग्रेजी–मराठी के अलावा और भी भारत की दस भाषाओं के लेखकों से भी बहुत निकट संपर्क, विचार–विनिमय का मौक़ा मिला। और नीचे जो कुछ मैं लिख रहा हूँ। वह इन्हीं तथ्योंपर अधारित 'ऑब्जेक्टिव रिपोर्टिंग' है। कोई भी लेखक अपने सिर के ऊपर इन टोपियों को न बिठा ले, इसके लिए न लेखकों के नाम कहीं दे रहा हूँ, न भाषाओंके।

लेखक जाति के प्राणी की सबसे बड़ी कमज़ोरी क्या होती है ? कोई यह सवाल पूछे तो पहला जवाब मैं यह दूँगा कि लेखक की पहली कमजोरी वह 'स्वयम्' है। प्रायः सब लेखक—अपने आपको बडे समष्टिवादी, समाजसुधार और क्रांति और जीवन और मानवता के लिए लिखनेवाले समझनेवाले भी — अंततः 'स्व'—केंद्रित होते हैं। बल्कि बहुत बार यह 'स्व –' केंद्रितता छिपाने के लिए ये आदर्श व ढाल की तरह या या मुखौटे की तरह ओढ लेते हैं। मुखौटों के साथ बड़ी सुविधा यह है कि वे 'गंगा गये गंगादास,' 'जमना गये जमनादास' बदले जा सकते हैं— पर मूल व्यक्तित्त्व का रंग बदलना असंभव होता हैं ! गिरगिट की, 'हवाई मुर्ग' की ('वेदर–काक' का कोई पारिभाषिक अनुवाद 'जेव्वायु–ताम्रचूड़' भी बतलाते हैं, पर उसमें ताम्रता रक्तवर्णी होने से हम त्याज्य समझें) या अन्य 'कोटबदल' अवसरवादियों को उपमाएँ भी कुछ लेखकोंको दी गयी है— पर यह दोष एकदम हवा का है (बेचारे लेखक का तो दोष कभी हो ही नहीं सकता)

अनुक्रमणिका





जैसी वहै बयारि, पीठ तव तैसी दीजै '— लेखक जाति के पीठ-धर्म (गुलेरीजी का कछुआ-धर्म आपने पढा ही होगा) का यह प्रमुख सिद्धान्त है।

सो यह लेखक का मूल 'अहम्' या 'स्व' क्या, कैसे, क्यों, कहाँ, किसलिए, किस प्रकार फूट पडे यह कहना और ऊँट किस कर वट वैठेगा यह ऊँट की कुंडली माँडकर भविष्यकथन कर पाना, एक ही सी कठिन समस्याएँ हैं। आचार्य मम्मट बहुत सालों पहले कह चुके हैं—'काव्यम् यशसेऽअर्थ कृते'। सो लेखक जाति की 'लास्ट इन-फर्मिटी ऑफ नोवल माइंड्स' है यशैषणा! उन मन्दयशप्रार्थीजनों को छोडिये जिनपर हजारीप्रसादजी ने बहुत अच्छा निबंध लिखा है- 'क्या आपने मेरा लेख पढा है!'- पर बड़े बड़े, नामदार और यशवंत लेखकों के इन तीन कंचुकों में से तीसरे से उवार नहीं मिला है। बुद्धके दर्शन में कांचन-कामिना और कीर्ति ये तीन कुटिल कंचुक कहे गये हैं। सो कीर्ति के लिए प्राचीन सुभाषितकार ने घडे फोड़ने, कपडे फाडने (मजनूं ने बेचारे ने कीर्तिके लिए ऐसा काम नहीं किया था।), गदहेपर सवारी करने और 'एन केन प्रकारेण' का नुस्खा दिया था पर आधुनिक समयमें इसके अनेक पर्याय निकल आये हैं। राजनीतिसे रंजित आधुनिक लोकमानसमें कीर्तिकुमारीके स्वयंवरमें 'रघुवंश' वाला नज्जारा नहीं उपस्थित होता, पर पता नहीं यह पगली 'पब्लिसिटी' किस बुध्दू या असाधारण के गले में अपनी वरमाला डाल दे। इसका कोई कोष्टक या फार्मूला नहीं। असल में स्त्रियों की पसंद होती ही है ऐसी विचित्र, जिस के बारे में पहले से कुछ न कहा जा सके, अननुमेय। सो यदि फारसी कवि के शिकायत की 'ताजे अरबी घोड़े के कंधे पर जूआ है और वह भूखों मर रहा हैं, जब कि गदहे के गले में जरीन तौक़ (पदक) पहनाया गया है।' तो उस में उतनी बुरा मानने की बात नहीं है। राजनीति और सिनेमा ने यश को बसस्ता लगा दिया है, भ्रमर के गीत शब्दों में पुकृति आनि मंद में मेली, तो इन उद्धवों के लिए भ्रमर बनना कोई अलाज की बात नहीं।

सो लेखकों की प्रथम जाति यशैषणा के लोभ में वे सब अटकल पच्चू और योजनाबद्ध तरीके अख्तयार करती है जो कि राजनीतिमें यशःप्राप्ति के प्रमुख साधन हैं। यानी अच्छे व्याख्यान, हाथपैर पटककर, मुद्राभिनयादि के साथ, देना; एक प्रशंसकों का गिरोह, सिद्धसाधकों का गुट या उनकी जमात साथ ले चलना। कबीर साहब ने जब कहा था तब की बात को अब पाँच सदियों से ऊपर बीत चुके—

सिंहों के लहँडे नहीं, हंसों की नहीं पाँत
लालोंकी नहीं बोरियाँ, साधू न चले जमात!

अब तो एक एक शहर में हज़ार हज़ार मानव नामधारी सिंह और सैंकडों सिंह नाम-धारी लेखक एक एक भाषा में प्राप्त हो सकते हैं। अकेले बनारस में (और ये सब लेखक हमारे मित्र होने से बुरा नहीं मानेंगे ऐसी आशा है) शिवमंगलसिंह, 'सुमन' वैजनाथसिंह 'विनोद', शम्भूनाथसिंह, ठाकुर प्रसादसिंह, बच्चनसिंह, मनावरसिंह, केदार-नाथसिंह आदि आधा दर्जन लेखक सिंह हुए। रही हंसों की बात, तो हिंदी में एक था बेचारा—प्रेमचंद ने उसे मोती चुगाये थे—पर अमृत के लोभ में, "हंसी चला फाख्ता की चाल" और शांति-कपोत बनने के बदले उसने तुलसी के चातक की तरह असमान की ओर मुँह करके चोंच बा दी। अब तिरी कहानी रह गयी है!

तो हम कह रहे थे कि राजनीति के अखाडेबाजों की बुरी छाया साहित्यिकारोंपर आ पडी है। यदि आप दल-विशेष के 'मिंबर' है तो आपको चाहे 'का' के नाम 'खा' साहित्यका न आता हो, रातोंरात आप महाकवि, महानाटककार और महोपन्यासकार हो सकते हैं। उसमें क्या शक है? और उससे उलटे अगर आप दो खेलोंमें कहीं नहीं है, डबल-एंजिन रक्त-राग-रोती राजनीति या डालर डंपित डरौनों से डमडमित 'डील-डौल, में कहीं नहीं है—तो तो आप कःपदार्थ हैं। आप न कुछ है; आप 'नोटिस' लेनेलायक नहीं। मैं यात्रा में था—तो एक वृद्ध साहित्यिकने एकांत में मुझे ले जा कर फुस-फुसाती आवाज में सौदा करती-सी ध्वनि में कहा—देखिये जी, आप की राष्ट्रीय सर-कार लेखकों की कोई आर्थिक सहायता नहीं करेगी, तो हमारे पास अमुक-अमुक का (बम्बई से) 'ऑफर' है। हमारी चीजों के रूसी (—तथा अजर वैजानी-कजाकि-स्तानी-कामश्मत्की, जार्जियानी, कुर्दिस्तानी इत्यादि इत्यादि) में अनुवाद वे करने को

अनुक्रमणिका




तैयार है। बोलिये ! (मानों वे कहना चाहते थे – कितने में माल उठाते हो । बोलो, बोली बोलो !) अन्यत्र दूसरे वृद्ध ने कहा – आप नये साहित्यिक समर्थक है ? बस, आप प्रच्छन्न कम्युनिस्ट हैं ?

पर यह नीलाम की वृत्ति वृद्ध लेखकों के अधिक वयानुसार अति लोभ की स्वाभाविक बात नहीं ; यात्रा में मुझे एक तरुण लडाकू लेखक भी मिले और कहने लगे — मिस्टर, तुम अपने देश के साहित्य की बात करते हो ! अपना देश क्या है ? दुनिया के शोषित लेखक आज एक हैं ! तुम अवश्य व्यस्त स्वार्थोंवाले प्रकाशकों और उनकी पीठके पीछे बैठी पश्चिम बडी बडी पूंजीवादी व्यक्तियोंके एजण्ट हो ! मैं अवाक् रह गया। अभी–अभी वृद्ध महोदय मुझे एक प्रदेश में कहा कि ' क्ष ' साम्यवादी हैं; अब यहाँ पता चला कि ' क्ष ' अमरिकी एजंट है—सो 'क्ष' आत्मशोधन करे पता चला कि ' क्ष ' विशुद्ध भारतीय है ! और ये दोनों चश्मे-वाले पुराने–नये गुटबाज लोगोंके प्रतिनिधि ' जाकी रही भावना जैसी। प्रभुमूरति देखी तिन तैसी ! की रहे हैं।—

लेखक जातिकी दूसरी कमजोरी कांचन है, कहींसे मिले–वह स्वीकार्य है। साधनों की शुचिता वगैरेह टेक्स्टबुकवाजीमें वह कभी की डूब चुकी !

पर भारतीय कह देने से भी छुट्टी नहीं नहीं मिलती। भारतीय की भी दुर्भाग्यसे आज कई परिभाषाएँ हैं, कुछ लेखक ' रामजी ' और ' सीतामाई ' के जमाने का भारत फिरसे लाना चाहते हैं। जैसा कि कंबन, एकुत्तच्छन, कृत्तिवाला, एकनाथ और तुलसीदास ने उसे देखा था उसी 'पॅटर्न' पर कुछ लोगों के लिए बौद्ध भारत स्वर्णकाल है और आपका सहज विश्वास है कि बर्मा-लंका-तिब्बत के पडोसी होने से वह काल पुनः लौट आ ही सकता है; कुछ लोग अकबर के जमाने के ' दीने-इलाही '-युग के और कुछ लोग राणा प्रताप-शिवाजी के युग के और इसी प्रकार से कई अन्य-अन्य युगों के लौट आनेका सुनहला,-रुपहला-भगवा-लाल-पीला सपना लेते रहते हैं। यों लेखकों की जाति की यह तीसरी कमजोरी सपने लेते रहना, यानी ' फूल्स पॅरेडाइज ' में रहना है और वही ' पॅरेडाइज़ लास्ट ' हुआ कहकर ज़ार ज़ार आठ आठ आँसू बहाना भी बहुत आम अनुभव है।

इसी कमजोरी का एकप हलू 'जे किछू चाई ताहा भूल करे चाई', 'जाहा पाई ताहा चाई ना,'—रवींद्रनाथकी उक्ति है कि जो कुछ चाहा वह गलती से चाहा और जो मिला वह भयोरे अनचाहतको संग है। इस कारणसे लेखक जातिकी तीसरी बहुत बडी शिकायत है : 'श्रोताभाव','अरसिकेषु कवित्त्व निवेदनम्', ' उणीव रसिकांचीच खरी ' 'क्या कहें दाद नहीं मिलती!' 'गुन ना हिरानो, गुनगाहक हिरानो है!' सो जहाँ भी, जरा भी, उनकी भावुकताको सहलाने–गुदगुदानेवाला सहारा मिल जाता है! लेखक महाराज ऐसे हो जाते हैं जैसे बतासे पर पानीकी बूँद ! पर कहते हैं कि स्तुतिप्रिय तो साक्षात् 'ईश्वर' है। फिर लेखक तो मनुष्य ही है ? और हर लेखकका अपना यौवन या 'वसंत' होता है। वह मौसम बीत जानेपर वह बाकी समय ' बहुरै आवै वसंत रित, इन डालत वे फूल, ' सुखी री यह डाल बसन बासंती लेगी ' की ' गयी सुबीति बहार ' वाली ' सुधि का अरुण बाण ' जिसके उरमें सदा सालता हुआ है ऐसे जीता है। उसी दर्दमें (आदतन) उसे मजा आने लगता है। एक उर्दू लेखक मखमूर देहलवी की इसीलिए बडी ही दर्द भरी शिकायत है ' यहाँ परभी बहुत मिलते हैं, मगर दिल नहीं मिलता ! '

सो अपने दस पंद्रह साल के लेखक जाति के निरक्षण और निकट सहवास से मैंने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे ये हैं (१) लेखक एक चिर–असंतुष्ट प्राणी होता है। उसे खूब पैसा मिले, तो उसे संतोष नहीं। उसे मान-मर्यादा मिले, तो भी उसे संतोष नहीं। उसे सुंदर स्त्री मिले, फिर भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह उस के साथ निष्ठापूर्वक जीवन बिताएगा ही।

(२) एकनिष्ठता उसके लिए अभिशाप है। वृक्ष की भाँति वह एक जगह रहे तो ठूँठ हो जाय। गतिमानता उसकी छुट्टीमें ही पड़ी है। एकसी स्थिति उसे प्रिय नहीं। परन्तु अत्यधिक गति भी उसे धका देती है। 'पान सडा क्यों, पाठ भूला क्यों, घोडा अडा क्यों ?'— फेरा न था —सो लेखक भी जो यात्रा न करे, इधर - उधर न जाय, समाज और सभाके सवस्तरों में संचार न करे — वह बासी हो जाता है। लेखक के लिए सबसे बुरी बात यह है कि वह निरंतर प्रवादमान न होकर, अपने आपको दुहराना शुरु कर दे। एक ' रट ' में लीके, लीके चले !

(३) लेखक अनुभूति और अभि-व्यक्ति में की उत्कटता एकसा संतुलन होगा ही यह आवश्यक नहीं है। यानी उसके जीवन और लेखनमें २ + २ = ४ वाला सीधा रिश्ता होगा ही यह जरूरी नहीं है। कभी-कभी बहुत ही दुश्चरित्र लेखकोंने श्रेष्ठ, विश्वका चरित्र बनाने वाले ग्रंथ या रचनाएँ लिखी हैं। इससे उलटे लीक-लीक चलनेवाले, पीनलकोड और धर्मशतक की सब धाराओंका मर्यादापूर्वक पालन करनेवाले शेख या प्यूरिटन लेखक वंध्याकी भाँति कोई महान् रचना नहीं पैदा कर पाये हैं। सो इस बारेमें कोई नियम बनाना खतरेसे खाली नहीं।

संक्षेप में लेखक एक अनोखा अराजकवादी, जीव होता है। और ऐसे जीव की जातियों का कोई वर्गीकरण हो नहीं सकता। कई लोग है जो जन्मना और आमरन्त लेखक हैं; कईयों पर लेखकी उडा दी जाती है, और कई हैं कि लँगडाते – घिसटते लेखक बन ही जाते हैं। जो लेख लिखे सो ही लेखक होता तो गनीमत थी; पर अब तो न लिखनेवाले भी लेखक माने जाने लगे हैं; और कई हम जैसे बहुत बहुत कुछ बहुत असें से लिखते रहने पर भी लेखकों की कोटि में नहीं गिने जाते। लेखकों को जमा करना मेंढकों की पोटली बाँधने के बराबर है—बँगला कहावत अधिक चित्रोपम है। मराठी कहावत ' आँवले की गठरी ' भी सार्थक है।



अनुक्रमणिका

'चलो धोबी बने'

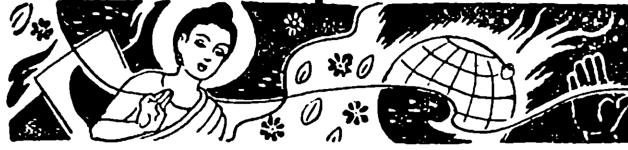
(शेष भाग : पृ. २६ से आगे शुरू)

"इस पर अपना चेहरा देखा तो।" इसके बाद उन्हों ने वह कागज मुझसे पढ़ने को कहा। बोले : "यह तुम्हारी कविता का अँग्रेजी अनुवाद है। उसे पढ़कर भी तुम क्या यह कह सकते हो कि यह राजद्रोहात्मक नहीं है।" मैंने ध्यान से उस अनुवाद को पढा। इस हद तक विकृत और बदमाशी से भरे अनुवाद की कल्पना मैं कभी नहीं कर की सकता था।

(ऑल इण्डिया रेडिओ – इलाहाबाद के सौजन्य से)

● ●

शान्ति – दीपक



सरस्वतीकुमार "दीपक"

शान्ति का दीपक जलाती हैं, मिलन की बातियाँ।
विश्व को कुनबा बनाती हैं, जगत की जातियाँ।

शान्ति का दीपक, रुधिर से कब जला?
कौन सा प्रगा, प्राण लेकर है पला;
कह रहा इतिहास का यह रुद्रस्वर —
विश्व को अनगिन रणों ने है छला;
हो रहे हैं कुछ गिने जन ही विदा,
सौंपकरके पूर्वजों की थातियाँ।
शान्ति का दीपक...

यह दिया कब दो करों का दास है,
इस दिये में कोटि उर का वास है;
ज्योति है यह विश्व के कल्याण की
और जलना सत्य है विश्वास है;
स्वार्थ में डूबे हुए अन्याय हग,
पढ़ सके, कब प्रीतिकी ये पातियाँ?
शान्ति का दीपक...

दीपमाला अब वही उपयुक्त हो,
विश्व रत्न की भीति से उन्मुक्त हो;
और जग की पूर्ण जनता मुक्त हो,
मुक्त हो, अनुराग से संयुक्त हो;
आ रहा अनगिन युगों से भेटता —
न्याय ही, अन्याय की परिवारियाँ।
शान्ति का दीपक...

दीपिका का रूप धर कर वह धरा,
"मत बनाओ" कह रही "अनूउर्वरा";
युद्ध में संहार. जय की हार है,
शान्ति का संगीत है जादूभरा;
अब नया नर यह नया प्रण कर रहा,
"हम न पाटेंगे शवों से घाटियाँ।"
शान्ति का दीपक...



अनुक्रमणिका

मुँह क्यों न हो ?



ब्रह्मा ने संसार की रचना करने के बाद एक दिन देवी पार्वती ने श्री शंकर भगवान् से कहा, चलिए हम जरा संसार की सैर करें।

वे दोनों अपनी यात्रा में रममाण थे; जाते जाते उन्होंने एक आदमी देखा कि जिसके चेहरा है लेकिन मुँह नहीं।

अचम्भे से दंग पार्वतीने भगवान् से पूछा,

"भगवन् बिना मुँहवाला ये है कौन?"

"प्रिया, इसे 'जाट' कहते हैं।"

उलझन और भी घनी बना, इसलिए पार्वती ने फिर से पूछा:

"सारे प्राणियों के मुँह हैं, लेकिन इसके नहीं; यह तो सरासर अन्याय है!" वाणी से क्षोभ जाग रहा था।

पुरुषों का विचार तर्क पर आधारित होता है, इसलिए श्री शिव ने समझाते हुए कहा:

"देवी, यह ठीक ही है कि इसके मुँह नहीं।"

"छीः, छीः, वह कुछ सुनेंगी नहीं हम। अभी के अभी इसके मुँह बनाओ।" पार्वतीने आग्रह से आज्ञा की और शिव जी मुँह बनवाने के काम में जुटे; पत्नी को नाराज करना जरा सख्त खतरा है!

श्री शिवने कुल्हाडी के घाव से उसको फाडा और मुँह बना दिया। बनाने की विधि पुरी होने पर दुलार भरे स्वर में उन्होंने कहा:

"मेरे, प्रिय पुत्र...!"

उस जाटने होटों को हिलाया और तुरन्त कह डाला:

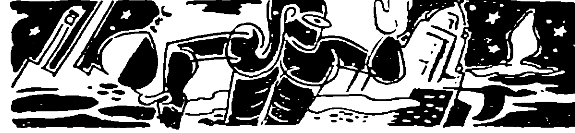
"क्यों बे साले?"

यह सुनकर शिवने महादेवी की ओर देखा और कहा "दक्ष-पुत्री, सुना तुमने?" इसीलिए मैं ने कहा था कि ठीक ही है कि इसके मुँह नहीं।"

पार्वती को बडा रंज हुआ कि उसने बेमतलब से जाट को मुँह दिलाकर नई आफ़त मोल ली!

● ●

बनो निर्दय!



नरेन्द्र शर्मा

देश ने खंडन किया है, काल ने क्रमशः किया क्षय!
वेश, भूषा और भाषा ने बढाया भेद-संशय!
सर्वव्यापकता गई सविशेष की साकार हो कर,
तिमिर के ज्योति का जब हो गया दिशि-काल-परिणय

सर्वव्यापक थे, सभी चर-अचर के आधार थे तुम!
साध्य क्यों बन गए, हे आराध्य, जब कि असाध्य थे तुम?
मृत्तिका आराधनारत और तुम समवेदना-वश—
विग्रहों के हेतु विग्रह धारने को बाध्य हो तुम!

देश, फिर खंडन करेगा, काल-क्रम फिर करेगा क्षय!
वेश, भूषा और भाषा से बढेगा भेद-संशय!
मत करो अवतरण, रोको सहज संवेदन असीमित,
हुए यदि साकार, सीमा में बँधोगे, देव, निश्चय!

इसलिए तुम मृत्तिका के मनुज की संज्ञा बदल दो!
मृत्यु के उस पार पहुँचे, आज उसको नया बल दो!
क्षणिक जो मृण्मय मनुज में, बने वह फिर नित्य चिन्मय;
मरण के अमरण तपों का, हे दयामय, यही फल हो!
देश पुनः अखंड हो, फिर काल भी हो जाय अक्षय!
द्रवित मत हो दया से तुम, बन सको तो बनो निर्दय!

● ●



मामूली आदमी औरत का प्यार चाहता है। लेकिन औरत अपने बच्चे को सल्तनत का मालिक, बनाना चाहती है। १८५७! उड़ती-धूल! बरसती तोपें और चमकता...

लखनऊ का खज़ाना

— आनंद प्रकाश जैन

सन् १८५५ ई० के आखिरी दिनों का लखनऊ—

अंधेरी रात थी। कैसर बाग के हरम की पीली इमारतों की लंबी कतारें एक एस वीरान कब्रिस्तान की कब्रों की तरह दिखाई पड़ रही थी, जिन मे गड़ी हुई तितलियों के नरम दिल असफल अरमानों के पैने छुरों से छिदे पडे हों। चारों तरफ बाग था, शात और निस्पंद। नन्हीं-नन्हीं पत्तियां आपस में कुछ चर्चा करने के लिए जब-तब कुछ खड़-खड़ाने की चेष्टा करती और उन खोजाओं को देख कर भय से चुप ही जाती थी, जो कंधों पर नंगी तलवारें रखे, इमारतों में जहाँ-तहाँ बेतरतीब घूमते हुए दिखाई दे रहे थे। बाग की चारदीवारी के पार आकाश के वे झाँकते हुए तारे मात्र उस दृश्य के प्रत्यक्ष दर्शक थे, जो चारदीवारी के भीतर एक दूर अंधेरे कोने में उपस्थित था।

एक मूर्ति काले लबादे से अपने सारे बदन को छिपाए, अंधेरे में भूत की तरह सीधी खड़ी थी। उस से कुछ हट कर, उसकी ओर मुँह किए एक पुरुष खड़ा था, जो किसी कारण हाँफ रहा था। इन दोनों से दूर, लेकिन इनकी ओर से मुँह फेरे एक हबशी खोजा, सफेद चमकदार तलवार कंधे पर रखे, पेड़ के तने की भाँति खड़ा था।

वह काली मूर्ति कुछ काँपी और धीमे, किन्तु तीव्र स्वर में बोली, "तुमने आज फिर मुझे यहाँ बुलाने की हरकत की! क्या तुम इतना नहीं जानते कि अगर बादशाह सलामत को मालूम हो गया, तो तुम्हारा और मेरा दोनों का सिर धड़ से अलग हो जाएगा!"

पुरुष ने कुछ निकट आ कर, स्वर को संयत करने की चेष्टा करते हुए कहा,

"तुम्हारे तो नाज़ ही निराले हैं! बारह बरस में तो सोने पर भी मैल आ जाता है, मगर तुम पर निखार आता जाता है। कसम खुदा की, अगर तुम्हारे सिर का फिकर न होता, तो सौ बार तुम पर यह जान कुरबान कर चुका होता। जालिम, मैं ने तीन साल तक फिर सबूर किया, मगर तू ने तो एक दिन भी न बुलवाया। तुझ से जुदा हुए बारह साल हो गए, पर एक दिन भी तुझे मेरी याद न आई। इस महल की रंगत ऐसी भाई कि सारा दिल और ईमान ही लुटा बैठी! खुदा तुझ से समझे!"

"क्यों, क्या बादशाह ने मेरे साथ ब्याह नहीं किया? अगर उन्हें यह मालूम हो गया कि मैं एक मामूली राजगीर से भेंट करने के लिए महल से बाहर निकली थी, तो क्या उनके नाम को बट्टा नहीं लगेगा?" काले काले लबादे में से तिरस्कारपूर्ण प्रश्न निकला।

"या खुदा, तू तो बेवफाओं की तरह बात करती है! इन पिछले तीन बरसों में तो तेरा लहजा ही बदल गया है। बादशाह ने तुझे जबरदस्ती पकड़वा मँगाया, तेरे साथ मुताह रीति से ब्याह किया, और तू सचमुच बेगम ही बन गई! अगर निकाह कर लिया होता, तो तू खासमहल हो जाती!"

नवाब वाजिद अली शाह की धर्मपत्नियों की संख्या सैकड़े से ऊपर थी, उपपत्नियों की एक पूरी पलटन अलग थी, उनके धर्म में केवल चार ही विवाह निकाह पद्धति से वैध थे। बादशाहों के लिए चूँ कि धर्म ने सदा ही विशेष रियायत बरती है, इसलिए चार से अधिक विवाह करने की आवश्यकता आ पडे, तो उनके लिए मुताह पद्धति

अनुक्रमणिका

का आविष्कार काम आता था। वह स्त्री, जो काले लबादे में अपने शरीर को छिपाए हुए थी, हज़रतमहल के नाम से विख्यात थी। उसके साथ बादशाह ने इस दूसरी रीति से ब्याह किया था और उसे हज़रतमहल का खिताब बख्शा था। विवाह के दो बरस बाद हज़रतमहल ने एक पुत्र को जन्म दिया था, जिसका नाम बिरजिसक़दर रखा गया। वह लड़का भी अब दस बरस का चुका था।

किंतु जिस रहस्य का हो उद्घाटन आज बाग के इस अंधेरे कोने में हो रहा था, उसे अब तक हज़रतमहल और उस पुरुष के अतिरिक्त केवल एक व्यक्ति जानता था। वह था वह खोजा, जो कुछ दूरी पर पीठ फेरे खड़ा था, और जिसके बदन एक भी पुट्ठा किसी बात से अब तक नहीं हिला था। जो पुरुष हज़रतमहल से बातें कर रहा था, वह पिछले बारह वर्षों में सात बार चहारदीवारी टप कर भीतर आ चुका था। आठवीं बार उसने यह साहस किया था, और शायद यही उसकी अंतिम बारी थी।

उसकी बात सुन कर हज़रतमहल का स्वर कुछ नरम हो गया। आँखें उस पुरुष की ओर कर के उसने कहा,

"भावनाओं में बसने से काम नहीं चलेगा। अब हम बड़े हो गए हैं। बिरजिसक़दर अब बच्चा नहीं रहा है। वक्त आएगा और वह बादशाह बनेगा। दुनियाँ उसके सामने ज़मीन चूमती आएगी। और उसी दुनिया को जब यह मालूम होगा कि उसकी माँ एक मामूली ईंट-पत्थर जोड़ने वाले की दिल की धड़कनें सुनती हैं, तो लोग अपने बादशाह पर शक करेंगे, उस पर हँसेंगे—नहीं, नहीं! तुम ऐसा न होने दो, तुम ऐसा नहीं होने दोगे—!"

वह पुरुष मानो कुछ सहम कर पीछे हटा,

"ओह! ओह! ईन पीली पीली ईंटों ने तो तुझ पर जादू कर दिया है! तू तो सपने देखने लगी है! बादशाह सब बेगमों को तलाक़ दे कर तेरे बेटे को युवराज बनाएगा! वाह, वाह। चाँद ज़मीन इतरा कर सूरज पर चढ़ दौड़ा! अरी पगली, लखनऊ के पानी में अब वह मिठास कहाँ, जो सपनों में याद आए। इस में गंदगी पैदा हो गई है और उस से बुलबुले उठने लगे हैं। हँस कभी ऐसे बुलबुलों को मोती नहीं समझते। महल से बाहर नज़र उठा कर देख। बादशाह जिस फल को अपने पिलपिले मुँह से मज़े मज़े में चुभला रहा है, फिरंगी उस पर दाँत गड़ाए बैठे हैं। जिस दिन वे अपने जबड़ों को कसेंगे, समूचा फल उनके मुँह में होगा और बादशाह मुँह ताकता रह जायगा। तेरा बेटा कभी बादशाह नहीं बनेगा!"

"चुप रहो," नशीले स्वर में हज़रतमहल दाँत किचकिचा कर बोली। "तुम्हें क्या मालूम बादशाहत किसे कहते हैं और वह कैसे प्राप्त की जाती है? खुदा की कुदरत को न झुठलाओ। वह जब चाहता है तिनके को पहाड़ पर चढ़ा देता है, और जब कुछ होता है, तो ऊँचा खजूर का वृक्ष रेत में लोटने लगता है। खुदा अगर मेहरबान न होता, तो वह क्यों मुझे बेगम बनाता, क्यों मुझे बेटा देता! दर्पण की तरह वह दिन मेरे सामने साफ़ तौर से दिखाई दे रहा है, जिस दिन मेरे बेटे के सिर पर ताज झूल रहा होगा और मुल्ला आमीन के काँपते हुए हाथ उसे मेरे बेटे के सिर पर कस रहे होंगे।"

उसने आकाश की ओर आँखें उठा कर अपने दोनों हाथ प्रसन्नता के मारे कलेजे से लगा कर मुट्ठियां मींचीं।

"चारों ओर सैनिकों की नंगी तलवारें बादशाह के सम्मान के लिए हवा में उठ रही होंगी। एक ऐसा शोर-शराबा बरपा होगा, जो आज तक कभी न देखा गया, न सुना गया!"

"ऐसा कभी नहीं होगा," पुरुष ने तनिक तीव्र स्वर में कहा। "फूल सिर पर चढ़ा, तो बाग के किस काम का रहा! तेरा बेटा बादशाह बनेगा, तो हम लोगों को क्या मिलेगा! मैं तो आज भी राज हूँ, कल भी राज रहूँगा। तू मेरी दुनियाँ उजाड़ कर अपनी दुनियाँ को जन्नत बनाना चाहती है। तू मुहब्बत की उन महान् घड़ियों को भूल गई है, जिन में अनेकों बार हमने जन्नत देखी है। तू मेरी है, उस आदमी की नहीं, जो अपनी दिलबस्तगी के लिए एक फूल तोड़ता है, और सुबह होते ही मसल देता है। अभी तू ने वह सुबह नहीं देखी है। तेरे दिमाग पर शराब की खुमारी है। अपनी आँखें खोल, और उस दुनियाँ में लौट चल, जिसे तू पीछे छोड़ आई है। मैं तुझे अब भी बाँहों में उठा कर अवध से बाहर ले जा सकता हूँ। मेरा हालत देख, मुझे देख—मैं ने बारह साल तक तेरी जुदाई सही है और किसी गैर औरत की तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखा।"

"नहीं, नहीं," सहम कर पीछे हटते हुए हज़रतमहल ने कहा। "तुम मुझे बहकाने आए हो, मेरी जन्नत उजाड़ने आए हो, मेरे बेटे पर मुसीबतों का पहाड़ ढहाने आए हो। तुम यहाँ से चले जाओ और किसी से..."

वह पुरुष और आगे बढा। हज़रतमहल की बात को बीच में ही काट कर उसने कहा,

"ओह! मेरी आँखें खुल रही हैं। मैं भूल गया था। तू लेकिन एक मामूली औरत है। लेकिन याद रख, आज जो कहानी ये पेड़ पौधे जानते हैं कल ही उसकी गंध बाहर की हवा में भी फैल सकती है, उस वक्त तेरी वह खुमारी कहाँ जाएगी, जिस में तू जागते हुए भी ख्वाब देखती है!"

हज़रतमहल ने काँप कर कहा, "तुम...तुम मुझे बदनाम करोगे!"

"बेवफ़ा!" उस पुरुष ने संकीर्ण स्वर में कहा, "दूसरे की बेवफ़ाई की बात सुन कर तुझे ताज्जुब क्यों होता है? क्या खुदा ने तेरा ही दिल पत्थर का बनाया था? और पत्थर उसके पास नहीं रहे थे?"

"बशीर!" हज़रतमहल चिल्लाई। किंतु खोजा इस से भी पहले स्थल पर आ उपस्थित हुआ था। पलक मारते उसकी तलवार उस पुरुष की गर्दन छूने लगी।

"हाँ, हाँ, मारना नहीं!" हज़रतमहल ने कहा, "इसके लिये दूसरा इन्तज़ाम करना होगा।"

इतना कह कर वह काली मूर्ति वहाँ से गायब हो गई। खोजा ने उस व्यक्ति की पीठ की ओर से एक धक्का दिया और वह मुँह के बल ज़मीन पर गिर पड़ा। दूसरे ही क्षण तलवार की भारी मूठ उसके सिर पर पड़ी और वह कराह कर सीधा हुआ। आकाश के हँसते हुए तारे शीघ्र ही उसकी दृष्टि से ओझल हो गए।

अनुक्रमणिका





अगले दिन सुबह के समय दिलकुशा के पास एक पेड़ के नीचे एक आदमी लोगों को पड़ा मिला। उसका सिर उसके हाथों में छिपा हुआ था और वह मुँह के बल धरती पर पसरा हुआ था। किसी दयावान ने उसे सीधा किया, तो चौंक कर वह दो कदम पीछे हट गया। उसके होंठों पर दोनों ओर खून के दो डोरे दिखाई पड रहे थे। दयालु व्यक्ति ने पूछा, "दोस्त, तुम्हें खून की कै हो रही है! कहाँ है तुम्हारा घर! कौन हो तुम!"

आहत राजगीर ने बोलने की चेष्टा की, जिस से उसका मुँह खुल गया, किंतु बोल नहीं निकल सका। राहगीर ने उसके मुँह में झाँका और एक चीख उसके होंठों से निकल पड़ी। आहत व्यक्ति के मुँह में जबान के स्थान पर खून के लोथड़े दिखाई पड रहे थे। वह गूँगा था। उसकी जीभ कटी हुई थी।

● ●

फरवरी ४ सन १८५६ ईसवी को जनरल औट्रम की तोपों के साये में अंगरेजों ने अवध के मीठे फल पर अपने जबड़े कस लिए और एक ही कौर में, बिना किसी विरोध के, अवध उनके गले के नीचे उतर गया।

एक भगदड़ सी मचती सुनाई दी। वाज़िदअलीशाह के होश फाख्ता हो गए। बदरुन्निसा ने तसल्ली दी, मगर तसल्ली का क्या काम था। औलिया बेगम लौटी और उसने अपनी अंतरंग की दासियों को इकट्ठा किया। सामान संगवाया जाने लगा।

दीवान खास में अवध के बड़े-बड़े सरदार इकट्ठे हुए उन्होंने वाजिदअलीशाह को ढूंढ़ कर, औलिया बेगम को बुलाया और अपने शस्त्र प्रस्तुत किए – बादशाहत छीनने वालों को मिटाने या मिट जाने के लिए, पर औलिया बेगम ने कहा, "नहीं, नहीं, कोई फायदा नहीं। यही एक दिन होना था, होनी से लड़ना बेकार है। मैं फिरंगियों की मलका के पास जाऊँगी। वह भी एक बेटे की माँ है। मैं उस से कहूँगी कि मेरे बेटे का ताज़ न छीने। क्या उसके पास बादशाहतों और ताजों की कमी है? क्या सारी दुनियाँ उसी के बाँटे में आई है?—"

वाज़िदअली शाह के लिए बारह लाख रुपये सालाना की पेंशन नियत हुई। लखनऊ शाही खानदान से खाली होने लगा। औलिया बेगम ने एक सदी से सुरक्षित हीरे, जवाहरात, पन्ने, पुखराज, नीलम और फ़ीरोज़े, माणिक, मोती सब एक स्थान पर इकट्ठे किए और वह सारा जड़ाऊ फर्नीचर, जिस से कभी शाही खानदान की शान आँकी जाती थी एक कमरे में भर दिया गया। फिर वह बदरुन्निसा से अकेले में बोली, "अब ये सब चीजें एक मज़ाक सी मालूम होती हैं। इन्हें कोई हमारे पास नहीं रखने देगा। रात रात में एक पोशीदा तहखाना इनके लिए तैयार होना चाहिए।"

शाम होते-होते सारा इन्तजाम किया गया। महल के भीतर नहाने का एक बड़ा हौज था। उसका पानी निकाल डाला गया और उसके किनारे से मिलती हुई, ऊँची-ऊँची कनातें लगा दी गई, जिस से उस स्थान के चारों ओर की स्थिति का पता न लग सके। सैंकड़ों की संख्या में राज़गीरों की आँखों पर पट्टियाँ बाँध कर लाया गया और कनातों के भीतर उनके औजारों के साथ छोड़ दिया गया, तहखाने बनने का रिवाज़ आम था। किसी को कानों कान भी यह खबर नहीं हुई कि तहखाना किस लिए बनाया जा रहा है। सुबह तक वह बन कर तैयार हो गया, सब राजगीरों को विदा करके, केवल एक को रोक रखा गया।

लौंडियों ने मिल कर उस तहखाने के भीतर वे रत्नाभूषण और जड़ाऊ वस्तुएँ उतार दीं। तहखाना ठसाठस भर गया। ऊपर से हौज में पानी भर दिया गया और सब पहले जैसा हो गया। रातों रात का दरवाजा लगा कर जोड़ पर पुट्टिन भर दी गई और पत्थर लगा कर चिनाई कर दी गई। जब सारा काम निबट गया, तो औलिया बेगम ने बदरुन्निसा से कहा, "लगता है कि कोई भूल हो गई यह राजगीर कौन है?"

"फ़िक्र न कीजिए," बदरुन्निसा ने कहा, "इसे यह कैसे मालूम हो सकता है कि तहखाने के भीतर क्या रखा गया है? इसके अलावा यह अनपढ़ और गूँगा है। किस तरह यह किसी को बता सकता है कि तहखाने का दरवाजा इतनी मजबूती से बन्द किया गया है कि उसके भीतर किसी मूल्यवान वस्तु के होने का अनुमान है? आप निश्चिन्त रहिए। जिन लौंड़ियों ने इसके भीतर सामान रखा है, सब आपके साथ-साथ जाएँगी। खजाना बिल्कुल सुरक्षित है।"

किंतु राजगीर की आँखें, दरवाज़ा लगाते समय तहखाने के घुप अंधकार में जो जुगनू से चमकते देखे थे, उनका अर्थ लगाने के लिए उसका दिमाग तेजी से काम कर रहा था। बदरुन्निसा ने उसे

अनुक्रमणिका

पुरस्कार में सोने के कुछ सिक्के दिए। वह उन सिक्कों को उंगलियों के मसलता हुआ महल के बाहर हो गया। किंतु लाख मगज़ मारने पर भी उन जुगनुओं का अर्थ उसकी समझ में नहीं आया।

दो तीन दिन बाद ही शाही खानदान अँगरेज़ी फौजों की सुरक्षा में कलकत्ता के लिए रवाना हो गया। लखनऊ पर अंगरेज़ी सेना का अधिकार निर्बाध रूप से स्थापित हो गया। लेकिन अंगरेज़ किसी-न-किसी को तो बादशाह बनाएँगे ही, और वह होगा भी शाही खानदान में से ही, जैसा कि हमेशा होता आया है, इस आशा में बिरज़िसक़दर को छाती से लगाए हज़रतमहल न जाने हरम के किस [illegible] में छिपी बैठी रही। लौंडियाँ और दासदासियाँ अ[illegible] अवस्था में बरखास्त कर दिए गए बहुत सी बेगमें उ[illegible] साथ कलकत्ता चली गईं, बहुत सी पेंशन ले कर वहीं र[illegible] उसकी तबीयत मुर्शिदाबाद में जाने की तैयारी करने लगीं। मगर हज़रतमह[illegible] सिगरेट पीते [illegible] का छूटना मछली के लिए जल को छोड़ने के समान था।

लार्ड डलहौज़ी ने लखनऊ में प्रवेश किया और शीघ्र ही लखनऊ में महारानी विक्टोरिया के नाम बादशाहत की घोषणा कर दी गई। हज़रतमहल को मालूम हुआ और उसने सिर पीट लिया। एक एकांत कक्ष में वह कितनी ही देर तक बेटे को छाती से चिपका कर रोती रही। बिरज़िसक़दर ने कहा, "अम्मीजान, आज तक भी कोई ताज़-पोशी के लिए बुलाने नहीं आया!"

"कोई नहीं आएगा, बेटा, कोई नहीं आएगा!" हज़रतमहल भीतर-ही-भीतर अपने रुदन को घोंटती हुई बोली, "अब खुदा हमारा नहीं रहा, फिरंगियों का हो गया है।"

लेकिन खुदा के कान बहुत बड़े हैं! वह दबी हुई चिनगारी, जो मेरठ से सुलगी दिल्ली और बरेली होती हुई लखनऊ तक अपनी लपट छोड़ने लगी। कानपुर में नाना साहब, बुंदेलखंड में झाँसी की रानी और इनकी कड़ी को मिलाता हुआ मराठा नेता तात्या टोपे बीस हज़ार जवानों के साथ उठा। लखनऊ की रेसिडेंसी घेर ली गई और असंतुष्ट सैनिकों ने उन महलों को घेर लिया, जिन में कभी छून-छननन् तथा वाद्यों की झंकारें उठती रहती थीं। स्त्रीपुरुष किसी का विचार नहीं किया गया। जिसके पास जो मिला वह उन लोगों के कमरबंदों में पहुँच गया, जिन्होंने सेनाओं के साथ मिल कर अपने लुटेपिटे जीवन के अरमानों को निकालने का अच्छा अवसर पा लिया था।

आतंक और भय से विजड़ित हज़रतमहल अपनी पीठ पीछे बिरज़िसक़दर को छिपाए अपने कक्ष में दीवार से लगी खड़ी थी। भीतर से दरवाज़े की कुंडी लगी थी और बाहर से भारी शोर-शराबा और चीख चिल्लाहट सुनाई पड रही थी। रेसिडेंसी की ओर से तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई देती थी और खिड़की में से झाँकने पर आकाश में धुएँ के बादल भी नजर आ जाते। उसी समय दरवाजे पर थपथपाहट हुई।

"दरवाज़ा खोलो!"

"नहीं, नहीं!" हज़रतमहल चिल्लाई "तुम लोग भाग जाओ। मैं अवध के बादशाह की बेगम हूँ। तुम लोग मुझे हाथ लगाओगे, तो...."

लेकिन बाहर इतना सुनने की फ़ुरसत किसे थी! दरवाज़े पर लातों और घूँसों के प्रहार होने आरंभ हो गए। हज़रतमहल ने दीवार में समा जाने की चेष्टा की, उसके देखते-देखते दरवाज़ा चरमराया और भीतर की ओर खुल गया। उसकी कितनी ही खपच्चियाँ अलग हो गईं।

हज़रतमहल ने अपने बेटे को और भी छिपाने की चेष्टा करते हुए कहा।

"तुम लोग आदमी नहीं जानवर हो। क्या तुम लोगों में शराफ़त बिलकुल भी नहीं है!"

अब तक भीतर अनेक उजड्ड देहाती हाथों में नंगी तलवारें लिए घुस आए थे और उन तलवारों के फलकों पर ताज़े खून की लाली भी दिखाई पड रही थी। उन में से एक ने चिल्ला कर कहा, "क्या बकती है! शराफ़त किस चिड़िया का नाम है!"

दूसरे ने कहा, "अरे, यह अवाए पेट की हरकत को तो कहीं शराफ़त नहीं कहती!"

अपनी तलवार से हज़रतमहल की छाती और संकेत करते हुए तीसरा आदमी बोला, "ये लोग खाते कम हैं बिखराते ज़्यादह हैं। फिर भी जो बच के रहता है उसे पीली धातु में बदल कर गले से पेटतक लटका लेते हैं—पकड़ लो!"

साथ ही 'छीन लो', 'मार डालो' आदि अनेक आवाजें आईं और भीड़ पर पीछे की ओर से एक धक्का लगा।

हज़रतमहल घुटनों के बल बैठ कर बोली, "हम पर रहम करो। मैं लखनऊ के बादशाह की बेगम हूँ। मैं ने आज तक कभी किसी को तकलीफ़ नहीं पहुँचाई। हमारी बादशाहत लुट गई, तकदीर लुट गई। अब हमारे पास लुटने के लिए और कुछ नहीं रहा।"

एक आदमी ने आगे बढ़ कर उसके गले से लटकता हुआ हीरे का तोड़ा झटक लिया। उसकी पीठ जो दुहरी हुई, तो पीछे से बिरज़िसक़दर का शरीर स्पष्ट हो गया। उसकी आँखें ऊपर को चढ़ी हुई थीं और हथेलियाँ दीवार से चिपकी थीं। पतला और साँवला सा मुँह था, जिसके होंठ अघट घटना को आश्चर्य के साथ अनुभव करके फैल गए थे।

लोगों ने कमरे को लूटना आरंभ कर दिया था। एक ने, जो उन में कुछ बली मालूम होता था, कहा, "यह कौन है!"

"नहीं, नहीं, इसे न छूना! इसके पास कुछ नहीं है। यह मेरा बेटा है। अवध का शाहज़ादा है। अंगरेज़ न आते, तो यही बादशाह बनता। रहम करो, मेरे हाल पर तरस खाओ।"

"अच्छा, बादशाह बनता! अरे रे, दिल्ली में भी तो उन लोगों ने हज़रतबहादुरशाह को बादशाह बना डाला है। चलो, लखनऊ का बादशाह मिल गया। भाइयो, सब लोग सीधे हो जाओ और बादशाह सलामत को मिजरा करो।"

कमख़ाब के परदों को झटकते और सन्दूकों पर ईंटें तथा तलवारों के कब्जे पटकते हुए लोग कुछ देर के लिए सीधे हुए और घूर-घूर कर लड़के की तरफ देखने लगे। किसी ने ठहाका लगा कर कहा, "आदाब बजा लाता हूँ, हुज़ूर।" फिर लोगों को संबोधन करके बोला, "अरे यारो, अँगरेज़ लोग अगर लड़ते लड़ते यहाँ तक आ गए, तो यह बेचारा क्या





अनुक्रमणिका

करेगा ? गोडे फिरंगी अगर पिल पडा, तो एक ही वार में उसका सिर भुट्टे की तरह उडा देगा। गरदन तो देखो कितनी पतली है।"

हज़रत महल ने बेटे को दोनों हाथों में भर लिया और विकल हो कर बोली, "नहीं, मैं अपने बेटे को बादशाह बनाना नहीं चाहती। अब बादशाहत ही कहाँ है, जो यह बादशाह बनेगा ? हम लोगों को हमारे हाल पर छोड दो।"

इस पर भारी-भरकम आदमी उसकी ओर बढते हुए बोला, "बेगम साहबा, बादशाहत तो लोगों के मानने की होती है, कोई गाय-भैंस नहीं होती कि एक से रस्सा छूटा और दूसरे ने पकड लिया। अगर हम लोग अपने बादशाह को उसके हाल पर छोड़ देंगे, तो हम किसके हाल पर रहेंगे ? पतली गरदन हो या मोटी, पर इसे बादशाह बनाना ही पड़ेगा।"

बेगम की आँखों से टपटप आँसू चूने लगे। वह और भी जोर से सहमे हुए बच्चे को अपने बदन से चिपटाती हुए बोली, "खुदा के लिये माफ़ करो, तुम्हारे सम्मानित बादशाह हुज़ूर वाज़िदअलीशाह की बेगम तुमसे आंचल पसार कर भीख मांगती है : मेरे बेटे को बादशाह न बनाओ। इसे फिरंगियों के फटे हुए जबडों में निवाला बना कर न फेंको।"

"पकड़ कर ले भी चलो, यारों। किसी ने पीछे से चिल्ला कर कहा, "क्या खड़े खड़े औरतजात की बकझक सुन रहे हो। छीन लो, दरबार में ले चलो, और बना दो बादशाह। अवध का बादशाह बिरजिसकदर ज़िंदाबाद!"

हजरतमहल गिड़गिडाई, रोई, मिन्नतें कीं, मगर सब बेकार। वह भीमकाय व्यक्ति आगे बढ़ा और उसने बिरज़िसकदर के गले में पड़ी मोतियों की माला झटक ली। फिर उसकी माँ को उससे नोचे कर अलग फेंका और रोते हुए बिरजिसकदर को कँधे पर उठा लिया। पीछे मुड़ कर उठती हुई हजरतमहल से वह बोला, "अगर फिरंगी यहाँ घुस भी आए, तो पहले हम मरेंगे, फिर तेरा बेटा शहीदों का बादशाह होगा। हा, हा, हा, जिस महल में अब तक कलवार ही कलवार नजर आते थे, वहाँ तलवार देख कर हमारे रक्षक लोग सहमे जा रहे हैं!"

रोती पीटती, आहें भरती हजरतमहल विद्रोहियों के साथ-साथ दरबार की ओर चली। चारों ओर बिरजिसकदर का नाम ले-ले कर कोई कोई इक्का-दुक्का जिंदाबाद के नारे लगा देता था और फिर 'मारो, काटो, पकडो, छीनो, उडा दो' की आवाज़ें तथा चिल्ल-चिल्लाहट सुनाई पड़ने लगती थी। इन सब के ऊपर जब रेसिडेन्सी की ओर से तोपों की गड़गड़ाहट का शोर आता, तो हजरतमहल का कलेजा धक् से हो जाता — उसका बेटा मारती-काटती भीड़ के भारी समुद्र में उस भीमकाय व्यक्ति के कंधे पर बैठा ऐसा लग रहा था, मानो डूबते हुए उस ने किसी बहते पेड के ऊँचे ठूंठ को पकड़ रखा हो।

हजरतमहल को पहले जो चीज़ दर्पण में दिखाई देती थी वह अब सामने दिखाई देने लगी। सैनिकों की नंगी तलवारें बादशाह के सम्मान में उठ रहीं थीं। एक ऐसा शोर-शराबा हो रहा था, जो कभी न देखा गया, सुना गया! दरबार में हज़रतमहल के, बेटे के सिर पर ताज़ रख रहा था, और लोग मुल्ला आमीन को भी पकड़ लाए थे। मुल्ला जी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि यह कैसी ताजपोशी थी। वह सिर से ले कर पैर तक थरथर काँप रहे थे। पीछे से किसी ने तलवार चुभाई और मुल्ला जी के कांपते हुए हाथों ने बिरजिसकदर के सिर पर ताज रख दिया।

यह अद्भुत ताजपोशी समाप्त होते ही दरबार इस तरह खाली हो गया, जैसे लोगों ने अपने कर्तव्य से छुट्टी पा ली हो। दरबार से निकलती हुई भीड में रुलती-पिलती हजरतमहल तभी दरबार के भीतर प्रवेश कर पाई जब वह बिलकुल खाली हो गया। दूर, सामने की ओर सिंहासन पर बैठा बिरजिसकदर रो रहा था। उसने वहीं से पुकारा, "मा।"

हजरतमहल करुणा के आवेश में जोर से रो पडी। उसके मुँह से निकला "मेरे बेटे!" और जब वह उसके पास पहुँची, तुरंत उस ताज़ को, जिसे वास्तविक ताज़ के अभाव में लोगों ने मुखराज, [illegible] के भीड़ की तरह बनवा डाला था, उतार [illegible] टुकड़े किया।

सर हेनरी लारेंस ने रेज़ीडेंसी की [illegible] खानदानी फ़ौजी लगा दी। जनरल औटरम के साथ हवलॉक सैनिक सहायता ले कर आया मगर विद्रोहियों ने उसे भी यमपुर भेजा। उनके बाद सर कालिन कैम्पबेल एक विशाल अंगरेजी सेना के साथ आए और उन्होंने ध्वस्त रेजीडेंसी और लखनऊ के एक भारी मारकाट के बाद अपने अधिकार में कर लिया।

हर आदमी भाग रहा था, हर आदमी छिपने की कोशिश कर रहा था। कोई दोषी था या निर्दोष इसका कोई प्रश्न नहीं था। अंगरेजी सेना प्रत्येक उस आदमी को, जो चेहरेमहरे से सैनिक मालूम होता था, मौत के घाट उतार रही थी। महलों के भीतर भी भगदड़ मची हुई थी। जिसके जहां सींग समाते थे भागता नजर आता था।

हज़रतमहल बिरज़िसकदर को लिए एक कमरे से दूसरे कमरे में भागी फिर रही थी। जब उसे मुल्ला आमीन का शांत मुख दिखाई पड़ा, तो वह खुशी के मारे चिल्ला कर उनकी ओर दौडी। "हमें किसी तरह लखनऊ से बाहर निकालिए। आपके हाथों ने जिस नाबालिग के सिर पर ताज रखा था, आज फिरंगियों की संगीनें उसकी छाती की तरफ तनी हुई हैं।"

मुल्ला आमीन ने शांति से दो बार पलकें झपकाई और बोले, "खुदा का नाम लो, बेगम, आज का आदमी आदमी कम है जानवर ज्यादह है। पहुँचने को तो तुम मक्का पहुँच सकती हो, मगर उसके लिए मामूली वक्तों में जितने धन की आवश्यकता होती है, आज उस से हजार गुना धन चाहिए। तुम्हारे पास हो, तो निकालो। मैं इंतजाम करता हूं।"

"कहां से निकालूँ ? कहाँ से लाऊँ ?" निराशा से गरदन लटका कर हज़रतमहल ने कहा। "मुझे मालूम था कि यह दिन देखना पड़ेगा। मेरा तो अपना स्वर्ग था, अपनी जन्नत थी...।" और उसकी आखों के आगे वे दिन फिर गए, जब वह किसी के मजबूत हाथों में बल का गौरव निरखती थी।

मुल्लाजी का दूर होता स्वर सुनाई पडा, "तो फिर तसबीह ले कर बैठ जाओ। खुदा उन लोगों से बड़ा खुश होता है, जो उसका नाम लेते हुए फ़ना होते हैं।"

यह मुल्ला जी का व्यंग था या सलाह थी, हजरतमहल कुछ नहीं समझी। खुदा पर उसका विश्वास नहीं रह गया था। उसने बिरजिस-क़दर का हाथ पकड़ा और आगे बढ़ी। उसी समय महल के एक सिरे से हल्ला उठा, "फिरंगी आ रहे हैं, भागो! फिरंगी शहर के बीच में आ गए हैं...!"

हजरतमहल का रंग पीला पड गया। मालूम होता था कि शहर-का-शहर महल के भीतर घुस आया है। ऊपर से रात्रि का अंधकार उन लोगों को सान्त्वना देने के लिये आ रहा था। दिन मौत का साक्षात् संदेश था। भीड में बडी-बडी विचित्र बातें सुनने को मिलती थीं : "फिरंगी औरतमर्द, बूढाबच्चा कुछ नहीं देख रहे हैं...अरे, भागते ही जाओगे! दरवाज़े बंद कर लो.. क्या फिरंगियों पर दरवाजे खोलने नहीं आते? या खुदा!"

मगर [illegible] कानों में तेल डाल रखा था। गूँजती हुई डरावनी आवाजें उसकी तबीयत मुकद्दे पड़ जाती थीं। इस भागादौड़ी की सीमाएँ [illegible] सिगरेट पीते हुए सिरे से दूसरे सिरे तक, एक ओर की खिडकी से [illegible] का दृश्य देख कर लोग झट मुँह अंदर को कर लेते थे, तो दूसरे सिरे पर भी यही हाल होता था। अगर इस निरुद्देश्य भागादौडी के मेले में हज़रतमहल किसी भाँति बिरजिसकदर का हाथ पकड़े हुए खिंची चली जा रही थी।

सहसा महल के बाएँ सिरे पर आग की एक लपट ऊँची उठी और गोलियों की आवाज़ें सुनाई पडी। हजरतमहल ने कलेजा थाम लिया। भय से विस्फारित नेत्रों से उसने उस आग को देखा। लोग चिल्लाए : "फिरंगी महल में घुस गए है, फिरंगी।"

इसी समय सशस्त्र देशी सैनिकों का एक रेला एक ओर से महल में घुसा और उन लोगों ने खिडकियो पर अधिकार कर के ताक–ताक कर गोलियाँ चलाना आरंभ कर दिया। पांच मिनिट तक मोर्चा जमा रहा, और फिर रेला वह निकला। हज़रतमहल एक अंधेरे कोने की ओर भागी। उसी समय उसे अनुभव हुआ कि किसी ने उसकी कलाई मजबूती से पकड ली है। उसने चिल्ला कर पूछा "कौन है?"

किसी ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया। किसी की मजबूत कलाई में बंधी वह अपने बेटे के साथ साथ खिंची चली गई। बिरजिसकदर केवल रोए जा रहा था। उसके कपड़े जगह जगह से फट गए थे। हज़रतमहल की हालत भी कुछ ज्यादह अच्छी नहीं थी। अंत में उसने अपने आप को हानी के अधीन सौंप दिया।

रेले से दूर हटा कर एक व्यक्ति की छाया उसे महल के एक बचे हुए कोने की ओर ले गई। यह औलिया बेगम का स्नानागार था। सामने एक हौज़ दिखाई दे रहा था, जिसका पानी बहुत दिनों से प्रयोग में न आने के कारण सूख रहा था। उस कमरे में आकर पहले पहल हज़रतमहल ने उस आदमी का मुंह देखा और भय के मारे चिल्ला पडी: "तुम......तुम......" गूँगे राजगीर ने होठों पर उंगली रख कर उसे चिल्लाने से वर्जित किया। उसने फिर उसका हाथ पकडा और हौज़ के किनारे पर ले गया। वहाँ खड़े हो कर उसने ध्यान से हौज़ के एक कोने की ओर देखा। हज़रतमहल ने लक्ष किया कि उसके हाथ में एक कुल्हाडी थी। उसके देखते ही देखते वह हौज़ में कूद पडा। फिर कुल्हाडियों की आवाज़ सुनाई देने लगी।

कुछ देर बाद गूँगे ने कुल्हाडी चलानी बंद कर दी और जल्दी से किनारे पर आकर उसने बिरजिसकदर को गोदी में उठा लिया। हज़रत-महल उसका आशय समझ कर हौज़ में कूद पडी। हौज़ के कोने में एक छोटा सा दरवाज़ा निकल आया था, जिस में हौज़ का बचाखुचा पानी बह कर भीतर जा रहा था। कुछ देर गंदी हवा के निकल जाने की प्रतीक्षा करके राज ने लड़के को उसके भीतर उतार दिया। इसके बाद हज़रतमहल भीतर घुसी और फिर वह स्वयं भीतर पहुँच गया। कुल्हाडी को भीतर करके उसने दरवाजे पर इमारत की एक ओर से टूटी हुई प्लेट बैठा कर दरवाजा बंद कर दिया। टूटी हुई चादर के स्थान पर जो खुला हुआ छोटा सा स्थान रह गया, उसकी राह भीतर तहखाने में रोशनी पडती रही।

हजरतमहल ने आँखें फाड कर देखा। चारों ओर महल का कीमती सामान था, जिन में जवाहरात जडे हुए थे। अधिकांश सामान मोमजमे से ढका हुआ था, किंतु दो तीन छपरखट नहीं ढके जा सके थे। उन में जड़े हुए जवाहर दरवाजे की रोशनी का सहारा पा कर जुगनू की तरह चमक रहे थे। उसने बडी मुश्किल से अपने मुँह से निकलती हुई आश्चर्य की उस चीख़ को रोका, जो अकस्मात इतना बड़ा खजाना सामने देख कर उसके होठों पर आना ही चाहती थी। यह बात नहीं कि उसने कभी वह वैभव न देखा हो, किंतु कहां वे दिन और कहाँ वह कारून का कोष!

गूंगे ने एक मोमजामा फाड़ डाला। यह वाजिदअलीशाह के सिंहा-सन की कुरसी थी, जिस में जडे हुए लाल और पन्ने लाल हरी आभा से दमक उठे। कितने ही मोमजामे के थैले रखे थे। उसने उन्हें भी खोला। हीरे, पन्ने, पुखराज और जमुर्द उस में से निकल कर फर्श पर बिखरने लगे। एक थैले में से बादशाह का पुराना ताज निकला। गूँगा उस ताज को बहुत देर तक अपलक दृष्टि से देखता रहा।

सहसा उसकी आँखें चमकीं और उसने विस्मयविमुग्ध हज़रतमहल की आँखों से आँखें मिलाईं। हज़रतमहल की आँखों की पलकें काँप कर फूल गईं। गूँगे ने माँ से चिपटे हुए बेटे को अपनी गोद में उठाया, उसे प्यार किया और फिर आगे बढ कर उसे सिंहासन पर बैठा दिया, जिस पर कभी लखनऊ का वास्तविक शासक बैठा करता था। फिर उसने ताज़ लिया और उसे लडके के सिर पर रख दिया। यह सब करके वह पीछे हटा और हजरतमहल की ओर देखकर मुसकराया। उसकी आँखें एक विचित्र तेज से उस अंधःकारपूर्ण वातावरण में भी चमक रही थीं।

हज़रतमहल ने यह सब कांड फटी आँखों से देखा, और जब अधिक न देख सकी, तो अपने चेहरे को अपने हाथों की दोनों हथेलियों में छिपा लिया। उसका सिर गूंगे की छाती से जा लगा और वह फूट–फूट कर रो पड़ी। जितनी देर वह रोती रही गूँगा निश्चल खडा उसके मन के वास्तविक परिताप को आंसुओं की राह बाहर निकलने में सहायता देता रहा। समय बहुत था, कोई जल्दी नहीं थी।

चौबीस घंटे तक वे तीनों भूखे-प्यासे खजाने के तहखाने में छिपे पडे रहे। इस बीच ऊपर की ओर से गोलियों की मद्धिम आवाजें मात्र सुनाई पडती रहीं। फिर वे आवाजें भी बंद हो गईं। उन तीनों ने इस

अनुक्रमणिका





बीच तहखाने के सारे जवाहरात एक स्थान पर इकट्ठे किए। जिन्हें दूसरी वस्तुओं से अलग किया जा सकता था उन्हें उन वस्तुओं की तोड़फोड़ कर भी निकाला और जब एक अच्छा संग्रह एक स्थान पर इकट्ठा हो गया, तो उसकी एक गठरी बनाई। फिर उस गठरी को मोमजामे के एक बड़े थैले में बंद किया और अवसर की राह देखने लगे।

चौबीस घंटे बाद थोड़े से छोटे-छोटे जवाहरात ले कर गूँगा हजरतमहल के कंधे को थपथपा कर आश्वासन देता हुआ उस छोटे से दरवाजे से बाहर निकला, जो उस तहखाने को बाहर की दुनिया से मिलता था। आशंकित हृदय लिए, हजरतमहल ने सहते हुए बिरजिसकदर को गोदी में लिए-लिए छः घंटे बिता दिए। शीत और बदबू से उसका दिमाग फटा जा रहा था और ऊपर से रात का अंधकार घिर आया था। रह-रह से खटके से वह चौंक पड़ती थी।

आखिर दरवाजे पर आहट हुई इस्पात की चादर हटी और गूंगे राजगीर की आकृति दिखाई दी। आशंकाओं को निर्मूल देख कर हज़रतमहल उस से चिपट गई। सुबह का झुरपुटा होते-होते उसने वह सब सामान देखा, जो गूंगा अपने साथ ले कर आया था। उस में थोड़ा सा खाने का सामान था। कुछ फटे हुए चिथड़े थे और राख थी। उन लोगों ने खाना खाया, पानी पिया, और उसके बाद उन चीथड़ों को पहना, जिन में से हजरतमहल का बदन जहां तहां से पेबंदों से ढक गया। बदन पर राख मल-मल कर पानी की सहायता से बदन को काला किया। फिर गूंगे राजगीर ने थैले को उठा कर उन्हें चलने का इशारा किया।

बाहर हौज़ में तीन टोकरे रखे दिखाई दे रहे थे। एक खाली था, एक में राख थी और एक में ..हजरतमहल ने उसे देख कर अपनी नाक बंद कर ली। गूंगा उसकी ओर देख कर फिर मुस्कराया, उसने खाली टोकरे में थैले को रखा, ऊपर से राख भरी और उसके ऊपर वह तीसरा टोकरा उलट दिया। अब हजरतमहल ने तीनों की पोशाकों पर ध्यान दिया। ये लोग इस समय महल के भंगी थे और गूंगे के सिर पर टोकरा था। राख और कूड़े का टोकरा हज़रतमहल ने अपने सिर पर रखा, और खाली टोकरा बिरजिसकदर ने उठाया।

जगह-जगह संतरियों ने इन्हें टोका, मगर दूर-दूर से ही निरीक्षण करके छुट्टी दी। लखनऊ में फैले हुए फिरंगी सैनिकों को हर व्यक्ति के प्रति दिलचस्पी थी, मगर भंगियों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी।

लखनऊ पीछे छूट गया और गोमती के किनारे इन भंगियों ने उन टोकरों से विदा ली। एक गठरी बनाई और नहा धो कर वे ही कपड़े पहने। गठरी संभाले गूँगा राजगीर, हज़रतमहल और अवध के बादशाह ने उत्तरपूर्व की ओर बढ़ा दिये।

मगर शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि इन वस्त्रों में रहते हुए उन्हें कभी सवारी नहीं मिल सकती अतः एक गाँव में जब उन्होंने नये कपड़े खरीदे और व्यापारी को रुपयों के बदले में एक चमकता हुआ पत्थर दिया, तो उसने कुछ देर पलकें झपका कर उनकी ओर देखा, फिर हीरा रख लिया।

मगर गूंगा जितना देखता था उतना ही सोचता था। व्यापारी की निगाह उस से छिपी नहीं रही। गूंगे ने अपने कमरबंद से एक दूसरा हीरा निकाल कर उसके सामने फेंका और व्यापारी की निगाह चौड़ी हो गई। और जब तीसरा उसके सामने पड़ा, तो वह अपने थल्ले से उठा और उसने जमीन पर लंबे लेट कर गूंगे के पैर पकड़ लिये। "हुजूर, परवरदिगार, आप बड़े हैं। मेरे दिल की इस हरकत को माफ कीजिये, जिसे आप जैसे अकलमंद आदमी ने पहचान लिया है। मैं हुजूर की हर खिदमत बजा लाऊँगा।"

गूंगे ने उसी समय अपनी छड़ी से जमीन पर दो घोड़ों की आकृति बनाई। व्यापारी ने समझ लिया किया कि जिस महान् हस्ती से उसका संबंध बना है वह बोल नहीं सकता। उसने फिर खड़े हो कर आदाब झुकाया और घंटे भर के भीतर-भीतर दो कुम्मैत अरबी घोड़े उन लोगों के लिये ला हाजिर किये।

उनके जाने के बहुत देर बाद व्यापारी अपने उस असीम भाग्य की कहानी को केवल अपने तक ही सीमित नहीं रख सका। उस अव्यवस्थित युग में जब हरेक आदमी मिटने और [illegible] को राह को भूल चुका था, यह बात उन लोगों पर [illegible] पहुंचते देर नहीं लगी, जो खेतीबाड़ी छोड़ कर अस्त्रशाही खानदानों का व्यापार करने लगे थे; और जब व्यापारी के गले पर नेजा रखा गया, तो उसने उस कथा को हू-ब-हू ज्यों-की-त्यों सुना दिया।

गूंगा राजगीर व्यापारी की ओर से लगभग निश्चिंत हो चुका था। अतः नेपाल की राह पर उनके घोड़े आराम से चल रहे थे। मगर जब उन्होंने पीछे से घोड़ों की टपाटप सुनी, तो कान खड़े हुए। एक क्षण ठहर कर उसने हजरतमहल की ओर देखा। बेगम के चेहरे पर फिर हवाइयाँ उड़ने लगी। वह घबरा कर बोली, "इस खजाने का बोझ हमारे संभाले नहीं संभलेगा। अब इसका मोह त्यागना ही पड़ेगा। मेरे बेटे की जान बचाओ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मैं इन हीरों की चमक बहुत देख चुकी हूँ।"

गूंगे राजगीर ने थैला खोला और उस में से चुन-चुन कर कुछ जवाहरात निकाले और अपने कमरबंद में खोंस लिए। इसके बाद जब पीछे से घोड़ों की आवाज और निकट आ गई, तो उन्होंने अपने घोड़ों को एड़ दी। किंतु दौड़ते-न-दौड़ते उन्होंने देखा कि वे तीन तरफ से घिर गए है। केवल आगे का रास्ता साफ था। दौड़ लंबी चलती रही, घेरा कसता रहा और जब तीनों ओर के अश्वारोहियों का संगम अत्यंत निकट हो गया तो गूँगे ने थैले का मुँह खोला, उसे ऊपर की ओर उठाया और नीचे का सिरा पकड़ कर चारों ओर घुमा दिया।

सूरज की तेज़ रोशनी में लाल, हरी, नीली और सफेद किरणें चारों ओर दर्पण की चमक की भांति फूट निकली और जहाँ-तहाँ बिखर गई। लखनऊ का खजाना कच्ची राह पर धूल में लोट रहा था और उन लोगों की आँखों को चकाचौंध कर रहा था, जिनके पसीने की राह निकल-निकल कर, वह गाढ़ा होता-होता पत्थरों की शकल में बदल गया था। वे लोग अपने अपने वाहन छोड़ कर राह में कूद पड़े और छीना-झपटी का बाजार गरम हो गया।

नेपाल की निकट होती सीमा के लगभग, क्षितिज पर दो सबल घोड़ों की आकृति मात्र कुछ देर के लिए दिखाई देती रही और जब तक लखनऊ का खजाना धूल में से उठा, तब तक वे आकृतियाँ भी लोप हो गईं।

● ●





. मैं चाहता हूँ कि इस दिन भारतीय संस्कृति का 'एक.' खाद्य पदार्थ बरसे !



'बेढब' बनारसी

कहा जाता है इसी दिन यक्ष ने हाथी के समान मस्त काले बादलों को देख कर अपनी प्रियतमा के पास अलका में सन्देश भेजा था। कैसा मधुर संदेश था वह कि आजतक उसमें रस भरा है। किंतु युग के साथ बातें बदल गयीं। आषाढ़ के पहले दिन बादल नहीं दिखायी देते। लू की लपटें शरीर को ज्वालामयी बनाती रहती है। मान्यताएँ बदल गयीं। नया युग ऐसा कुछ ले कर आया कि पुराना मुँह ताकता रह गया। इसलिये नये ढंग से हम तो आषाढ़ का प्रथम दिन उस दिन मानते हैं। जब पहले पहल गगन मण्डल में इंद्र की सवारी निकलती है। चाहे महीना कोई भी हो।

इसी दिन यक्ष ने संदेशा भेजा था। भेजा होगा। उस दिन जब पहले बिजली चमकी और पानी की बूँदें आकाश में न थम सकीं, मुझ से मिलना उन्होंने आवश्यक समझा तब मैं ने क्या किया ? मैं ने किसी के पास संदेश नहीं भेजा। उस दर्जी के पास भी नहीं जिसने तीन महीनों से मेरे से कुरते का कपड़ा रख छोड़ा है। मैं ने संदेश भेजा मकान में। दस बारह सीढ़ियों के ऊपर। ताजा पकौड़िया बनाने के लिये। मनु ने लिखा है, और कई जगह मैंने पढ़ा भी है कि लालच ठीक नहीं। अनुचित है। किंतु वर्षा और पकौडियों का कुछ वैसा ही नाता है जैसा वसंत और पलाश का, मजदूर और हड़ताल का, नाच व ताल का और विद्यार्थी और नकल का! कभी कभी घंटों ऐसे समय चिंतित रहता हूँ कि स्वर्ग में पकौड़ियाँ मिलेंगी कि नहीं। मेरा स्वर्ग जाना निश्चित है। क्योंकि काशी के कीटपतंग, जलचर, थलचर, नभचर, नाना सभी स्वर्ग जायँगे। स्वर्ग में अमृत ही मिलता है। शायद ! एक मित्र ने–जिसका संपर्क स्वर्ग से है–कहते हैं कि अब अमृत में विटामिन मिलाकर उसे अधिक पुष्टकर बना दिया गया है, जिसके कारण वह डालडा से भी अधिक जीवनदायक हो गया है। परन्तु खाटी सरसों का तेल मिलेगा कि नहीं जैसे मिठाई मुफ्त की, रुपया पड़ा हुआ, लाइब्रेरी से झटकी पुस्तक अधिक मनमोहक होती है, उसी प्रकार तेल की पकौड़ी आनन्द दायक होती है।

किसी देश की सभ्यता साबुन से नापी जाती है। खाने की रुचि पकौड़ी से नापी जाती है। यद्यपि छोले और दही बड़े सुस्वादु भोजन की श्रेणी में आते हैं तथापि पकौड़ी का स्थान भले आदमियों के भोजन में वही है जो टाई का सूट पर है। कालिदास के समय पकौड़ी का चलन नहीं था, नहीं तो यक्ष

'सु प्रत्यग्रैः कुटुज कुसुमै कल्पितार्यितस्मै'

न करके मेघको गर्म गर्म पकौड़ियों का भोग लागाता और स्वयं खाता।

पकौड़ियाँ आयीं। पानी टप टप गिर रहा रहा है। गर्म गर्म पकौडियाँ तश्तरी में रखी हैं। उन्हें मुँह में रखना फिर दातों से दबाना और फिर जीभ से चारों ओर, उसकी दाँतों से परिक्रमा कराना वैसा ही है जैसे, दाँते वर्जिल की सहायता से क्रमशः स्वर्ग की सीढी पर चढ़ रहा है। युरोप में पुराने कवि नये कवियों की इसी प्रकार सहायता करते थे। स्वर्ग की झाँकी करा देते थे। यहाँ यदि तुलसी और सूर नये कवियों की चिंता करते रहते और उनके सहायक होते तो ऐसी रचनाएँ क्यों सुनने में आतीं जिन में पेड टहलते हैं, नादियाँ दंड करती हैं और पहाड़ों को ज्वर आता है। हमारे प्राचीन कवि, खेद है और हम उनकी आत्मा से क्षमा माँगते हैं, सब काम अपने ही लिये करते थे। तुलसीदास ने इतनी बड़ी पोथी राम चरित मानस लिखी, स्वान्तः सुखाय। बहु जन हिताय, बहु जन सुखाय नहीं लिखा। इसीसे उनकी रचना केवल भारत में प्रसारित हो कर रह गयी। बाइबल की भाँति विश्व में नहीं फैली। यह तो हम लोगों की जबरदस्ती है कि उससे आनंद उठा लेते हैं। उन्होंने इस नियत से नहीं लिखा था। राम चरित मानस तो उन्होंने अपने पाठ करने के लिये रचा था।

पकौड़िया खानी आरंभ की। पहली पकौड़ी के बाद दूसरी पकौड़ी टेस्ट मैच में एक सेंचुरी के बाद दूसरी सेंचुरी के समान थी। जैसे गगन मंडल से बूंदें हरहराती, दया के समान बिना प्रयास के, गिर रही थीं उसी प्रकार आनंद की बूंदें गले में और गले से

अनुक्रमणिका

पेट मे गिर रही थीं। मेरा अनुमान है इसी प्रकार हठयोग में शीर्षासन करते समय जब गले के किसी चक्र में अमृत झरता है ऐसा ही आनंद आता होगा।

पुराने कवि लिख गये हैं कि प्रेमी-प्रेमिका इस दिन रोती हैं। मेघ की प्रत्येक बून्द से उनका कलेजा छिलता है। जब सौदामिनी अपनी छटा पृथ्वी पर फेंकती है तब उनके हृदय में धड़कन होने लगती है। और जहाँ बादल गरजा, वियोगिनीकी वही अवस्था हो जाती है जो परीक्षा फल प्रकाशित होने पर असफल विद्यार्थी की हो जाती है ऐसे समय हमारी समझमें पकौड़ो ही उन्हें शांति दे सकती है। उसासों के कारण जब मुँह खुले एक ताजा पकौड़ो उनके मुँह में डाल दीजिये। थोड़े समय के लिये प्रियतम की याद वसे ही भूल जायगी जैसे दूसरे की पुस्तक ले कर लौटाना भूल जाता है।

पकौड़ी रसपूर्ण होती है, स्निग्ध तेल में बनती है। और इस से यह भी पता चलता है कि तेल में ही बननी चाहिये। और 'हृदय' के दो अर्थ होते हैं। एक तो उसका आकार हृदय के समान होता है, दूसरे हृदय के ऊपर उसका प्रभाव बहुत देर तक स्थिर रहता है। सात्विक लोगों का यही आहार है। कपिल और कणद, व्यास और वाल्मीकि, वसिष्ट और विश्वामित्र समर के साथ साथ इसका सेवन अवश्य करते रहे होंगे। नहीं तो साधारण यव तथा शालिचूर्ण से सांख्य और महाभारत और रामायण जैसे अद्भुत ग्रंथ प्रस्फुटित हों आश्चर्य है।

युग ने पकौड़ी की महत्ता की ओर ध्यान दिया है। आज जितनी पकौड़ी की दूकानें हैं उतनी सतयुग में यज्ञशालाएँ न रहीं होंगी। कभी-कभी प्रबल इच्छा ऐसी कल्पना करने लगती है कि नभ मंडल से बूंदों के स्थानपर पकौड़ियाँ बरसतीं तो कितना सुंदर होता! पावस की महिमा बढ़ जाती। चातक के समान सभी व्यक्ति अपना मुँह खोले आकाश की ओर टकटकी लगाये रहते और टपाटप उनके मुँह में पकौड़ी गिरती।

◆ ◆

कुरूप मानव



शङ्कर शैलेन्द्र

विक्टर ह्यूगो के *Hunch Back of Notre Dame* की

डरो न मुझ से, मैं न प्रेत की छाया।
मुझे भी मिली तुम जैसी ही पंचभूत की काया।

सच है देखो अगर अचानक,
दिखता हूँ मैं बड़ा भयानक!
किंतु बताओ मैं ने तुम को कभी हानि पहुँचाई?
कभी कुबोल बोलकर भी किंचित पीड़ा पहुँचाई?
आगे आओ, बोलो मैंने किसका हृदय दुखाया!
डरो न मुझसे, मैं न प्रेत की छाया!

तनिक सुनो भागो मत डर कर —
वहीं दूर से कहो कृपा कर;
मेरे काँटो भरे जगत में कोई कुसुम नहीं क्या?
काले घन में छुपी ज्योति की कोई किरन नहीं क्या
मुझ से दूर दूर है क्यों कर खुद मेरी ही छाया?
डरो न मुझ से मैं न प्रेत की छाया!

कुमकार की कुटिल भूल यह,
उफ़ मेरे हित बनी शूल यह!
देख मुझे उस रूपमती ने क्यों कर नाक सिकोड़ी?
क्या मेरी निर्दोष देह से अच्छे हैं वे कोढ़ी
जिनका अंदर से सड़ता तन उसने संग सुलाया?
डरो न मुझसे, मैं न प्रेत की छाया!

मुझ को भी चंचल करता सुख,
मेरे दिल में भी गड़ता दुख,
मुझ को भी मिलनाकुल करती यौवन की अँगड़ाई;
मेरा भी कुछ ले झर जाती आमों की अमराई,
दक्खिन के चंचल समीर ने मुझको भी दुलराया।
डरो न मुझसे मैं न प्रेत की छाया।

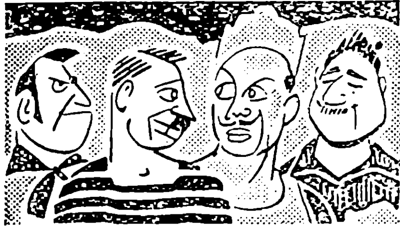
● ●





अनुक्रमणिका

बनमहोत्सव !



लीराम ने एक मर्तबा देखा कि अपने घर की ओट में ही चोर छिपे कर गांव के कोतवाल से इसकी खबर देने के बजाय उसके मन ने एक सोची। उसने अपनी ...शी से बड़ी आवाज में कहा :

ज्जी, सुनो उसकी तबीयत मुकद्दे गाँव मे चोरों ने बड़ा तहलका मचा । हमें अ... सिगरेट पीते ...ना सोचना समझना होगा। तुम अपने ...ने उतार कर मेरे ... ...ी चीजें निकाल कर यहाँ लाओ। मैं ... संदूकची में रख कर ...ने पिछवाड़े के आँगन के कुँए में डूबा देता रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी !"

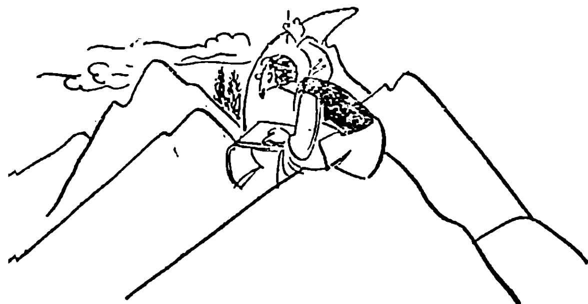
ही समय के भीतर एक संदूकची कुएँ में फेंक देनेवाली "धप्प" की चोरों ने सुनी ! वे सोचने लगे तक़दीर भी कैसी जाग उठी है। अन्धा ... और ईश्वर दें अनेक। बिना बाधा के अपना काम बन गया है। ...यों जाएँ, ख्वामख्वाह आफ़त क्यों मोल ले ?

सन्नाटा छाया और चोर कुएँ की ओर चल पड़े। अन्दर उतरे तो कुआ पानी बड़ा घना है और गहरा भी ! संदूकची निकाल लेना बड़ा है। उन्होंने पानी बाहर निकाल के फेंकने वक्त तब सोची और सब चोर ...फ़त लगा कर उस कोशिश में जुटे। कुएँ के बाँधों में से पानी हिलोरे ...आ दौड़ने लगा। तेनालीराम के घर के चारों ओर नारियल के पेड़ों का लेकिन घना वन था। यह पानी नारीयल की उस बाड़ी को गिला करने ... करने लगा।

... ने उस संदूकची को बड़ी सख्त कोशिश के बाद बाहर निकाला। ... देखते हैं तो उसमें बड़े-बड़े पत्थर ! हाथों हाथ बनाया जाने का दुःख ...ड़ाने लगा। तब तक रात का अँधेरा मिट चुका था, और सूरज की ...आभा पूरब को नहला रही थी। इतने में तेनालीराम आगे बढ़ा और ...हना :

...लो भाइयो, सिर सलामत तो पगड़ी पचास ! अगर जान प्यारी है तो ...ओ। तुम लोगों ने मेरी बाडी को गिला किया इसलिए धन्यवाद !"

भर की बेहरम थकान और तिसपर फूटी नसीब को दिखानेवाली वह ...दूकची ! गमगीत बने वे चोर फौरन छलाँगे लगाते हुए भाग गए !





जब फिक्र
मिटेगी ! ... जब
सूदवाले, सूद
का जिक्र नहीं
करेंगे । और मेरे
ताँगे का
घोड़ा चमक
दमक के नए
पहनावे को
पहनेगा ! क्या आ
... पर इकट्ठे किए हैं ...

मंगू कोचवान अपने अड्डे में बहुत अकलमन्द आदमी समझा जाता था। गो उसकी तालीमी हैसियत सिफ़र के बराबर थी और उसने कभी स्कूल का मुँह भी नहीं देखा था। लेकिन इस के बावजूद उसे दुनिया भर की चीज़ों की जानकारी थी। अड्डे के वे तमाम कोचवान जिन को यह जानने की ख्वाहिश होती थी कि दुनिया के अन्दर क्या हो रहा है, उस्ताद मंगू की वसीअ मालूमात से अच्छी तरह वाकीफ थे।

पिछले दिनों जब उस्ताद मंगू ने अपनी एक सवारी से स्पेन में जंग छिड़ जाने की अफवाह सुनी थी तो गामा चौधरी के चौड़े कन्धे पर थपकी दे कर मुदब्बिराना अन्दाज में पेशीन गोई की थी, "देख लेना चौधरी, थोड़े ही दिनों में स्पेन के अन्दर जंग छिड़ जाएगी।"

और जब गामा चौधरी ने पूछा कि स्पेन कहाँ वाकिअ है तो उस्ताद मंगू ने बड़ी मतानत से जवाब दिया था, "विलायत में और कहाँ ?"

स्पेन में जंग छिड़ी और हर शख्स को उसका पता चल गया, तो स्टेशन के अड्डे में जितने कोचवान हलका बाँधे हुए हुक्का पी रहे थे, दिल ही दिल में उस्ताद मंगू की बड़ाई का एतिराफ कर रहे थे और उस्ताद मंगू उस वक्त माल रोड की चमकीली सतह पर तांगा चलाते हुए अपनी सवारी से ताजा हिन्दू मुस्लिम फसाद पर तबादिला खियाल।

उस रोज शाम के करीब जब वह अड्डे में आया तो उसका चेहरा गैरमामूली तौर पर तमतमा रहा था। हुक्के का दौरा चलते चलते जब हिन्दू मुस्लिम फ़साद की बात छिड़ी तो उस्ताद मंगू ने सिर पर से खाकी पगड़ी उतारी और बगल में दाब कर बड़े मुफक्कराना लहजे में कहा,

"यह किसी पीर की बद दुआ का नतीज़ा है कि आए दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में चाकू-छुरियाँ चलती रहती हैं, मैं ने अपने बड़ों से सुना है कि अकबर बादशाह ने किसी दर्वेश का दिल दुखाया था और उस दर्वेश ने जलकर यह बद दुआ दी थी, "जा तेरे हिन्दुस्तान में हमेशा फ़साद ही होते रहेंगे। "और देख लो, जब से अकबर बादशाह का राज्य खत्म हुआ है, हिन्दुस्तान में फ़साद पर फ़साद होते रहते हैं।" यह कहकर उसने ठण्डी साँस भरी और फिर हुक्के का दम लगा कर अपनी बात शुरू की, "यह काँग्रेसी हिन्दुस्तान को आज़ाद कराना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि अगर यह लोग हज़ार साल भी सिर पटकते रहें तो कुछ न होगा। बड़ी से बड़ी बात यह होगी कि अंग्रेज़ चला जायगा और कोई इटलीवाला आ जाएगा, या वह रूसवाला, जिसकी बाबत मैं ने सुना है कि वह बहुत तगड़ा आदमी है, लेकिन हिन्दुस्तान सदा गुलाम रहेगा, हाँ यह कहना भूल ही गया कि पीर ने यह बद दुआ भी दी थी कि हिन्दुस्तान पर हमेशा बाहर के आदमी ही सल्तनत करते रहेंगे।"




उस्ताद मंगू को अंग्रेजों से बड़ी नफ़रत थी और इस नफ़रत की सबब तो वह यह बतलाया करता था कि वे उसके हिन्दुस्तान पर अपना सिक्का चलाया करते हैं और तरह तरह के जुल्म ढाते हैं। मगर उसके तनफ्फ़ुर की सब से बड़ी वजह यह थी कि छाउनी के गोरे उसे बहुत सताया करते थे। वे उसके साथ ऐसा सुलूक किया करते थे, गोया वह एक ज़लील कुत्ता है। इसके अलावा उसे उनका रंग भी बिलकुल पसन्द न था। जब कभी वह गोरे के सुर्ख सफेद चेहरे को देखता तो उसे मतली सी आ जाती, न मालूम क्यों? वह कहा करता था कि उनके लाल झुरियाँ भरे चहरे देख कर मुझे वह लाश याद आ जाती है जिस के जिस्म पर से ऊपर की झली गल गल कर झड़ रही हो।

जब किसी शराबी गोरे से उसका झगड़ा हो जाता तो सारा दिन उसकी तबीयत मुक्दर रहती और वह शाम को अड्डे में आ कर हल मार्का सिगरेट पीते या हुक्के के कश लगाते हुए उस गोरे को जी भर के सुनाया करता।

... वह मोटी गाली देने के बाद वह अपने सिर को ढीली पगड़ी समेत झटका दे कर कहा करता था, "आग लेने आये थे अब घर के मालिक ही बन गये, नाक में दम कर रखा है इन बन्दरों की औलाद ने, यूँ रोअब गाँढते है, गोया हम उनके बावा के नोकर हैं..."

इस पर भी उसका गुस्सा थण्डा नहीं होता था, जब तक उसका कोई साथी उसके पास बैठा रहता वह अपने सीने की आग उगालता रहता।

"शक्ल देखते हो ना तुम उसकी... जैसे कोढ़ हो रहा हो" बिलकुल मुरदार, एक धक्के की मार और गिट-पिट गिट-पिट यूँ बक रहा था जैसे मार ही डालेगा, पहले पहल जी में आई कि मलऊन की खोपडी के पुर्ज़े उड़ा दूँ, लेकिन इन खियाल से टल गया कि इस मरदूद को मारना अपनी हतक है"...यह कहते कहते वह थोड़ी देर के लिए खामोश हो जाता और नाक को खाकी कमीज़ कि आस्तीन से साफ करने के बाद फिर बड़बड़ाने लग जाता।

"कसम है भगवान की इन लाट साहबों के नाज़ उठाते उठाते तंग आ गया हूँ। जब कभी उनका मनहूस चहरा देखता हूँ, रगों में खून खबलने लग जाता है। कोई नया कानून बने तो इन लोगों से नजात मिले। तेरी कसम जान में जान आए।"

और जब एक रोज उस्ताद मँगू ने कचेहरी से अपने ताँगे पर दो सवारियाँ लादीं और उनकी गुफ्तगू (बातचीत) से उसे पता चला कि हिन्दुस्तान में नया कानून लागू होनेवाला है तो उसकी खुशी की कोई इन्तहा न रही,

दो मारवाड़ी जो कचेहरी में अपने दीवानी मुक़दमे के सिल सिले में आये थे, घर जाते हुए नये कानून यानी 'इण्डिया एक्ट' के मुतआलिक दोनो बातचीत कर रहे थे।

'सुना है कि पहली अप्रैल से हिन्दुस्तान में नया कानून चलेगा- क्या हर चीज़ बदल जाएगी?"

"हर चीज़ तो नहीं बदलेगी मगर कहते हैं कि बहुत कुछ बदल जाएगा, और हिदुस्तानियों को आज़ादी मिल जाएगी!"

"क्या ब्याज के संबंध में कोई नया कानून पास होगा?"

"यह पूछने की बात है, कल किसी वकील से मालूम कर लेंगे।"

इन मारवाड़ियों की बातचीत उस्ताद मंगू के दिल में ना काबिले बयान खुशी पैदा कर रही थी। वह अपने घोड़े को हमेशा गालियाँ देता था और चाबुक से बहुत बुरी तरह पीटता था, मगर अब वह बार बार पीछे मुड़ कर मारवाड़ियों की तरफ देखता और अपनी बढ़ी हुई मुँछों के बाल एक उँगली से बड़ी सफाई के साथ ऊँचे कर के घोड़े की पीठ पर बागें ढीली करते हुए बड़े प्यार से कहता, "चल बेटा, चल बेटा, चल ज़रा हवा से बातें करके दिखा दे।"

मारवाड़ियों को उन के ठिकाने पर पहुँचा कर उस ने अनारकली में दिनू हलवाई की दुकान आध सेर दही की लस्सी पी कर एक बड़ी सी डकार ली और मुँह में मूँछों को दबा कर उन को चूसते हुए, ऐसे ही बुलन्द आवाज़ में कहा "हत् तेरी ऐसी की तैसी।"

शाम को जब वह अड्डे को लौटा तो खिलाफ़ मामूली उसे वहाँ अपनी जान पहचान का कोई आदमी न मिल सका। यह देख उस के सीने में अजीबो गरीब तूफान उमड पड़ा। आज वह एक बड़ी खबर अपने दोस्तों को सुनानेवाला था, बहुत बड़ी खबर और उसको खबर। अपने अन्दर से बाहर निकालने के लिए वह सख्त मजबूत हो रहा था। लेकिन वहाँ कोई था ही नहीं।

आध घण्टे तक वह चाबुक बगल में दबाए स्टेशन के अड्डे की आहनी (लोहे की) छत के नीचे बेकरारी की हालत में टहलता रहा। उस के दिमाग़ में बड़े अच्छे अच्छे खयालत आ रहे थे। नये कानून के चलने की खबर ने उस को एक नई दुनिया में ला खड़ा किया था, वह इस नये क़ानून के मुतअल्लिक जो अप्रैल को हिदुस्तान में लागू होनेवाला था, अपने दिमाग़ में तमाम बत्तियाँ रोशन कर के ग़ौरो-फिक्र कर रहा था। उसके कानों में मारवाड़ी का यह अन्देशा, "क्या ब्याज के मुतअल्लिक भी कोई नया क़ानून पास होगा" बार बार गूँज रहा था। और उस के तमाम जिस्म में मुसर्रत की एक लहर दौड़ रही थी। कई बार अपनी घनी मूँछों के अन्दर हँस कर उसने मारवाड़ियों को गाली दी"... गरीबों की खटिया में घुसे हुए खटमल— "नया क़ानून उनके लिए खबलता हुआ पानी होगा।"

वह बेहद मसरूर था। खासकर उस वक्त उसके दिल को बहुत ठण्डक पहुँचती। जब वह खयाल करता कि गोरों—सफेद चूहों की थोथनियाँ नये कानून के आते ही बिलों में हमेशा के लिये गायब हो जाएँगी।

जब नथ्थू गंजा पगड़ी बगल में दबाये अड्डे में दाखिल हुआ तो उस्ताद मंगू बढकर उससे मिला और उसके हाथ अपने हाथ में लेकर बुलन्द आवाज़ से कहने लगा "ला हाथ इधर... ऐसी खबर सुनाऊँ कि जी खुश हो जाए— तेरी इस गंजी खोपड़ीपर बाल उग आएँ।"





और यह कहकर मंगू ने बड़े... मज़े ले ले कर नये कानून के मुतअल्लिक अपने दोस्त से बातें शुरू कर दीं, दौरान बातचीत में उसने कई मरतबा नथ्थू गंजे के हाथ पर ज़ोर से अपना हाथ मार कर कहा, "तू देखता रहा। क्या बनता है, यह रूसवाला बादशाह कुछ जरूर कर के रहे गा,"

उस्ताद मंगू मौजूदा सौवियत निझाम की सोशलिस्ट सरगरमियों के मुतअल्लिक बहुत कुछ सुन चुका था और उसे वहाँ के नये कानून और दूसरी नई चीज़ें बहुत पसन्द थीं। इसी लिए उसने "रूसवाले बादशाह" को "इण्डिया एक्ट" यानी 'नये कानून' के साथ मिला दिया था। और पहली अप्रैल को पुराने निझाम (व्यवस्था.) में जो नई तबदीली थीं वह उन्हें "रूस वाले बादशाह" के असर का नतीजा समझता था।

कुछ अर्से से पिशावर और दीगर शहरों में सुर्खपोशों की तहरीक जारी थी, उस्ताद, मँगू ने इस तहरीक़ को अपने दिमाग में "रूस-वाले बादशाह" और फिर नये कानून के साथ खलत–मिलत कर दिया था, इसके अलावा वह जब कभी किसी से सुनता कि फुलाँ शहर में इतने बम साज पकड़े गये हैं, या फुलाँ जगह इतने आदमिओं पर बगावत के इलजाम में मुकदमा चलाया गया है, तो उन तमाम वाकिआत प्रसंगों को नये कानून का पेशखीमा समझता और दिल ही दिल में बहुत खुश होता था।

एक रोज़ उसके ताँगे में दो बॅरिस्टर बैठे नये कानून जोर से तनकीद कर रहे थे और वह खामोशी से उनकी बातें सुन रहा था। उन में से एक दूसरे से कहा रहा था,

"नये कानून का दूसरा हिस्सा फेडरेशन है जो मेरी समझ में अभी तक नहीं आया। ऐसा फेडरेशन दुनिया कीतवारीख में आजतक न सुन न देखा गया है। सियासी नजरिये के एतबार से भी फेडरेशन बिलकुल ग़लत है बल्कि यूँ कहना चाहिए कि यह कोई फेडरेशन है ही नहीं।"

इन बॅरिस्टरों के दर्म्यान जो बातचीत हुई, चूँकि उन में ज्यादा-तर अल्फाज अंग्रेजी के थे, इसलिए उस्ताद मँगू सिर्फ ऊपर के जुमले ही को किसी कदर समझा और उसने खियाल किया। यह लोग हिन्दुस्तान में नये कानून की आमद को बुरा समझते हैं और नहीं चाहते कि उनका वतन आज़ाद हो, चुनाँचे इस खियाल के ज़ेरे असर उसने कई मरतबा इन दो बॅरिस्टरों को हकारत की निगाहों से देखकर दिल ही में कहा "टोडी बच्चे।"

जब कभी वह कसी दबी जबान में "टोडी बच्चा" कहता तो दिल में यह महसूस कर के बड़ा खुश होता था कि उसने इस नाम को बडी जगह इस्तेमाल किया है और यह कि वह शरीफ आदमी और "टोडी बच्चे" में तमीज़ करने की असलियत रखता है।

इस वाकिये के तीसरे रोज वह गवर्नमेण्ट कॉलेज के तीन तुलबा को अपने तांगे में बिठा कर मजंग जा रहा था कि उसने इन तीनों लड़कों को आपस में बातें करते सुना, "नये कानून ने मेरी उम्मीदें बढा दी हैं, अगर... साहब असेम्बली के मेम्बर हुए तो किसी सरकारी दफ्तर में मुलाज़िमत ज़रूर मिल जाएगी।"

"वैसे भी बहुत सी जगहें और निकलेंगी, शायद हाथ भी इस गड़बड़ में कुछ आ जाए।"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं।"

"वह बेकार ग्रेजुएट जो मारे फिर रहे हैं उन में कुछ तो कमी होगी।"

इस बातचीत ने उस्ताद मंगू के दिल में नये कानून की अहमियत और भी बढा दी और वह दिन में कई बार सोचता "यानी कोई नई चीज़।" और हरबार उसकी नज़रों के सामने अपने घोडे का वह नया साज़ आ जाता, जो उस ने दो बरस हुए चौधरी खुदाबक्ष से बडी अच्छी तरह टोंक कर ख़रीदा था। उस साज़ पर, जब वह नया था, जगह जगह पर लोहे की निकल चढी हुई कीलें चमकती थीं और जहाँ जहाँ पीतल का काम था, वह तो सोने की तरह दमकता था, इस लिहाज़ से भी नये क़ानून का दरख़शाँ व ताबाँ होना ज़रूरी थी।

पहली अप्रैल तक उस्ताद मँगू ने नये क़ानून के खिलाफ और उसके हक़ में बहुत कुछ सुना, मगर उस के मुतअल्लिक जो तसव्वूर वह अपने ज़हन में क़ायम कर चुका था, बदल न सका, वह समझता था कि पहली अप्रैल को नये क़ानून के आते ही सब मुआमला साफ हो जाएगा और उसको यक़ीन था कि इसकी आमद पर जो चीज़ें नज़र आएँगी उन से उस की आँखों को ठण्डक पहुँचेगी।

आखिरकार मार्च के एकत्तीस दिन खत्म हो गये और अप्रैल के शुरू होने में चन्द खामोश घण्टे बाकी रह गये। मौसम खिलाफ़ मामूल सर्द था और हवा में ताज़गी थी। पहली अप्रैल को सुबह सवेर उस्ताद मंगू उठा और अस्तबल में जा कर तांगे में घोड़े को जोता और बाहर निकल गया। उसकी तबीयत आज गैरमामूली तौर पर मसरूर थी, वह नये क़ानून को देखनेवाला था।

उसने सुबह के सर्द धुन्दलके में कई तंग और खुले बाज़ारों का चक्कर लगाया मगर उसे हर चीज़ पुरानी नज़र आई। आसमान की तरह पुरानी, उसकी निगाहें आज खास तौर पर नया रंग देखना चाहती थीं। मगर सिवाय उस कलगी के जो रंग बरंग के परों से बनी थी और उसके घोड़े के सिर पर जमी हुई थी और सारी जीचें पुरानी थीं, यह नई कलग़ी उसने नये कानून की खुशी में एकत्तीस मार्च को चौधरी खुदाबक्ष से जाड़े चौदह आने में खरीदी थी।

घोडे की टापों की आवाज़, काली सडक और उसके आसपास थोड़ा थोड़ा फासला छोड़ कर लगाए हुए बिजली के खम्बे, दूकानों के बोर्ड, उसके घोड़े के गले में पडे हुए घुंघरूओं की झंझनाहट, बाज़ार में चलते फिरते आदमी...इन में से कौन सी चीज़ नई थी? जाहिर है कोई भी नहीं, लेकिन उस्ताद मँगू मायूस नहीं था।

अभी बहुत सवेरा है। दूकानें भी तो सब की सब बन्द है। इस खियाल से उसे तसकीन थी, इसके अलावा वह यह सोचता था। "हाई कोर्ट में नौ बजे के बाद ही काम शुरू होता है। अब इस से पहले नया कानून क्या नज़र आएगा?





जब उसका ताँगा गवर्नमेण्ट कालेज़ के दरवाजे पर पहुँचा तो कालेज़ की घडयाल ने बड़ी रउनत से नौ बजाए, जो तुलबा कालेज के दरवाजे से बाहर निकल रहे थे। खुशपोश थे, मगर उस्ताद मँगू को न जाने उनके कपड़े मैलेमैले से क्यों नजर आए, शायद उसकी वज़्ह यह थी कि उसकी निगाहें आज किसी खीरकुन जलवे का नज्ज़ारा करनेवाली थीं।

ताँगे को दाएँ हाथ मोड़ कर वह थोडी देर के बाद फिर अनारकली में था, बाज़ार की आधी दूकानें खुल चुकी थीं। और अब लोगों की आमदो रफ्त शुरू हो गई थी, हलवाई की दूकानों पर गाहकों की खूब भीड़ थी, मिनहारीवालों की नुमाइशी चीज़ें शीशे की अलमारियों में लोगों को दावते नज़ारा दे रही थीं। और बिजली के तारों पर कई कबूतर आपस में लड़ झगड़ रहे थे, मगर उस्ताद मंगू के लिए उन तमाम चीज़ों में कोई दिलचस्पी न थी। वह नये कानून को देखना चाहता था, ठीक उस तरह जिस तरह वह अपने घोड़े को देख रहा था।

जब उस्ताद मंगू के घर में बच्चा पैदा होनेवाला था, तो उसने चार पाँच महिने बड़ी बेकरारी गुजारे थे। उसको यकीन था कि बच्चा किसी न किसी दिन जरूर पैदा होगा, मगर वह इन्तिजार की घडियाँ नहीं काट सकता था। वह चाहता था कि अपने बच्चे को सिर्फ़ एक नज़र देख ले उसके बाद वह पैदा होता रहे। चुनाँचे इसी गैर मग़्रूब ख्वाहिश के जेरे असर उसने कई मरतबा अपनी बेकार बीबी के पेट को दबा दबा कर और उसके ऊपर कान रख रखकर अपने बच्चे के मुतआल्लिक जानना चाहा था मगर नाकाम रहा था। एक मरतबा वह इन्तिजार करते करते इस कदर तंग आ गया था कि अपनी बीबी पर बरस भी पड़ा था।

"तू हर वक्त मुक्त मुर्दे की तरह पडी रहती है, उठ, जरा चल फिर, तेरे अंग में थोडी सी ताकत तो आएँ। यों तक्ता बने रहने से कुछ न हो सकेगा, तू यह समझती है कि इस तरह लेटे लेटे बच्चा जन देगी?"

उस्ताद मंगू तबअन बहुत जल्दबाज वाकिअ हुआ था। वह हर सबब की अमली तशकील देखने का न सिर्फ़ ख्वाहिशमन्द था बल्कि मुतजस्सुस था, उसकी बीबी गंगावती उसकी इस किस्म की बेकरारी देखकर आम तौर पर कहा करती थी, "अभी कुँआ खोदा नही गया और तुम प्यास से बेहाल हो रहे हो।"

कुछ भी हो मगर उस्ताद मंगू नये कानून के इन्तिजार में इतना बेकार नहीं था, जितना कि उसे अपनी तबीयत के लिहाज़ से होना चाहिए था। वह आज नये कानून को देखने के लिए घर से निकला था। ठीक उसी तरह जिस तरह वह गांधी या जवाहरलाल के जुलूस का नज्जारा करने के लिए निकलता था।

लीडरों की अज़मत का अन्दाज़ा उस्ताद मंगू हमेशा उन के जुलूस के हंगामों और उन के गले में डाले हुए फूलों के हारों से किया करता था। अगर कोई लीडर गेंदे के फूलों से लदा हो तो उस्ताद मंगू के नज़दीक वह बड़ा आदमी था और अगर किसी लीडर के जुलूस मे भीड़ के बाहर दो तीन फसाद होते होते रह जाएँ तो उसकी निगाहों में वह और भी बडा आदमी था। अब नये कानून को, वह जहन के उसी तराजू में तोलना चाहता था।

अनारकली से निकल कर वह माल रोड की चमकीली सतह पर अपने तांगे को आहिस्ता चला रहा था कि मोटरों की दूकान के पास उसे छाऊनी की एक सवारी मिल गई। किराया तय करने के बाद उसने अपने घोड़े को चाबुक दिखाया और दिल में यह खियाल किया।

"चलो यह भी अच्छा हुआ, शायद छाऊनी ही से 'नये कानून' का कुछ पता चले।"

छाऊनी पहुँचकर उस्ताद मंगू ने सवारी को उसके मंजिले मक़सूद पर उतार दिया और जेब से सिगरेट निकाल कर बाएँ हाथ की आखिरी दो उँगलियों में दबा कर सुलगाया और अगली सीट के गद्दे पर बैठ गया। जब उस्ताद मंगू को किसी सवारी की तलाश नहीं होती थी या किसी बीते हुए वाकिए पर ग़ौर करना होता था तो वह आम तौर पर अगली सीट छोड़ कर पिछली सीट पर बड़े इतमिनान से बैठ कर अपने घोड़े की बाएँ दाएँ हाथ के गिर्द लपेट लिया करता था। ऐसे मौकों पर उसका घोड़ा थोड़ा सा हिनहनाने के बाद बडी धीमी चाल से चलना शुरू कर देता था। गोया उसे थोडी देर के लिए भला दौड़ से छुट्टी घोड़े की चाल और उस्ताद मंगो के दिमाग़ में खियालत की आमद बहुत सुस्त थी। जिस तरह घोडा आहिस्ता आहिस्ता कदम उटा रहा था उसी तरह उस्ताद मंगू के जहन में नये कानून के मुतअल्लिक नये कसायत दाखिल हो रहे थे।

वह नये कानून की मौजूदगी में म्युनिसिपल कमेटी से तांगों के नम्बर मिलने पर ग़ौर कर रहा था और इस काबिले गौर बात को नये कानून की रोशनी में देखने की कोशिश कर रहा था, वह इस सोच विचार में गर्क था कि उसे यों मालूम हुआ जैसे किसी सवारी ने उसे बुलाया है, पीछे पलट कर देखने से उसे सड़क उस पार दूर बिजली के खम्बे के पास एक "गोरा" खड़ा नजर आया जो उसे हाथ से बुला रहा था।

जैसा कि बयान किया जा चुका है, उस्ताद मंगू को गोरों से बहद नफ़रत थी। जब उसने ताज़ा गाहक को गोरे की शिक्ल में देखा तो उसके दिल में नफ़रत के जज़बात बेदार हो गये, पहले तो उसके जी में आई कि बिलकुल तवज्ज़ न दे और उसको छोड़ कर चला जाए मगर बाद मे उसको खियाल आया

अनुक्रमणिका





"इन के पैसे छोड़ना भी बेवकूफी है। कलग़ी पर जो मुफ्त में साडे चौदह आने खर्च कर दिये हैं, इनकी जेब ही से वसूल करना चाहिए। चलो चलते हैं।"

खाली सड़क पर बड़ी सफाई से तांगा मोड़कर उसने घोड़े को चाबुक दिखाया और आँख झपकने की देर में वह बिजली के खम्बे पास था। घोड़े की बागें खींच कर उसने तांगा ठहराया और पिछली सीट पर बैठे बैठे गोरे से पूछा

"साहब बहादुर कहाँ जाना माँगता हैं?"

इस सवाल में बला का तनज़िया अन्दाज था। साहब बहादुर कहते वक्त उसका ऊपर का मूँछों भरा होंट नीचे की तरफ खिंच गया और पास ही के गाल के उस तरफ जो मध्धम सी लकीर नाक के नथने से ठोड़ी के बालाई हिस्से तक चली आ रही थी एक लर्जीश के साथ गहरी हो गई। गोया किसी ने नुकी ले चाकू से शीशम की साँवली लकड़ी में धारी डाल दी है। उसका सारा हरा हँस चेहरा था। और अपने अन्दर उस ने उस "गोरे" को सीने की आग में जला कर भस्म कर डाला था।

जब "गोरे" ने जो बिजली के खम्बे की ओर में हवा का रुख बचाकर सिगारेट सुलगा रहा था मुड़ के पाइदान की तरफ क़दम बढ़ाया तो अचानक उस्ताद मंगू की ओर उसकी नजरें चार हुई और ऐसा मालूम हुआ कि एक वक्त आमने सामने की बन्दूकों से गोलियाँ खारिज हुई और आपस में टकरा कर एक आतिशीं बगोला बन कर ऊपर को उड़ गई।

उस्ताद मंगू जो अबके दाएँ हाथ से बाग के बल खोल कर तांगे पर से नीचे उतरने वाला था। अपने सामने खड़े "गोरे" को देख रहा था। गोया वह उसके वजूद के जर्रे जर्रे को अपनी निगाहों से चबा रहा है और गोरा कुछ इस तरह अपनी नीली पतलून गैरमरई चीजें झाड़ रहा था। गोया वह उस्ताद मंगू के इस हमले से अपने वजूद के कुछ हिस्से को बचाने की कोशिश कर रहा है।

गोरे ने सिगारेट का धुआँ निगलते हुए कहा "जाना माँगता है या फिर गड़बड़ करेगा।"

"वही है," यह लफ्ज़ उस्ताद मंगू के ज़हन में पैदा हुए और उसकी चौड़ी छाती के अन्दर नाचने लगे।

"वही है," उसने ये लफ्त अपने मुँह के अन्दर ही अन्दर दोहराए और साथ ही उसे पूरा यकीन हो गया कि वह गोरा जो उस के सामने खड़ा है वही है। जिस से पिछले बरस उस की झड़प हो गई थी और इस खामख्वाह के झगड़े में जिसका सबब गोरे के दिमाग़ में चढी हुई शराब थी, उसे तौअन व कुरहन बहुत सी बातें सहनी पडी थीं। उस्ताद मंगू ने गोरे का दिमाग़ दुरुस्त कर दिया होता। बल्कि उस के पुर्जे उड़ा दिये होते मगर वह किसी मसलिहत की बिना पर खामोश हो गया था। उसको मालूम था कि इस किस्म के झगड़ों में अदलत का नजला आम तौर पर कोचवानों ही पर गिरता है।

उस्ताद मंगू ने पिछले बरस की लडाई और पहली अप्रैल के नये कानून पर गौर करते हुए गोरे से कहा, "कहाँ जाना माँगटा हैं?"

उस्ताद मंगू के लहजे में उसके चाबुक ऐसी तेजी थीं।

गोरे ने जवाब दिया "हीरा मण्डी।"

"किराया पाँच रुपये होगा" उस्ताद मंगू की मूँछें थरथराई।

यह सुनकर गोरा हैरान हो गया, वह चिल्लाया "पाँच रुपये क्या तुम —?"

"हाँ हाँ पाँच रुपिये," यह कहते हुए उस्ताद मंगू का दाहना बालों भरा हाथ मींचकर एक वजनी घौंसे की शिक्ल इख्तियार कर गया। "क्यों जाते हो या बेकार बातें बनाओगे," उस्ताद मंगू का लहजा सख्त हो गया।

गोरा पिछले बरस के वाकए को पेशेनज़र रख कर उस्ताद मंगू के सीने की चौडाई को नजरअन्दाज कर चुका था। वह खियाल कर रहा था कि इसकी खोपड़ी फिर खुजला रही है। इस हौसला अफ़ज़ा खियाल के ज़ेरे असर वह ताँगे की तरफ अकड़ कर बढ़ा और अपनी छड़ी से उस्ताद मंगू को तांगे पर से नीचे उतरने का इशारा किया। बेत की पालिश की हुई पतली छडी उस्ताद मंगू की मोटी रान के साथ दो तीन बार छूई, उसने खडे खडे ऊपर से पस्तक़द गोरे को देखा, गोया वह अपनी निगाहों के वजन ही से उसे पिस डालना चाहता है, फ़िर उसका घूँसा कमान में से तीर की तरह ऊपर को उठा और चष्म जदन में गोरे की ठुडी के नीचे जम गया। धक्का देकर उसने गोरे को परे हटाया और नीचे उतर कर उसे धडा-धड पीटना शुरू कर दिया।

मुतहैइर व शशर गोरे ने इधर उधर सिमट कर उस्ताद मंगू के घूँसों से बचने की कोशिश की और जब देखा कि उसके मुखालिफ दीवानगी सवार है और उसकी आँखों में से चिंगारियाँ बरस रही हैं; तो उसने जोर जोर से चिल्लाना शुरू किया। उसकी चीखो-पुकार ने उस्ताद मंगू की बाहों को और भी तेज कर दिया, वह गोरे को जी भर के पीट रहा था और साथ यह कहता जाता था।

"पहली अप्रैल को भी अकड खूँ। पहली अप्रैल को भी वही अकड खूँ—अब हमारा राज है बच्चा?"

लोग जमा हो गये आर पूलिस के दो सिपाहियों ने बडी मुश्किल से गोरे को उस्ताद मंगू की गिरफ्त से छुडाया। उस्ताद मंगू उन दो सिपाहियों के दर्म्यान खडा था। उसकी चौडी छाती फूली हुई साँस की वजह से ऊपर नीचे हो रही थी। मुँह से झाग बह रहा था और अपनी मुस्कराती हुई आँखों से हैरत जदा मज़मे की तरफ देख कर हाँफती हुई आवाज में कह रहा था।

"वह दिन गुजर गये जब खलीलखान फाख्ता उडाया करते थे-अब नया क़ानून है मियाँ—नया क़ानून!

और बेचारा गोरा अपने बिगडे हुए चहरे के साथ बेवकूफों के मानिन्द कभी उस्ताद मंगू की तरफ देखता और कभी हुजूम की तरफ।

उस्ताद मंगू को पूलिस के सिपाही थाने में ले गये, रास्ते में और थाने के अन्दर कमरे में वह "नया कानून", "नया कानून" चिल्लाता रहा मगर किसी ने एक न सुनी।

"नया कानून" "नया कानून" क्या बक रहे हो? क़ानून वही हैं पुराना और उसको हवालत में बन्द कर दिया।

● ●





मौत की तरह जिस का वक़्त मुअय्यन मुक़र्रर है और जो मर्ज़ भी मौत की तरह लाइलाज़ है, जिस का नाम है...



गंजा

— कृशन चन्दर

कुछ लोग पैदाइशी बेवक़ूफ होते हैं। कुछ लोग पैदाइशी गंजे होते हैं। मेरा नाम दूसरी फहेरिस्त में आता है — गो बाज़ दोस्त मुसिर है कि मेरा नाम पहली फहेरिस्त में आना चाहिए। बहरहाल मैं गंजा हूँ, हमेशा से गंजा हूँ, हमेशा गंजा रहूँगा। दर असल गंजा होने में एक खुशगवार क़िस्म की अजमत है। जो दूसरे हालात में मुमकिन नहीं। इफ़्लास आता है और चला जाता है। दोस्त मिलते हैं बिछड़ जाते हैं। दोस्ती आती है और चली जाती है। लेकिन गंज जब आता है तो कभी नहीं जाता। बदचलन से बदचलन आदमी नेक तीनत हो जाता है। अहमक से अहमक आदमी जीरक बन सकता है। लेकिन गंजा आदमी दुबार बालों वाला नहीं बन सकता। मौत की तरह गंज का भी वख़्त मुअय्यन मुकर्रर है और यह मर्ज भी मौत की तरह लाइलाज़ है।

गो बाज़ार में इस मर्ज़ को दूर करने के लिए सैकडों दवाएँ फरोख्त होती हैं। हर रोज अखबार इस किस्म के इश्तिहारों से भरे होते हैं। और मेरा तजरूबा है कि ये दवाएँ वाकई बडी कारआम होती हैं। यह दवाएँ अण्डे की सतह पर बाल उगा सकती हैं। कंघी को ब्रश में तबदील कर सकती हैं। लेकिन गंजी चँदया पर बाल नहीं उगा सकतीं। नहीं, मेरे दोस्तो, मेरे गंजे साथियो, वह कतई ना मुमकिन है!

अब तो मैं भी अपने गंज का आदी हो गया हूँ। जैसे पैदाइशी काना एक आँख का आदी हो जाता है! लेकिन इस दुनिया का क्या किया जाएँ कि किसी तरह जीने ही नहीं देती! हर वक्त, हर लहज़ा किसी न किसी तरह से एहसास दिलाए रखती है कि तुम गंजे हो। मेरे एक दोस्त हैं, जनाब राय गोगानी गावाँ, जो कि उमर में मुझ से पन्द्रह साल बड़े होगे, बाल सफेद हो गये हैं। लड़का बी. ए. में पढ़ता है, मगर मुझे मेरे गंज की वजह से बड़ी कमीनी मुसर्रत से हमेशा अपना बड़ा भाई कहते हैं। एक हैं जनाब तोटे तगारी, कि सूरत शकल से दमे के मरीज़ दिखाई देते हैं। मगर वह भी मुझे बढय्यू कह के पुकारेंगे और अगर मैं मोएतराज़ होता हूँ तो फौरन बात का रूख बदल के कहते हैं भई बुरा मत मानों, हम तो इसलिए आपको बड़ा भाई कहते हैं कि आप अक्लो दानिश में हम से बड़े हैं! न जाने इन लोगों ने अक्ल को गंज से क्यों बान्ध दिया है। किसी बाल से बान्धा है तो वह नजर नहीं आता!

अक्सर यह समझा जाता है कि ज्यों ज्यों बाल घटते हैं, अक्ल बढ़ती है। फिर एक वक्त वह आता है कि इधर सिर से बाल गायब हो जाते हैं उधर इन्सान को इरफ़ान हासिल हो जाता है। मालूम नहीं इस बात में कहाँ तक सदाकत है। मगर ग़ालिबन इसी वजह से भिक्षू, मौलवी और पण्डित लोग हमेशा अपना सिर घुटाये रखते हैं ताकि हकीकी तरीके पर न सही मसनूई ही से गंजे नजर आएँ। दुनियाँ में मैं ने यही एक फिरक़ा देखा है जिसके लिए गंज बाइस से फ़ख़्रो मुबाहात है।

मैं चूँकि खुद गंजा हूँ, इसलिए अक्ल और गंज के दर्म्यान जो रिश्ता कायम किया गया है, उसे किसी न किसी तरह सही ही समझता हूँ। इस के सिवा और कोई चारा भी नहीं।

मगर साहब गंजा आदमी बेवकूफ हो न हो, बदकिस्मत जरूर होता है। अब मैं एक खुफ़िया राज़ आपको बताता हूँ। मेरे आज तक कुँवारे रहने की वजह यही है।

जाने इन औरतों को हम गंजों से इस कदर नफ़रत क्यों है। आपके पास गाड़ी है, फ्लॅट है, बँक बैलेन्स है, अच्छी सूरत है, लेकिन अगर आप गंजे हैं तो वह आप के ड्रायवर से शादी करने पर तैयार हो जायगी, लेकिन आप से नहीं!

शुरू शुरू में मुझे इसका अन्दाज़ा नहीं था। जवान था। जहाँ भर की आसाईशें मयस्सर थीं, इस लिए बेफिक्र था। लेकिन जब उम्र के अट्ठाईस साल पूरे होने को

अनुक्रमणिका

आए और कहीं शादी की बात पक्की नहीं हुई, तो ज़रा सा परेशान हुआ ! माँ बाप ने कई जगह बात छेड़ी लेकिन यह छेड़छाड़ कुछ अरसे के बाद खत्म हो जाती । माँ-बाप दबी जबान से सरगोशी (कानाफूसी) करते और मेरी तरफ इस हसरत भरी नज़र से देखते कि जैसे आदमी तीसरे दर्जे के दिक़ के मरीज़ को देखता है। फिर जब माँ बाप मर गये तो बादिले ना ख्वास्ता खुद छेड़ छाड़ शुरू की। नतीजा वही, सिफ़र। शुरू की दो तीन मुलाक़ातें बड़ी अच्छी रहतीं थीं। लड़की दिलचस्पी का इज़हार करती। दिलचस्पी बढते बढते कशिश तक पहुँच जाती। नीम बाज़ निगाहों से पैग़ाम मिलने भी शुरू हो जाते। अन्दाज़े गुफ्तगू आप से तुम और तुम से डार्लिंग, पर आ जाता। लेकिन जिस दिन सिर से टोपी उतरती और एक दिन उसे उतरना ही है क्यों कि इश्क़ और गंज छिपाए नहीं छिपते। एक रोज़ ज़ाहिर हो जाते हैं। उस रोज के बाद से लड़की की दिलचस्पी मुझ में खत्म हो जाती उसके बाद वह मुझसे कभी न मिलती। कुछ अरसे के बाद मुझे खबर मिलती उस कत्ताल ए आलम ने एक मर्दुवे से शादी कर ली है। जो न मेरी तरह खूबसूरत है, अमीर है न सरकारी मुलाजिम है। बल्कि किसी तीसरे दर्जे के अखबार में चौथे दर्जे का एडिटर है। बैंक का अकाऊण्ट खाली है, मगर सिर बालों से जरूर भरा हुआ है।

मैंने कई औरतों को देखा हैं कि मर्दों के बालों का जिक्र करते हुए उनपर हैजानी कैफियत बल्कि हिजयानी कैफियत तारी हो जाती हैं। 'हाय री, कल उस नुमाईश में मैं ने एक आदमी को देखा, किस कदर खूबसूरत बाल थे उसके, स्याह और घने और घुंघराले और लम्बे। हाय री, मैं तो मर मिटी उसपर। जी चाहता था उसे अपने पास बुलाकर उसके सीने पर अपना सिर रख दूँ।' ऐसी औरतों के गुफ्तगू सुनकर हमेशा यह खयाल आ जाता है कि अगर उनकी शादी किसी आदमी के बजाए बन-मानस या गोरेला से कर दी जाए तो वे बहुत खुश रहेंगी !

बालों की इस गैर मामूली परस्तिश (पूजा) का असर यह हुआ कि बालोंवाले हज़रात बाव वेज़ा इतराने लगे हैं। मेरे एक दोस्त हैं। बम्बई में रहते हैं। कद चूहे का सा। शक्ल भी चूहे की सी, चाल भी वैसी, सडक पर इस तरह घबराए हुए चलते हैं कि अभी खटका हुआ और आप भागकर किसी बिल में घुस जाएँगे। मगर लडकियाँ हैं कि हमेशा उन्हें घेरे रहती हैं। क्योंकि उनके सिर पर बाल है और बेहद घने हैं।

और यह तो मैं ने भी देखा है। वाकई उनके सिर पर बाल इतने घने और घुँगरियाले हैं कि इन्तिहाई गरमी के दिनों में भी सूरज की किरनें उनकी खोपडी तक नहीं पहुँच सकती। बरसात के दिनों में मानसून की तेज हवाएँ भी बस उनके बालों की ऊपर की सतह को गीला करती हुई गुज़र जाती हैं। नीचे का हिस्सा हमेशा सूखा रहता हैं।

चुनाँचे इन साहब ने गरमियों में कभी छतरी इस्तेमाल नहीं की। बरसात में कभी रेनकोट नहीं खरीदा। कहते हैं मुझे इन चीजों की जरूरत ही नहीं कि कंघी के बजाय फर्श धोने का ब्रश इस्तेमाल करते हैं, तेल के बजाय तारकोल लगाते हैं, कि इस से कम सक़ामत का तेल उनपर कोई असर ही नहीं कर सकता !

एक दफा ये एक हजाम से बाल कटवा रहे जे, बदकिस्मती से हजाम उनके बाल में कैंची रखकर भूल गया। उसके बाद उस बेचारा ने हजार बार इधर उधर टटोला मगर कैंची कहीं न मिली। मेज पर देखा, कुर्सी के नीचे देखा, कैंची कहीं न मिली। फिर कुछ शुबह हुआ वह उन्हें उठा कर थाने ले गया, वहाँ उन जरत की जामा-तलाशी हुई। मगर कैंची कहीं से दस्तयाब न हुई। घर आ कर इन हजरत ने बडे तमतराक से कैंची अपने बालों से निकाल कर मेज पर रख दी। वह कैंची आजतक उनके मेण्टल पीस की ज़ीनत है। ब्राजील के जंगलों की तरह उनके बालों के मुतअल्लिक भी आज तक पता न चल सका कि उन में किस तरह के हशरातुल-अर्ज पाये जाते हैं। बहुत से हजामों ने तहका करने की कोशिश की मगर आज तक कोई हजाम उनकी खोपड़ी तक नहीं पहुँच सका, दुनिया को फिर से एक नये तेन-सिंग की तलाश हैं। तीन शादियाँ कर चुके हैं' चौथी की फिक्र में हैं या चौथी उनकी फिक्र में हैं। मगर हम अभी तक कुँवारे हैं !

एक और साहब हैं। बदकिस्मती से ये भी बम्बई में रहते हैं। बहुत बडे शायर हैं। उनके बाल घुंगराले तो नहीं मगर बेहद लम्बे, बेहद काले, बेहद चमकीले। यह अपने बाल हमेशा बढ़ाये रखते हैं और अगर कभी नई बीवी के इसरार पर हजाम के पास जाते हैं तो चेहरे से ऐसी अजियत का इजहार करते हैं जैसे बाल नहीं कटवा रहे हैं, गले का ऑपरेशन करवा रहे है। मुशाएरे में शअर पढ़ेंगे और अपने बालों में उंगलियाँ फेरेंगे, देखनेवाले को मालूम होता है कि मिसरे इनके ज़िहन में नहीं इनके बालों में अटके हुए हैं। औरतों में भी मक़बूल है, गो मुझे आजतक यह पता न चल सका कि उनकी मक़बूलियत का राज़ क्या हैं, उनके बाल या उनके शअर। अब गंजे हो जायें तो कुछ पता चले।

मर्द तो इस मर्ज में मुबतिला थे ही। मगर औरतें भी इस से मुबर्रा नहीं। हालाँकि यह ज़माना ज़्यादह बालों का नहीं, कम बालों का है। आजकल मगरिब से जो भी नया फैशन निकलता है उस में ज़्यादह से ज़्यादह बाल काट कर कम से कम बाल सिर पर रहने दिये जाते हैं। मैं समझता हूँ कि मगरिब की मौजूदा तरक्की का राज भी यह है। इसी लिए अकवामे यूरोप दुनियाँ की दीगर अकवाम के मुकाबले में ज्यादह तरक्कीयाफ्ता समझी जाती है। मगर जाने हमारी मश्रकी औरतों को कब अक्ल आएगी। आजकल जिस औरत को देखिए, मोर के पंख की तरह अपना चोटा फैलाए हुए है। जिस औरत को देखिए उस के बाल कमर तक फैले हुए हैं। इस से पहले फैले हुए बाल और जुल्फेदराज का तजकिरा सिर्फ शाएरी में मिलता था। आज आप इसे हर सड़क के मोड़ पर हर गली के नुक्कड़ पर देख सकते हैं। गो मुझे शुबह है कि इन औरतों के बाल असली नहीं हैं। मेरा खयाल है कि आज कल की औरतों के जो बाल आप कमर तक बल्कि घुटनों तक उतरे हुए देखते हैं, इस में कार-खान ए कुदरत (निसर्ग) को इतना दखल नहीं है जिस कदर घोडों के बालों को और

लदाखी बकरियों की ऊन को है। मेरा अन्दाजा है कि आजकल की माडर्न मश्र की औरत जितने नकली बाल इस्तेमाल करती है उन्हें अगर उस के जोड़े और चोटी से अलग कर दिया जाए तो सर्दियों के लिए एक अच्छा खासा स्वेटर तैयार हो सकता है। और हमारे पाँच साला ना प्लान में एक नई सनअत का आग़ाज हो सकता है।

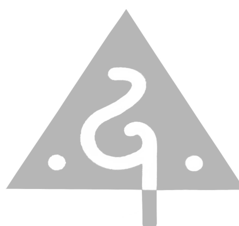
मेरा तअल्लुक चूँकि अफादी अरब से है इस लिए मैं किसी ऐसी शय को नहीं गरदानता जिसमें मुझे कोइ मक़सद या फायदा नजर न आये। औरतों को तो तज्ईन व आराईश की हर वक्त जरूरत महसूस होती है इस लिए वह तो ठीक है लेकिन ये मर्द काहे को इतने बाल बढ़ा लेते हैं, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। बखिलाफ़ इस के आप गंजे होने के फायदे मुझ से पूछिए। मुझसे क्या पूछिए अजी साहब किसी भी गंजे से पूछिए। मालूम होगा हम सब लोग एक ही यूनिवर्सिटी से पढ़कर निकले हैं।

गंजे सिर में सब से बड़ी बात यह है कि सिर गंजा आदमी चलता फिरता बेरामिटर होता है। मौसमियात के सरकारी महकमे के सायन्सदान मौसम की ग़लत पेशीनगोई कर सकते हैं मगर गंजा आदमी ऐसी गलती कभी नहीं कर सकता। क्यों कि उसकी गंजी चँदया मौसम के खफीफ से खफीफ और नाजुक से नाजुक तगय्युर व तबद्दुल का पता देती है। सर्दी हो, गर्मी बहार, बरसात हो, सूरज की पहली किरण और बारिश की पहली बून्द, गँजे सिर पर अपना असर दिखाती है।

अगर आप ज़वान है तो बूढों में नहीं बैठ सकते। थोड़ी देर के बाद वे आपको इस हकारत से देखेंगे या इस शफक़त से आपको हुक्का भरने को कहेंगे कि आप खुद-ब-खुद ही महफिल छोडकर चले जाएँगे। लेकिन अगर आप गंजे हैं तो ऐसा कभी नहीं हो सकता, दुनिया के सारे बूढे दानिशवरों की महफिलों क दरवाज़े आपके लिए खुले है। बस इतना काफी हैं कि आप सन्जीदारू बल्कि तुर्शरू हो के और सिर जरा नीचा करके झुक के इस तरह बैठ जाएँ कि आपका गंजा सिर हर एक को नजर आता रहे। उसके बाद आप उनके बराबर बल्कि उन से बढ चढ़कर कहाँ सकते हैं, और चन्द घण्टों के बाद कहीं आपने सारी बहस सुन कर जो सिर्फ़ एक यह फिक़रा कह दिया, "मगर वह जो अफलातून ने अपनी किताब बुकरातिहत में सुकरात के बारे में तौजीहात की हैं, उन से वाहियात व नबातात का कुछ पता नहीं चलता।" तो सारे बूढे एकदम गश खाकर गिर जाएँगे और मुमकिन है होश में आने के बाद खुद आप के लिए हुक्का भर के ले आएँ। और यह सब कुछ गंजेपन का तुफ़ैल होगा।

और यह बात तो सब जानते हैं कि नाश्ते के वक्त गंजे सिर से अण्डे तोडने का काम लिया जा सकता है बल्कि मुमकिन का तजरुबा है कि अगर अण्डा नीम ब्रुश्त हो तो भी चँदया एक उमदा प्लेट का काम दे सकती है। और मैं ने तो बडे बडे वफादरी किस्म के





गंज़ों को अपने सिर से बादाम और अखरूट तक तोडते देखा है। पहलवान इसीलिए सिर घुटाते हैं कि मुखालिफ पहलवान का सिर तोडने में आसानी हो। कई बालोंवाला आज-तक अजीम पहलवान नहीं हो सका। न सिर्फ जहनी तौर पर बल्कि जिस्मानी तौर पर भी अजमत का राज़ गंजेपन में है।

कहाँ तक गिनवाऊँ। दर असल गंजेपन के फायदे जाती तजरुबे से हासिल होते हैं। गंजे हो जाइए, फिर देखिए इस के नित नए फायदे अपने इसरार व रमूज़ को खोलते हुए आप के जहन पर आशकार होते जाएँगे। समझाने के लिए एक मिसाल देता हूँ। मिसाल भी है, एक कहानी भी है और इब्रत भी है।

एक दफा का जिक्र है, मैं और ख्वाज़ा अहमद अब्बास रेल में सफर कर रहे थे, किसी अदबी कॉन्फरेन्स में शिरकत के लिए जा रहे थे, रातभर का सफर था, इसलिए बडे मजे में तरक्की पसन्द अदब और फ़ने अफ़साना निगारी पर बहस होती रही, मैं बोलता रहा और वे टाइप करते रहे –(अब्बास ने अपने अक्सर अफसाने इस तरह लिखे हैं)– इस तरह बातों ही बातों में सुबह हो गई, जहाँ जाना था वह शहर अब करीब आ रहा था, इसलिए हम दोनों ने सोचा कि चलो जल्दी से शेव करके कपड़े बदल लिए जाएँ। चुनाँचे मैंने जल्दी से शेव का सामान निकाला इतने में क्या देखता हूँ कि आईना गायब है। मैं ने घबरा कर अब्बास से आईना माँगा, तो उसने जब बॅग टटोला तो वहाँ भी आईना नदारद। हम दोनों में से कोई भी आईना न लाया था, (गंजे होने के बाद आईने से नफरत हो जाती है यह एक नफासियाती अमर है, जिसकी तशरीह यहाँ मुनासिब नहीं।)

अब शेव कैसे बनाएँ, मैं ने भाग कर बाथ रूम में गया इत्तेफ़ाक से वहाँ का आईना बी टूटा हुआ था, अब क्या करूं ?

एकाएक बिजली की सी सुरअत से मेरे दिल में एक खयाल आया। मैं ने अब्बास से कहा जरा करीब तो आइयो। वह बेचारा उठ कर मेरे सामने बैठ गया। मैंने उसके सिर को घुमा कर झुका के उसकी चँदवा को बिलकुल अपने चेहरे के सामने कर लिया और बड़े आराम से शेव बना ली।

उसके बाद उसने भी मेरे सिर से यही सुलूक किया। जब हमें एहसास हुआ कि हमारा गंजा सिर गंजेम आनी के अलावा कुछ और भी है।

तो कहने का मतलब यह है कि यह और इस तरह के दीगर फवाइद यहाँ बयान नहीं किए जा सकते। मौका पडने पर खुद ब खुद इलहाय की तरह नाजिल होते रहते हैं।

मगर साहब फायदे लाख हों। एक नुकसान ऐसा भी है कि सब पर हावी हे। और वह यह कि मुद्दई लाख चाहे उसकी शादी नहीं हो सकती। जबतक वह गंजा ऐसी शय है जो आ के कभी नहीं जाती, दुनिया में तमाम चीजें ऐसी हैं, जो जमाने के साथ घटती बढती रहती हैं; मगर गंज ऐसा है कि हमेशा बढता ही रहता है। पहले साल चान्दी की अशरफी चुनता है, दूसरे साल बढकर हतकडी के हलके चुनता है, तीसरे साल नखशब का चाँद हो जाता है, जो न कभी शक होता है, न हिलाल की सूरत में तबदील होता है। कोई भी दवा लगाइए कुछ भी फायदा न होगा, मरज बढता गया ज्यों ज्यों दवा की।

किसी तरह से भी देखिये शादी और गंजका गहरा तअलुक है, कुछ लोगों की शादी इसलिए नहीं होती क्योंकि वे गंजे होते हैं। कुछ लोग इसलिए गंजे हो जाते है क्योंकि शादी हो जाती है। तअल्लुक हमेशा बाकी रहता हैं। हाँ तो जिक्र मेरे कुंवारे पन का था।

तो साहब जब, उम्र के चालीस साल हो गए और मेरी शादी न हुई तो मैं बहुत परेशान हो गया और घबरा कर एक आमील के पास गया।

आमील बहुत सियाना था, उसने बड़े गौर से मेरी राम कहानी सुनी फिर बडी शफ़क़त से मेरे कन्धे पर हाथ रखा और मुझ से कहा अजीजेमन मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता, शादी के मामले में मैं किसी गंजे आदमी को तावीज़ नहीं देता, यह अमल–रमल तुम्हारे सिलसिले में सब बेकार है। गंजे आदमी के मामले में औरत पर इस्मे आज़म का जादू नहीं चलता।

मैं ने गिडगिड़ा कर कहा, "ऐ पीर नेक सूरत, मुस्तबा सीरत, अब बता मैं क्या करू कैसे शादी करूँ ?"

"बच्चा तू सीधा 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के दफ्तर चला जा, और शादियों के कालम में एक अर्जी दाग़ दे—ज़रूरत है, एक औरत की, जवान हो या बूढी, काली हो या गोरी मुतमव्वील हो या मुफ़लिस, खान्दान, कौम, दहेज़, उम्र तक की कोई केद मत लगाइयो और फिर हाथ पर हाथ रखकर इन्तिजार कीजियो, अल्लाह मदद देगा, अल्लाह बडा कारसाज़ है बस यह दुनियाँ एक दग़ाबाज़ है।"

यह कह कर आमिल ने आँखे बन्द की और मुराकिबे में खो गये। मैं उनके घुटनों को हाथ लगा कर रुख़सत होनेवाला था कि आवाज़ आई,

"पाँच रुपिये रखता जा।"

आमिल की हथेली खुली थी।

मेरी अर्जी के जवाब में कोई दो सौ दर-ख्वास्ते आईं, खुशी के मारे मेरी बाँछें और बत्तीसी दोनों खिल गईं, खिला पडता था, दर असल यह मेरी ग़लती थी। आज कल की शादियाँ, न इश्क से सर अन्जाम पाती है, न माँ बाप की मर्जी से, आज कल दोनों तरफ इश्तेहार दिया जाते हैं, दोनों तरफ से लड़के लड़की का नाक–नक्शा, जात–गोत,

खान्दान (अगर कोई होतो), बिरादरी सरकारी मुलाजिमत, बैंक बैलेन्स सब कुछ एक एक पंच सालाना प्लान की तरह पास कराया जाता है और सब बातें साफ़ साफ़ कारोबारी अन्दाज में तय कर ली जाती हैं कि मालूम होता है आप शादी नहीं कर रहे हैं अलबत्ता बकरी खरीद रहे हैं।

इसके बाद दोनों फरीकैन की तसल्ली हो जाती है तो शादी की तारीख मुकर्रर कर दी जाती है।

इसके बाद वही तमाम रस्में अदा कर दी जाती हैं,—बारात, सहेरा, मेहेन्दी, मौलवी की निकाह खानी, पंडित की लग्न तरांनी वगैरह वगैरह...!

इसके बाद बीबी को मियाँ और मियाँ को बीबी मिल जाती है, खस कम—मेरा मतलब है देर आएद—बहरहाल बुजुर्गो से पूछना पड़ेगा, इस मौके के लिये कौन सी कहावत मौज़ूं रहेगी ?

मैं समझता हूँ इश्तेहारी शादियों का यह सिलसिला इसी तरह जारी रहा तो कुछ अरसे के बाद ये बीच की रसूमात बरात, ब्याह, सहेरा वगैरे भी फरूआत करार दे कर खत्म कर दी जाएगी, और उसके बाद बड़ी आसानी हो जाएगी, इधर आपने अखबार में इश्तेहार दिया और सब कुछ तय कर के पोस्टल आर्डर भेज दिया, उधर से एक बीबी लकड़ी के बक्से में बन्द पॅक हो के आप के घर पहुँच गई, छुट्टी !

मैं समझता हूँ अगर हमारे वक्तों में ऐसा हो जाता तो कम अज कम मेरी जिन्दगी में वह अलमया न आता जिसका मैं अब जिक्र करूँगा।

हुआ यह कि मैं दो सौ दरख्वास्तों में से हिन्दू—मुसलमानों को तो अलग कर दिया कि यह दोनों कदीमत परास्त कौमें हैं, उनसे किसी गंजे की नहीं निभ सकती, यह मैं ने सोचा और अपनी दानिस्त में ठीक सोचा कि मुझे शरीके हयात के लिए ऐसे फ़र्द की ज़रूरत है जो जरा आज़ाद खयाल हो, जो खुद बाल कटाती हो, ऐसी लड़की पहले ज़रूर मेरे गंजेपन पर नाक भौं चढ़ाएगी मगर बाद में आहिस्ता आहिस्ता मानूस हो जाएगी। जो औरत बालों की मुफ़ारिकत एक हद तक बरदाश्त कर सकती है, वह एक न एक दिन बालों की मुकम्मल मुफ़ारिकत की भी आदी हो सकती है।

यही सोच समझकर मैं ने मिस् बारूदवाला का इन्तिखाब किया। बाल कटे हुए, चेहरा मुसब्बस्म, रंग खुलता हुआ, दुख्तरे पारसी, घर की वाहिद चश्मो चिराग़, दो लाख की बायदाद उसके बाप के मरने के बाद मेरे हिस्से में आएगी। इन तमाम बातों ने मिल मिला के किरआफाल मिस् बारूदवाला के नाम डाल दिया, लड़की भी आई और दौलत भी आए, यानी पाँचों उँगलियाँ घी में और सिर कड़ाही में (मालूम नहीं गंजे सिर का कड़ाही में क्या हाल होता होगा !)

शादी बड़े आराम से सिविल मॅरेज़ एक्ट के तिहत सर अन्जाम पाई। वह तो ठीक ही हुआ, क्योंकि सुना है इस किस्म की शादियों में बड़ा गुल गपाड़ा होता है। दूल्हा की पगड़ी खुल जाती है, टोपी उतारी जाती है जाने ऐन मौके पर क्या हो जाए, वह तो जानिए बड़ी खैरियत गुज़री फिर भी मैं ने एहतियातन हालीवुड से एक उमदा विग मँगा के पहन ली थी, कम अज कम दो चार दिन तक तो भरम नहीं खुलेगा, बड़ी उमदा विग थी। पीछे के तरफ गिरे हुए सियाह बाल ज़रा ज़रा से घुंघरियाले अजीब बहार देते थे। पहन कर ऐसा मालूम होता था जैसे मैं कभी गंजा ही न था।

शबे उरूस में जब राज़ोनियाज़ की बातें होने लगीं तो मेरी बीबी यानी साबिक मिस बारूदवाला मेरे गले से लग कर और उंगलियाँ फेरते हुए बोली, "डार्लिंग, तुम कितने खूबसूरत हो, तुम्हारे बाल, आह ! यह पीछे को गिरे हुए प्यारे प्यारे सियाह बाल कितने उमदा मालूम होते हैं।" मैं खामोश रहा। कहता भी क्या ?

जब अच्छी तरह तारीफ़ कर चुकी तो बोली, तुम से एक राज की बात कहती हूँ।

"मै बिलकुल दौलतमन्द नहीं हूँ। मिस्टर बारूदवाला मेरे बाप नहीं, चचा हैं। वह दो लाख के ख्वाब न देखो। वह न मेरे न हिस्से में आएँगे वह तो मेरे चचा के लड़कों में तकसीम हो जाएँगे।"

मुझे किसीने सातवें मंजिल से उठा कर नीचे डाल दिया हो। अच्छा तो मुझ से यह चालाकी बरती गई। और यह और शीरीन बयानी से धोके परे पर्दा उठा रही थी। जैसे कुछ हुआ ही न हो। बिल्ली !

"मैं तुम्हें शादी से पहले बता देती मगर मैं तो तुम्हारा फोटो देख कर रीझ गई थी। हाय यह खूबसूरत रेशमी बाल यह कहाँ से मिलते ?"

मेरा जी चहा कमबख्त का गला घूँट दूँ ! फिर सोचा कमबख्त को किसी न किसी तरह मजा चखाना चाहिए, मैं ने बड़े प्यार से उसकी बलाएँ ले के कहा। "डार्लिंग एक राज़ की बात मैं भी तुम से कहता हूँ।"

"कहो, वह बड़े प्यार से मेरे बालों को चूमते हुए बोली, कहो मेरी जान !"

मैंने अपने आपको उससे छुड़ाके अपने सिर से विग उतारते हुए कहा, "डार्लिंग देख लो, एक धोखा मैंने भी तुम से किया है, मैं बिलकुल गंजा हूँ।"

अब मैं बहुत खुश था।

क्यों कि मेरे गंजे सिर को देखकर वह बिलकुल सटपटा गई, कुछ देर तक वह बिलकुल सन्नाटे में रही ऐसा मालूम होता था जैसे उसका दिमाग़ काम नहीं कर रहा है। उसके बाद वह एकाएक जोर जोर से हँसने लगी, जोर से कह कहा मार के दोहरी होती गई।

मैं बड़ा चकराया यह क्या माजरा है।

मैंने जरा शरमिन्दा हो के कहा इस में हँसने की क्या बात है, बस एक जरा गंजा हूँ वरना दुनिया में हजारों ऐसे आदमी हैं...

वह मेरी बात काटकर बोली, "नहीं यह बात नहीं है–मगर–डार्लिंग ..हा हा हा ...अरे, मैं हँसते हँसते मर जाऊँगी।"

उसके बाद वह फिर अपना फिकरा पूरा किए बगैर जोर जोर से हँसने लगी।

अब मुझे गुस्सा आ गया। मैंने उसे दोनों शानों से पकड़ कर ज़ोर ज़ोर से झंझोड़ा, "क्या बात है, जो मुझ पर इस तरह हँस रही हो।"

मेरे ज़ोर ज़ोर से झंझोड़ ने से एकाएक उसके सिर पर से कपड़ा उतर गया और मैं ने हैरत से चीख मार के देखा मिस बारूदवाला भी बिलकुल गंजी थीं।

● ●

अकुलीना : प्रदीर्घ प्रीतिकथा : **शेष भाग** : पृ. १६० से आगे शुरू

यह वही चेहरा है, जिसे देखकर जमाने से पहले मैं बावला बना था। इस चेहरे के नाज़ से दंग हो कर मैं ने उसे चूमना चाहा था, और चूमा था। वह लालच, अब कहाँ? वह रौनक अब कहाँ? कहाँ है वह सारा ऐब?

मैं ने सुरंगा की ओर देखा। उसकी आँखें भी मेरी ओर एक टकी साधी देखती थीं। उस के घने कुन्तल विरल दिखते थे। आँखों को आवर्त बन काली रेखा ने वर्तुल की परीधि खींची थी। मुलायम कान्ति जीर्ण-शीर्ण शुष्क बनी थी। और मैं...? मैं दस सालों से पहले जैसा था लगभग उसी तरह का था। कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ था। मैं उसी तरह की तंदुरस्ती को लिए था, चौड़ाई और शान को दिखाने वाला — रुआबदार! आज कामयाब रईस बना था! वह मुझे पहचान न सकेगी ऐसा कोई विशेष परिवर्तन मुझ में नहीं बना था। वह गर्त में लेटी थी। वह कीचड में फँसी थी। वह बदबू में सड़ रही थी। सुरंगा!...:मैं सभ्यता और वैभव की देहली को पार कर काफी आगे बढा था। जीवन की उमंगें पूरी हो चुकी। वह? पतझर से सूखी बनी; सब अरमान जल जाने की वजह स्याह बनी, कंगाल और मरीज़ बनी — यह था उसका वैभव! यही थी उस की ऐक! मैं उसको जीवन देनेवाला मनुष्य था, तब भी उसने वह मौक़ा मुझे दिया था, अब भी अलग ढँग से अलग मौक़ा मुझे दे रही थी। विचित्र विस्मय की कहानी है, लेकिन है सही! भाग्य का यह क्रूर खेल!

मैं ने देखने से पहले ही उसने मुझे देखा था। एक टकी बाँधकर पलकों को झेंपने का विश्राम न देते हुए उसकी आँखें मुझे देख रही थीं। आँखें क्या, थी वह? नहीं। कहाँ थी, उन में वह प्रभा जो ज़माने से पहले देखनेवाले को मचलाती थी। इन आँखों में रोशनी नहीं थी, सीने को बावला बनाने की नोंक उन में कहाँ थी, जो जमाने से पहले मुझे जगाए रखती थीं! आँखें पथरायी हुई थी। उनमें कोई भी भाव नहीं था। न उन में वेदना थी, न उन में क्षोभ था, उन में पश्चात्ताप था, ना पक्षाताप की हँसी थी। मैं चकराए जा रहा था; मैं ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया।.... कई बार इसी हाथ को अपने हाथों में लिया था, अलग अलग बहाने से! दस साल बीत चुके थे। दस सालों के बाद मैं ने उसका हाथ अपने हाथों में लिया, और वह हँसी—! एक मामूली हँसी उसने बिखेर दी। पहचान का निशाना उसने नहीं दिखाया! शब्द सुप्त बने थे, जाने कहाँ मौन साध कर उन्होंने चुप्पी साधी थी। वह हँसी-जिस में मर्यादा का, सभ्यता का, कुलीनता का भण्डा फोड़ था।... बेशर्मी और बेहयायी से भरी वह हँसी...।

उस दिन का मेरा काम कब और कैसे समाप्त हुआ उसे मैं ठीक तरह से कह नहीं सकता! तंद्रा की स्थिति थी वह! मैं होश में था, लेकिन बेहोशी में कदमों के डग बढाता था; करनेके लिए कुछ करता-जाता था! चलने के दौरान में मैं ने एक तिरछी सरसरी नज़र दौड़ा कर सुरंगा को देखा। परिस्थिति की ठोकरों ने जिसे बुरी तरह घायल बनाया है, वह भाव उसकी नजर में ठूँस ठूँस कर भरे थे। ऐसी नजर क्या माँगेगी? ऐसी नजर किस एतराज़ का ऐलान करेगी? वह बेभाव से विवर्ण स्थिति में फैली थी! लेकिन मैं ने अब देखा तब नीरव शान्तता से बहुत कुछ कहने की कोशिश कर के परास्त बनी, हार से कुछ-कहने की चाह खोई धारा आँसू बह रही थी। आँसू जिन में वेदना नहीं थी, एक विस्मयकारी घोर प्रतिक्रिया थी।

क्या कहूँ? कहने लायक बहुत कुछ हैं। लेकिन फिर भी कहूँ! कहने लायक बहुत कुछ हैं, लेकिन मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं हैं! इसलिए यह रोना वीरान हैं, ये रोना बौना है। शायद उसके आँसू यही कहते हों?

खोया, खोया बनकर मैं अपने वार्ड में से बाहर निकला। होश नहीं था, बेहोशी में चल रहा था। सार्वजानिक अस्पताल के बिछौने पर सुरंगा सोई हुई थी। इस बिछौने का कइयोंने उपयोग किया था। ऐसे इस बिछौने पर खोयी खोयी लेटी सुरंगा की छवि आँखों के सामने नाचती थी। वही प्रतिमा, मेरे चारों ओर थिरक थिरक कर मँडरा रही थी! नाम: सुरंगा शिरोडकर, कहान टेस्ट... प्लस सिक्स... वासरमन... प्लस सिक्स... टेम्परेचर एक सौ दो; बिछौना: खटिया नम्बर बारह,... नाम सुरंगा शिरोडकर...!

—गोपाल! गोपाल! क्या कहूँ? बचाओ! क्या कहूँ? मैं ने उसको मिटा दिया! खिलनेवाली मासूम कली की भाँति वह हँसी, चमक और खूबसूरती से सुहानी दिखती थी! अकलंकित और उत्फुल्लित उसे मैं ने पूनम की चाँदनी में नहलाते देखा था! संसार का सारा रूप वैभव उसके पास तब था, जब मैं ने उसे देखा था। अपने भाग्य के साथ वह सम्पूर्ण शक्ति लगाकर टक्कर लेती थी। विधि लेखा के अनुसार किसी ने उस पर कमीने पन का जो पहाड़ रचा था, उसके खिलाफ़ झगडा करते हुए मैं ने देखा था। लेकिन कोई नतीजा निकलता नहीं है, संसार में उस के लिए बँधा-बँधा रास्ता हट नहीं सकता है! इस लिए रोते-बिलखते भी मैं ने देखा था। जिस सड़ी दुनियाँ से वह बाहर आना चाहती थी। उस दुनियाँ की फटकारों से लाचार बनी, वह जब मुझ से रक्षा की भीख मिन्नत कर कर माँग रही थी, तब मैं ने उसे देखा था। गोपाल! तब मैं ने उसे किसी भी तरह से ऊपर उठने का अवकाश पाने के लिए सहारा नहीं दिया। कितनी विवश होकर वह मेरी सहायता की याचना करती थी...वह दिन, वह रोना, वह मिन्नतें...! मैं ने चाहे, उस सब कुछ देने के मोल को पूरा कर के भी वह मुझे माँगती थी कि इस कीचड में मैं रहना नहीं चाहती।... वह क्या माँगती थी? सिर्फ़ गन्दगी सड़न और बदबू से दूर जाना... माँग मामूली थी; लेकिन मैंने तब भी उसे इन्कार दिया। हाँ! आज सुरंगा हँसती थी, एक अज़ीब मसखरे भाव से हँसती थी। लेकिन मैं ने उस समय वहशी बनकर उस से अनसुनी की थी और उसे कीचड में ज्यादह गहराई तक ढकेल दिया। यह खाई बड़ी गहरी थी, और मैंने दिया हुआ वह तमाचा बड़ा सख्त था। गोपाल, काश! वह प्रहार मैं...

भलाई का रास्ता खोजने के लिए किस कशमकश से यह कोशिश करती थी, उस समय जानबूझकर गिरावट की खाई में फरेबी से

ढकेल देने के लिए मैं ने उसको हाथ दिया। उस समय सहायता के लिए बहाना दिखाया। लेकिन असली मतलब था उसे मौत के रास्ते की राहगीर बनाना; उस समय उसकी आँखों में आँसू थे। जो मेरी बहाने की नकलबाजी को जाँच करने के लिए निकले थे। आज मैं ने उसका हाथ हाथों में ले लिया और इस समय वह हँसी... शराफत का खोखलीपन समझ लिया है, इस बहाने से। यह बेहया हँसी।

—बेहया, बेशर्मी ? हाँ, हो सकती है। निठुर नियति दर एक को कुछ न कुछ सबक सिखाती है, और इसलिए किसी का बेहया, बेशर्म, वहशी, फरेबी, जेबकतरा होना मुमकिन है। सुरंगा बेहया और बेशर्म बनी भी होगी! मन मर गया तब मनुष्य का हाल और क्या होता है? उसने ऐसे लाखों कड़े वार सहे होंगे कि मैं ने दी हुई पहली फटकार को उसने याद भी कहाँ रखा होगा? अजीब बात है, मैं भी उसे भूल गया था। हाँ, अगर बेखबरी से उसको याद भी किया होगा तो सिर्फ़ अपनी चालाकी और पुरुष का बड़प्पन साबित करने के लिए!

इस तरह यादगारें खो बैठने का अपराध मुझे छोड़कर दूसरे नहीं करते होंगे! अरे भाई, करते हैं, लेकिन वे उसे गुनाह—अपनी भूल नहीं मानते! यही तो अजीब अचम्भे की बात है। सुरंगा भी इस अपराध को भूल गयी होगी। जिस तरह मैं भी उसे भूल गया था! उसकी वह हँसी वही कहती थी। बहुत कुछ कहती थी, उसकी वह हँसी! अजीब हँसी थी वह...!'फूस...फूस' की आवाज़वाली! कोई खास मतलब मैं नहीं देखता हूँ, कि जिसके बदौलत वह मेरी याद दिल को खलल पहुँचानेवाला किस्सा इस तौर पर याद करें! खलल की कोई हस्ती नहीं है। सच कहना हो तो काँटे, चुभन, कसक, कराहे, सदमे, गम, लातें, ठोकरे, इसके सिवा उसकी जिन्दगी में और कौनसी कोई बात ?

इन्हीं बातों से हर सवेरा मसोसते जागता होगा और हर रात बिलखती रोती होगी। इन का रोना भी कबतक मनाती बैठी होगी बेचारी सुरंगा ? इसलिए उस मामूली खलल पहुँचाने वाली बात को वह कब की भूल गयी होगी... उसकी कोई हस्ती नहीं।

उसका मन भी उन बहनेवाले बेजबान आँसुओं से यही कहता होगा।

गोपाल! कितने सिमटे हुए जीते हैं हम। स्वार्थी है, यह मेरा मन! कितना क्रूर है, कितना डरपोक है यह भूला–भटकनेवाला मेरा मन! उस समय भी अपनी खुशी और अपनी ही चैन की ढूँढ़ढाँढ करता था। हँसोगे तुम, लेकिन क्या करूँ, मेरा मन इसी कल्पना में सुख मानता था कि सुरंगा बेहया बनी होगी, मेरे जैसी ही वह बेशर्म बनी होगी!

और दिन ढलने लगा। शाम हो चुकी और मैं ने समाचार सुना कि बारह नम्बर की खटिया के बीमार मरीज़ ने तीसरे माले पर से कूदी लगा कर खुदखुशी की है।

गोपाल! सुरंगा ने अपने को मार डाला। 'आत्मघात' कहा जाता है, ऐसे काम को! दुनियाँ इसी शब्द के लिये 'आत्महत्या' 'प्राणत्याग' इन शब्दों को भी कहती हैं लेकिन क्या मैं भी वही कहूँ—!' उसने आत्मघात किया उस समय मैंने दी हुई क्रीम रंग की बँगलोरी साड़ी को उसने पहना था। मैं ने आज सवेरे उसे देखा था, और इसी शाम को उसने प्राण पखेरू को अपने हाथों से उड़ा दिया! उस समय उसने क्रीम रंग की बँगलोरी साड़ी पहनी थी, और उँगली में मैं ने दी हुई अँगूठी थी। मरने से पहले उसने काग़ज़ पर लिखा था: 'मेरी मृत्यु का दायित्व किसी और पर नहीं है! मैं अब जीवन से ऊब गयी हूँ, इसलिये आत्मघात कर रही हूँ।' लेकिन वह था... वह एक खून था! इस अपराध पर के लिये मुझे कौन क्षमा करेगा ?

—मधु

रूपान्तर : अमिता पानसरे

विकट कवि



तेलंगण प्रदेश की कहानी है। गाँव का नाम है तेनाली। इस गाँव में एक ब्राह्मण के यहाँ 'राम' नाम का लड़का जन्मा। यह लड़का बचपन से बड़ा शब्दप्रभु था और बातों बातों में हँसी का फव्वारा पैदा करना उसके बाएँ हाथ का खेल था। वह बड़ा ही विचक्षण था। एक दिन सौभाग्यवशात् उसके साथ एक साधु की मुलाक़ात हुई। साधु उसकी बुद्धि की विचक्षणा से प्रसन्न हुआ और उसने राम को दीक्षा देकर कालीमाता की उपासना करने को कहा!

समय गुजरता गया, अपनी रफ्तार से! एक दिन रात को कालीमाता के सामने राम बैठा और उसने माता के नाम का जपन शुरू किया। कालीमाता प्रसन्न हुई और अपने एक सहस्र मुखों को लेकर उसके सामने अवतरित हुई। काली चाहती थी कि राम डर जाएँ।

लेकिन डर के मारे सहमने के बजाय उसने जोर जोरसे हँसना शुरू किया। देवी को आश्चर्य लगा और उसने डाँट से पूछा :

"लड़के, क्यों हँसते हो ?"

"अगर न हँसें तो क्या रोएँ ? ये तुम्हारे एक सहस्र मस्तिष्क गिन लो! मान लो एक ही साथ इन सबों को जुकाम हुआ तो नाकों को साफ करते वक्त तुम्हारी हालत बड़ी देखने लायक होगी, सच कहता हूँ! जुकाम के दिनों में यह एक नाक मुझे कितनी सताती है, तुम क्या जानो ?"

यह सुनकर कालीमाता भी हँसी को रोक न सकी! वह तुरन्त बोल उठी,

"तुम 'विकट कवि' हो!

"जगदंबा माता! तुम भी कितनी अजीब हो! देखो तो भला. तुमने यह जो वर दिया है उसको बाएँ से पढ़ो या दाएँ से पढ़ो, वे ही अक्षर हैं—'विकटकवि'

काली माता और भी अधिक प्रसन्न हुई! उसने अनुराग व दुलार भरे शब्दों में कहा :

"तुम अपनी बुद्धि से राजदरबार को जीत लोगे! राजा के तुम विश्वास पात्र बनोगे! तुम कीर्तिवान् बनोगे!"

कालीमाता अदृश्य हुई। राम की बुद्धि की चमक दिन दूनी व रात चौगुनी गति से बढ़ने लगी। चारों दिशाएँ उस से व्याप्त बनी। वहाँ के कृष्णदेव राजा ने राम की बुद्धि की तीव्रता और परिहासी प्रवृत्ति देख कर उसे अपने दरबार में रख लिया।

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका



सपने, अरमान, खयाल,
चीढ़, डाँट, धौंस,
प्यार, नफ़रत, नाखुशी,
एतराज
से भरा खट्टा, मीठा
सुमन का—



घौंसला

— वि. स. खाण्डेकर

कालीदेवी ने जैसे ही क्लास में कदम रखा, सुमन खिड़की से बाहर झाँक कर देखने लगी। न जाने क्यों, इस मास्टरानी से उसे नफ़रत सी हो गयी थी। रह रह कर उसे लगता, कि हम लोगों के समान कभी कभी भगवान से भी ग़लती हो ही जाती है। वर्ना, कालीदेवी को वे गोरा रंग कदापि प्रदान न करते। उसने सोचा, उजले रंगवाले सभी लोग बहुत बुरे दुष्ट होते हैं। उसका भैय्या, जीजी, उसकी दीदी ये तीनों भी उजले रंगवाले हैं। और इसी से वे उसे हमेशा डाँटते फटकारते हैं। इतनी सी गलती पर 'काली छछुंदर' कहकर उसे अपमानित करते हैं। यह कह कर उसका मज़ाक उडाते हैं कि उसे तो चूनी भूसी देखकर नटनी से खरीदा है। माँ भी तो यही कहती है। क्या यह सच होगा? जरूर यह सच होगा। घर में जो है वह उसकी सगी माँ नहीं है, और इसी से तो उसपर हरदम बिगड़ती है, झल्ला पडती है। उसकी असली माँ वह नटनी—कहाँपर होगी इस वक्त? सुदूर कहीं पेट की फिराक़ में बेचारी घूमती होगी! पूना, बम्बई, दिल्ली...हाँ! रेल गाड़ी में बैठकर दिल्ली चले जाने पर माँ से उसकी ज़रूर मुलाक़ात हो सकती है। दोनों की मुलाक़ात होने पर माँ उसे अपने कलेजे से चिपका लेगी, इसे चूमेगी, उसे प्यार करेगी, "तुम्हें चिवड़ा बहुत भाता है न? यह लो, खा लो।" कहकर चिवड़े का एक पैकेट उसके हाथ में थमा देगी। पैकेट? नहीं! वह तो उसकी सचमुच की माँ है—वह तो चिवड़े से भरा कनस्टर–पूरा पीप ही उसके सामने लाकर रख देगी।

"सुमन, किधर है तुम्हारा ध्यान? वहाँ, बाहर क्या देख रही हो?" कौए की सी कर्कश, एक आवाज़ सुमन को सुनाई दी। उसने पीछे मुड़कर देखा। कालीदेवी कोई पुस्तक खोल रही थी।

अहिस्ता से झाँककर सुमन ने उस पुस्तक की ओर देखा। उसने सोचा कि उठे और मास्टरानी जी से कहे, "आज तो हमें कोई अच्छीसी कहानी सुनाईये।" कहानी सुनने में कितना आनंद आता हैं; कितनी खुशी होती है। 'चल भई कुम्हड़े, चल–चल–चल' वाली कहानी जैसी कोई दिलचस्प कहानी हम सुनेंगी। उस कुम्हड़े के भीतर, वह मक्कार बुढ़िया किस तरह मजे में छिपकर बैठी थी। परसों, माँ तरकारी के लिये कुम्हड़ा काटने लगी। कुम्हड़ा काटने के लिये उसने हाथ में छुरी उठाई ही थी, कि उसने कहा– "माँ, बिलकुल आहिस्ता से काटना। कहीं भीतर

श्री. विष्णु सखाराम खाण्डेकर : महाराष्ट्र के आदर्शवादी लेखकों की अग्रिम पंक्ति में शोभायमान होनेवाले इस कलाकार ने साहित्य के लोकप्रिय विभागों को अपनी सर्वंकष प्रतिभासे उज्ज्वल बनाया है। कथा-साहित्य में आपने कई नवीन प्रवाह निर्माण किए हैं। आपके उपन्यासों व कहानियों के अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में हो चुके हैं और हो रहे हैं। और प्रसन्नता की बात है कि मराठी भाषा के इस गौरव पुत्र की चेतना का स्वागत अन्यत्र भी प्रशंसनीय उत्साह के साथ हो रहा है।

बैठी बुढ़िया को छुरी की नोंक न लग जायें।" "पगली कहीं की।" माँ ने कहा; इसपर भैय्या, जीजी, और दीदी तीनों भी दाँत निपोरकर हँस पडे। बिलकुल बंदरों जैसे। पागल तो वे ही लोग हैं। सिर्फ़ पागल नहीं, दुष्ट भी ! आज सुबह ही की बात है : भैय्या का फौंटनपेन, कुछ लिखने के लिये उसने लिया था। सिर्फ़ पाँच पाँच पंक्तियाँ लिखने भर से क्या उस में की स्याही खत्म हो जाती ? लेकिन भैय्या कितना बुरा है ! उसने उसकी पीठपर कसकर दो चार धौल जमा दिये। तांगेवाला घोडे की पीठ पर चाबूक नहीं मारता ? ठीक, उसी तरह वह उसे बेरहमी से पीटने लगा। वह चीखने लगी, रो पडी। इस पर भी, माँ तो उल्टे उसी पर बिगड़ पडी। कहा- "लेकिन चुड़ैल तुम उसके फौंटनपेन को छुआ ही क्यों ?" वह उसकी जन्मदात्री माँ नहीं हैं। इसीसे तो उसने ऐसा कहा। फौंटनपेन भैय्या का। कैरम जीजी का। साड़ी दीदी की। मानों हर चीज़ के मालिक थे तीनों ही हैं। और इस घर में उसका किसी चीज़ पर तनिक भी अधिकार नहीं है ! और होगा भी, क्यों कर ? उसे तो चूनी भूसी देकर नटनी से खरीदा है। हाँ, यही सच है। वर्ना, भैय्या के उसे पीटने पर जब वह रोती सिसकती पिताजी के पास गयी, तब क्या वे कोई मरहम निकाल कर उस की पीठ पर नहीं मलते ? पिताजी को हमेशा गाँव, गाँव घूमना पडता है। किसी के पूछने पर माँ बताती है कि वे रेलगाडी में बैठकर, लंबी लंबी सफर पर जाकर, दवाइयाँ बेचनेका काम करते हैं। तब यह कैसे हो सकता है कि उसकी पीठ पर लगाने के लिये उनके पास कोई दवाई ही न होगी ? वह तो रोते सिसकते, शिकायत लेकर उनके पास गयी थी। लेकिन वे तो उसी पर बुरी तरह बिगड़ पडे। रास्ते के किसी कुत्ते को घर के भीतर घूमते देख, भैय्या जिस तरह उसे दुत्कारता है, उसी तरह दुत्कार कर उन्होंने उसे वहाँसे भगा दिया। पिताजी भी उसके सचमुच के सगे पिता नहीं हैं। उसके पिता लंबे से बाँस पर चढ़कर ढोलक बजाकर मोहल्ले भर के बच्चों का ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करनेवाले कोई नट हैं। आज यदि वह उनके साथ रहती तो रास्ते के बीच, झंडो के जैसे खडे किये एक बाँसपर वह रोज चढ़ती और तमाशा खत्म हो चुकने के बाद घर घर घूमकर ढेर से पैसे मिलाती। एक दो, सात, अठारह, दा सौ, दो सौ !

आँखोंके सामने यह चित्र दिखाई देते ही स्याही के धब्बे पडे अपने बस्ते में हाथ डालकर उसमें से उसने एक इकन्नी बाहर निकाली। उसे बंद मुट्ठी में छिपाते हुए उसके अधरोंपर मुसकान की एक रेखा प्रस्फुटित हो उठी ! अपने इस महान् पराक्रम पर वह गर्व का अनुभव करने लगी। सहसा सुबह की वह घटना उसे याद आयी।

सुबह उसने जिद की थी कि आज वह जीजी की साड़ी पहनेगी। लेकिन जीजी भी कितने ओछे दिल की लड़की है। बिल्ली जैसी गुर्राती हुए वह बोली, "तुम पहले मुझ जैसी बड़ी हो जाओ : बादमें तुम्हें भी माँ साडी ले दोगी।" बड़ी देर तक तो उसकी समझ में नहीं आया कि आज के आज, तुरन्त ही वह जीजी जैसी लंबी कैसी बन सकती है। बाद में उसे एक चाल सूझी। बहुत बढ़िया। कहानियों में सियारों को चालें नहीं सूझती ? ठीक वैसी ही ! आहिस्ता से एक कुर्सी ला कर वह उस पर खडी हो गयी। अब खूँटी और ताक को उसके हाथ छूने लगे थे। कोठी के कमरे में ताक पर माँ पैसे रखा करती है। इस बात का उसने अंदाज लगा लिया कि उसका हाथ वहाँतक पहुँच सकता है या नहीं ! लेकिन जैसे ही उसने हाथ ऊपर की ओर उठाया ताक पर रखे कुछ पैसों का उसे अभास हुआ। न जाने कितने पैसे थे। पलभर उसने सोचा कि वहाँ पर रखे सभी पैसे ले लें। लेकिन दुबारा उसके दिल में ख्याल आया कि कहीं चोरी करते हुए भगवान् उसे देख न लें-हाँ, पहली कक्षावाली पुस्तक की उस कहानी में लिखा तो था कि भगवान् को सब कुछ दिखाई देता है !

वह कुर्सी से नीचे उतरने ही वाली थी तभी उसकी आँखों के सामने वह चुडैल शकी खडी रही। कल स्कूल छूटने के बाद, रास्ते में एक आने का आमरूद खरीद कर उसे धत्ता बताकर वह घर चली गई। किसी दिन उसकी नाक तो जरूर नीची करनी ही होगी। उसका हाथ दुबारा उठा। उसने झट से वहाँ पर रखे पैसोंमें से एक इकन्नी उठा ली। शायद भगवान ने उसे चोरी करते हुए देखा नहीं होगा और देखा होगा तो ? जब रात के वक्त अंधेरे में चुप के से वह उसके निकट आयेगा, तब अपनी सफ़ाई में वह क्या जवाब देगी ? हाँ, वह कहेगी "वह इकन्नी तो इस हाथ ने चुराई थी, मैं ने नहीं।" और यदि वह बात माँ जान गई तो......"हटाओ जी... ...वह तो हमेशा बीमारही रहती है। उसे कहाँ से रुपये पैसों की इतनी याद रहने लगी...?"

कुछ दिनों पहले, किसी बगीचे में टहलते हुए उसने एक तितली पकडी थी। तितली को हाथ से छूते हुए उसे एक अजीब सी गुदगुदी होने लगी थी। इस वक्त, मुट्ठी में पकड़े हुई इकन्नी के स्पर्श से भी उसे बिलकुल वैसी ही गुदगुदी, वही ख़ुशी हो रही थी।

अपनी इस खुशी का प्रदर्शन वह किसके सामने करें ? त्योंही उसका ध्यान सहसा मास्टरानी जी की ओर गया। वे बार बार रट रही थीं, "गोशाला में यह गैया...चूम रही है बछड़े को..."

सुमन को लगा कि उस गैया का गोबर उठाने के लिये मास्टरानी जी को गोशाला में भेज दिया जायें। उसने देखा कि उसके सामने बैठी शकू ने शायद मुँह में चुपके से कुछ डाला है। क्या था वह ? आँवला या इमली ? ज़रूर इन्हीं दो चीजों में से कोई...वर्ना उसका एक गाल फूला फूला सा क्यों कर दिखाई दे रहा था ?

सुमन अत्यधिक चंचल हो उठी। उसने वहीं से हाथ में की इकन्नी शकू को दिखाई। मानों यह कहकर वह उसे खिझाना चाहती थी कि आज छुट्टी हो जाने के बाद वह भी आमरूद लेकर खाएगी...। त्योंही काली देवी चीख पड़ीं–" वहाँ क्या हो रहा है सुमन...?"

जब भी मास्टरानी जी सहसा इस तरह चीख पड़तीं, सुमन को एक साल पहले देखी सर्कस याद हो आती। उस सर्कस में एक शेर इसी तरह — !

काली देवी पूछ रही थीं–" कविता का मतलब समझ में आया तुम्हारे ?..."

सुमन ने ' हाँ ' में सिर हिलाया।

" तब बताओ इसका मतलब ? स्वामी का अर्थ क्या होता है ? "

स्वामी–स्वामी–स्वामी–मनुष्य की आहट पातेही सर्रांटेसे पेड की फुनगी पर पहुँच जानेवाली गिलहरी के समान सुमन की याद-दाश्त उसके दिल की गहराई तक जा पहुँची। पलभर में उसने वहाँ का कोना कोना छान मारा लेकिन–वहाँ उसे वह स्वामी जी कहीं दिखाई नहीं दिये ?

आकुल भाव से उसने मास्टरानी जी की ओर देखा। शेरनी पूँछ फुलाए दहाड़ रही थी। हे ईश्वर, सहसा उसे स्मरण हो आया — स्वास्थ्य लाभ करने के लिये कुछ दिनों पहले, माँ किसी मठ में भगवान् के दर्शन के लिये जाती थी। वहाँ पर एक स्वामी जी का आगमन हुआ था। वे प्रसाद स्वरूप चुटकी भर राख उसे दिया करते थे। एक बार माँ के साथ वहाँपर वह भी गयी थी।

सुमन ने झट् से कह डाला—" स्वामी यानी सिर मुड़ाया व्यक्ति।"

इस में उसे तनिक भी संदेह नहीं था कि उसका जवाब सुनकर मास्टरानी जी उसे ज़रूर शाबाशी देगी। उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से और गौरवपूर्ण मुद्रा से उसने कुर्सी की ओर देखा। उस्तानी जी ने मेज पर बेंत इस तरह जोर जोरों से थपथपाया कि मानों वे कोई ताशा या ढोल ही पीट रही हों।–जान पडता था कि शेरनी अत्यधिक क्षुब्ध हो उठी है। काली देवी चीख पडीं–" शैतान कहीं की ! खडी हो जाओ बेंच पर–"

वह बेंच पर चढने लगी। दस पाँच लड़कियाँ कह कहे लगाकर हँस पडीं। सुमन को जान पडने लगा कि उनकी उस व्यंग्य पूर्ण हँसी में भी " शैतान कहीं कीं ! " यही शब्द निनादित हो रहे हैं। वह हैरान थी कि घर में, बाहर, स्कूल में, शाम सवेरे, सिवा इन्हीं शब्दों के, उसके कानों को और कुछ सुनाई ही क्यों नहीं देता ? " शैतान कहीं की–कम्बख्त आठ साल की गधी–काली छछुंदर–चुडैल की, मरम्मत करनी चाहिये–इसे नटनी को दे डालना चाहिये..." माँ, पिताजी, भैया, जीजी, दीदी, मास्टरानी जी, सभी कोई, आठों पहर उसके लिये इन्हीं कुत्सित शब्दों का प्रयोग करते हैं। मानों इन सब ने उसके खिलाफ़ एक षड्यंत्र ही रचा है। जिस तरह शिवाजी की हत्या करने के इरादे से अफ़ज़लखान आया था, उसी तरह ये सब लोग......

हाँ ! अब उसे शिवाजी बनना होगा ! और इन सभी अफ़ज़लखानों को– ! सीना फुलाकर सुमन बेंच पर खडी हो गयी। दृष्टि में इसी भाव का प्रदर्शन करते हुए वह क्लास में चारों ओर देख रही थी, मानों वहाँ पर उस्तानी जी कविता नहीं पढा रही थीं, बल्कि कोई पगली ही अंटसंट प्रलाप कर रही थीं।

सहसा उसकी निगाह ऊपर की ओर गयी और छत के एक कोने में जाकर वहाँ पर निश्चल हो गयी। छत में एक चौडी सी दरार दिखाई दे रही थी। उस दरार से हो कर, हल्के हल्के रेशों के रूप में, निकलनेवाली रुई, हवा में तैरती हुई उसे दिखाई दी। बडे ही सुंदर ढंग से, हवा में लहराते, चक्कर खाते हुये वह धरती की ओर आ रही थी। इस के तुरंत ही बाद, घास की एक दो सूखी पत्तियाँ और दो एक एक सूखी टहनियाँ भी लुड़कती हुई धरती पर आ गिरी थीं। उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से सुमन इस दृश्य की ओर देख रही थी। शायद चिड़ियों ने वहाँ पर अपना घोंसला बनाया था। घोंसले से बाहर निकलती हुई चिडियाँ रानी के परों में चिपक कर वह कपास, घास फूस की पत्तियाँ और टहनियों के टुकडे नीचे गिर पडे थे। वह चिडियाँ जो कुछ समय पहले दरार से बाहर निकली थी अब दुबारा, उस दरार में बार बार चोंच घुसेड़ ने की कोशिश कर रही थी। वह अब दरार से कुछ एक ओर हट गयी और उस स्थान पर नन्हें नन्हें चेंटुए दिखायी देने लगे थे।

सुमन का समूचा कुतूहल जागृत हो उठा। पिछले वर्ष सर्कस में बाघ, सिंह आदि को देखते हुए उसे आभास हुआ था कि मानों वह किसी अनोखी ही दुनिया की सैर कर रही हो। इस वक्त की उसे वही आभास होने लगा। पिछली दीवाली के अवसर पर भोर के पहले ही, अंधेरे को चीरकर प्रकट होने वाली पूर्व दिशा की ओर, प्रकाशमय सृष्टिका अवलोकन कर वह आत्मविस्मृत सी हो गयी थी। किसी पुस्तक के पन्ने पलटते हुए, अचानक उस में मिल जाने वाले मयूरपंख के समान, वह स्मृति उसकी आँखों के सामने तरंगित होने लगी। साडी, चिवड़ा, आमरूद, इकन्नी शैतान, भैया, चुडैल जीजी, नटखट दीदी इन सब का उसे उस क्षण जैसे विस्मरण हो गया।

त्यों ही, मास्टरानी जी चीख पडीं– ' सुमन, वहाँ क्या हो रहा है ? चौथी अंग्रेजी की यह कविता, किस तरह जी तोड़कर मैं चौथी हिंदी को पढा रही हूँ; और कम्बख्त, तुम एक हो कि आवारा गर्दी में......हाँ, बताओ तो, " दिन भर दाना इन्हें चुगाये, इन की खातिर आप न खाये..."यहाँ 'आप' शब्द किस के लिये प्रयुक्त किया गया है ?––अरी चुडैल, यहाँ ' आप ' का मतलब है उन चेंटुओं की माँ से; अब कहो ' इन की खातिर......"

सुमन के मुँह से उन पंक्तियों का उच्चारण इस तरह हुआ, मानों कलपूर्जों को घुसाते ही कोई गुड़िया अपने हाथ पैर चलाने लगी हो। उन पंक्तियों का उच्चारण तो मुँह से वह कर रही थी, लेकिन उनकी यथार्थता के विषय में उसे विश्वास नहीं आ रहा था। सामने, छत के कोने में बने चिडियों के घोंसले की ओर उसने देखा। कुछ क्षणों पहले, वह चिडियाँ अपने नन्हें–मुन्नों की चोंच से किस तरह चोंच मिला रही थी; लेकिन उसकी माँ ने तो किसी भी दिन, इस तरह उसका प्यार......

वह चिडियाँ इन बच्चों की उनकी अपनी माँ है। उसकी माँ उसकी सगी माँ नहीं है — काश, वह उसके अपनी

सचमुचकी माँ होती ...... तब क्या, साल में दो बार उसकी सालगिरह मनाकर वह उसे जल्द बड़ी नहीं बना देती ? वह उसे साडी देना नहीं चाहती, वह 'उसे फौंटन पेन देना नहीं चाहती, कैरम देना नहीं चाहती, उसे कुछ भी देना नहीं चाहती ।। और इसी से तो वह उसके जल्द बड़ी होने में हाथ बँटाना नहीं चाहती, पडोस वाली रमा चाचीसे वह हमेशा कहा करती है, "मुझे तो इस लौंडिया की परछाँही तक से नफ़रत है......मुझे तो चाहिये था लड़का......"

जब यही बात थी तो जिस वक्त वह उसके पेट में थी, तभी उसने उसे लड़के में क्यों न दबल दिया। लेकिन सच तो यह है कि वह उसके पेट में क्यों नहीं बदल दिया ? लेकिन सच तो यह है कि वह उसके पेट में थी ही नहीं। इस में कोई संदेह नहीं है कि उसे चूनी भूसी दे कर किसी नटनी से खरीदी गयी है; इसके असली माँ नहीं है—यह मकान भी उकसा नहीं है—छुट्टी हो जाने पर आज वह घर नहीं जायेगी। क्या करना है ऐसे घर जाकर ? जिधर उसका कोई नहीं है——

'टन् टन् टन् टन्' छुट्टी का घंटा बजा। सुमन ने बेंच से छलाँग मारी। बस्ता लेकर दौड़ते हुए वह बाहर आ पहुँची। इकन्नी वह अपने दाहिने हाथ में कस कर पकड़े थी; बाहरवाली सीढ़ी पर उस काली बिल्ली को चिड़ियों पर ताक लगाये बैठा उसने देखा। बड़ी दुष्ट है, मुर्दार ! हमेशा चिड़ियों के पीछे हाथ धोकर पड़ी रहती है। लगा ठीक उसी तरह, जैसे भैया हरदम उसके पीछे पड़ा रहता है। उसका जी चाहने लगा कि एक पत्थर उठाकर उस पर फेंक मारे। पत्थर उठाने के लिये वह नीचे झुकी भी थी। तभी उसे स्मरण हो आया कि उसने हाथ में एक इकन्नी है और पत्थर उठाते हुए, नीचे गिर कर वह कहीं खो न जायें।

वह उठ खडी हुई। नज़र उठाकर सामने देखा। शकी तेज़ी के साथ चली जा रही थी। दौड़ते हुए ही वह उसके पास जा पहुँची। दोनों भी नाराज़ नाराज़ सी, मुँह थुथराकर जा रही थीं। अगल बगल के छतों पर बैठकर एक दूसरी की ओर घृणा और क्रोध के मिले-जुले भावों से वे रह रह कर घुरतेवाली बिल्लियों की भाँति वे दोनों दिखाई दे रही थीं।

दोनों नुक्कड़ के पास आ पहुँची। कल का ओमरूदवाला आज भी वहींपर बैठा था। उसकी टोकरी में के हरे, पीले आमरूद देख कर सुमन के मुँह में पानी भर आया। टोकरीमें से उसने एक बड़ा सा आमरुद छाँट लिया और उसे खूब जोर लगा कर दबाकर देखा। बागवान के हाथ में इकन्नी फेंक दी और शकू का, जो अब तक कुछ आगे बढ़ गयी थी, पीछा करने के लिये वह दौड पड़ी। शकू के निकट आकर, आमरूद दिखाकर, धता बताकर उसने उसे खूब खिझाया और तब कहीं उसके हृदय को सांत्वना मिली।

आमरूद बड़ा ही अच्छा था। जर्द रंग का खूब महकनेवाला, लेकिन किधर बैठकर वह खाया जायँ ? रास्ते से तो लड़के लड़कियों का ताँतासा बँधा था। पीछे की ओर से मास्टरानी के आने की संभावना थी। घर में भैया, जीजी, दीदी–हे ईश्वर ! कैसी मुसीबत है। अशोकवन में सीता के गिर्द बैठकर दुष्ट राक्षसनियाँ पहरा दिया

करती थी। उसके गिर्द भी, ठीक उसी तरह–घर में, बाहर... स्कूल में—

रेलगाडी की कर्णकटु सीटी सुनाई दी। सुमन ने महसूस किया कि मानों कोई सहेली ही प्यार भरे शब्दों में आवाज़ देकर उसे अपने पास बुला रही है। उसके पैर अनायास ही स्टेशन की ओर मुड़ गये। पलक मारते ही वह स्टेशन पर जा पहुँची।

स्टेशन का दृश्य हमेशा ही अत्यंत प्रिय था। वहाँ की भाग दौड, चहल पहल, कोलाहल आदि को देख कर उसका मन बल्लियों उछल ने लगता। वहाँ पर कुली का काम करने वाले लडकों को देख कर, उनके प्रति उसके मन में जलनसी पैदा होने लगती। अब भी उसे लगा, कि ये लड़के कितने खुश नसीब हैं। उन्हें तो आठों पहर रेलगाडी देखने मिलती हैं। हर घडी मातापिता कि धौल खाने की नौबत उन पर कभी नहीं आती। बस यहाँ की चीज़ वहाँ तक पहुँचा दी कि उनके हाथों में सरासर रुपये बरसने लगते हैं। और वह एक है कि किसी भी चीज़ के लिये ज़रूरत पडने पर उसे माँ, या पिताजी के सामने हाथ फैलाने पडते हैं। पिताजी बात बात पर बिगड़ पडते हैं "पैसे पेड़ में थोडे ही फलते हैं!" और इतनी सी बात को ले कर न जाने क्या क्या बकझक बकने लगते है। उसे सुन कर माँ के माथे में बल पड जाते हैं देखतेही देखते, तब उन दोनों में टन् जाती है और बाद में—

गाडी ने दुबारा सीटी दी। स्टोव्ह पर खौलनेवाले, अदहन के समान स्टेशन पर की चहल पहल दिखाई देने लगी। काठ के बने एक फाटक के निकट जाकर वह खडी हो गयी। उसने अमरूद का टुकडा दाँतों से काँटा और देखने लगी। डिब्बे–डिब्बे से लोग बाहर झाँक कर देख रहे थे। उन्हें देख कर उसे पेडों पर बैठे बंदर याद आये। तुरंत उसकी आँखों के सामने मेलों में लगे चक्करदार झूले दिखाई देने लगे। उसे लगा कि रेलगाडी का एक एक डिब्बा यानी एक एक झुला ही है। काश; उन झूलों के जैसे, रेलगाडी के ये डिब्बे भी चक्करदार चाल से घूमने लगते......

तुरंत उसकी आँखों को रेलगाडी के डिब्बे घूमते हुए दिखाई देने लगे। उन में बैठे लोगों के चेहरों पर घबराहट और बेचैनी टपक रही थी। झूले से बाहर गिरने से बचने के लिये वे एक दूसरे को कस कर पकड़ रहे थे। अपने आप को गिरने से बचाने की कोशिश में एक बूढे ने तो दूसरे एक व्यक्ति की चुटैया ही कसकर पकड़ ली। एक लडकी ने अपनी माँ का आँचल कस कर पकडा था। वह उसके हाथ से छूट गया। माँ ने उसके गाल पर एक तमाचा लगा दिया। बड़ी उम्रवाले एक लडके की कमीज़ की जेब में शान के साथ लगाया हुआ एक फौंटन पेन, वहाँ से उडकर इंजिन में, धधकते कोयलों में जा गिरा।...

"सुमन, शैतान कहीं की? यह आमरूद तुमने कहाँ से पाया?" इन शब्दों को उसने स्पष्ट रूप से सुना। लेकिन पलभर तो उसने विश्वास नहीं किया कि यह शब्द उसके भैया ही के मुँह से निकल रहे हैं। आँखें फाड़ फाड़ कर उसने देखा। हाँ! उसके सामने भैया ही खडा था। उसके साथ और भी कई लडके थे। उनके किसी मास्टर का तबादला हो जाने के कारण वे किसी दूसरे गाँव जा रहे थे। शायद उन्हें बिदा करने के लिये लडकों की वह टोली स्टेशन आयी हुई थी।

अंधेरे में जगमगाने वाली बिल्ली की आँखों के समान यह विचार सुमन के मस्तिष्क में चौंधिया गये। लेकिन तुरंत ही वह अंधेरा और भी अधिक बना हो गया। बिल्ली ने आँखें मूँद लीं।

वह बेतहाशा दौडने लगी। उसने स्टेशन की ओर दुबारा आँख उठाकर देखा तक नहीं। "ऐ लड़की, बचना" कह कर एक तांगेवाला कर्कश स्वर में चीख पडा। उसका समूचा बदन थराराने, कँपने लगा। उसे लगा—उसे पकडने के लिये भैया उसका पीछा कर रहा है। वह दौड़ रही थी। बेतहाशा दौड़ रही थी। अंत में, हाँफते हुए, वह राधा कृष्ण के मंदिर में आ पहुँची। अब कहीं उसके जी में जी आया। वहाँ पर एक कोने में बैठकर, बचा हुआ आमरूद उसने गपक लिया। लेकिन उसे लगा कि अब उस आमरूद में पहेल की सी महक नहीं है और न उस में तनिक भी मिठास बची है।

आमरूद तो खा चुकी। लेकिन अब उसे घर जाने में डर सा मालूम होने लगा। भैया तो माहूर की गाँठ है। आज वह माँ से चुगली लगाये बिना कभी न रहेगा। और तब जाने क्या—

मंदिर के गव्हर में जाकर वह खडी रही थी। कृष्ण भगवान की मूर्ति मुस्करा रही थी। बचपन में कृष्ण कन्हैया चुराकर दही, दूध, मख्खन खाया करता थे और इसी बात पर यशोदा मैया ने उन्हें एक रोज़ ओखली से बाँधकर रखा था। उस मूर्ति की ओर देखते हुए सुमन को इस कहानी का सहसा स्मरण हो आया। उस के स्मरण से मानों उसे नव–जीवनसा प्राप्त हुआ। उसे कुछ तसल्ली मिली; उसकी हिम्मत बढी। जाने डर कहाँ भाग गया। निर्भय होकर वह घर की ओर चल पडी।

लेकिन जैसे ही दूर से घर दिखाई देने लगा, उसकी हिम्मत ढलने लगी। आहिस्ता आहिस्ता वह घर के निकट आ पहुँची। सीढ़ियाँ चढकर ऊपर गयी और वहीं एक कोने में जा कर ठिठक गयी। गाँव में जाते आते हुए उसने कई बार वहाँ का जेल खाना देखा था। उसे प्रतीत होने लगा कि उसका घर भी एक जेल खाना ही हैं। उसकी तबीयत नहीं हो रही थी कि दरवाजा खोलकर भीतर जाएँ। दरवाजे को कान दे कर वह सुनने लगी। कोई किसी से झगड़ रहा था। हाँ! पिताजी ही की आवाज सुनाई दे रही थी। जोरों से, चिल्ला चिल्ला कर वे कुछ कह रहे थे। और माँ? वह भी झल्लाहट भरे ढंग से उनकी बातों का जवाब दे रही थी। पिताजी के शब्द उसे स्पष्ट तया सुनाई दिये। "तब तुम ही बताओ, अखिर क्या किया जाय? यहाँ मैं तो दिन रात मेहनत करते हुए मरा जा रहा हूँ। लेकिन—ये डाक्टर का बिल–बिल। हटाओ भी–! कल ही मैं दुबारा दौरे पर चला जाऊँगा, बराबर एक महीना चारों ओर घूम कर आऊँगा।—तब कहीं—"

सुमन हैरान थी। पिताजी माँ से बार बार कहते हैं कि 'मैं मरा जा रहा हूँ।' वे इस तरह झूट बात क्यों करते हैं? आदमी को कई दिन बीमारीमें घुलना पडता हैं, लगातार, महीनों तक डाक्टरों के इलाज किये जाते हैं कई किस्म की दवाइयाँ पीनी पडती हैं और







★

इसके इस्तेमाल से
कमज़ोर और दुबले
बच्चे ताक़तवर
बनते हैं

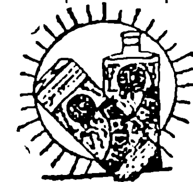
★

डोंगरे बालामृत

के. टी. डोंगरे ॲण्ड कं. लि. बंबइ ४

● थापर हाऊस, बिरहाना रोड, कानपुर

● गांधीनगर, बंगलोर



अनुक्रमणिका





कहीं उसे मौत आती है। पिताजी को उसने एक दिन भी दवाई पीते नहीं देखा। तब क्यों वे इस तरह--

धडाम् से दरवाजा खुला। भीतर से पिताजी बाहर निकले। सुमन चौंक पडी। उसे लगा, काश उसके गालों को छू कर पिताजी उस से मीठी मीठी बातें करते! मीठी बातें तो कहीं रहीं, लेकिन हमेशाके अनुसार "क्यों पठान ? हो गयी छुट्टी ?" ये शब्द भी उनके मुँह से नहीं निकले। वह चुपचाप भीतर जाने लगी। पिताजी से आज वह बहुत नाराज़ है। उनसे बात तक न करेगी...

मुँह फुलाते हुए ही भीतर चली गयी। बिना हाथ पैर धोये ही नाश्ते के लिये कुछ माँगने लगी। यह देख माँ उसे मारने लिये दौडी। तब कहीं, पैर हाथ धोने के लिये उठी। वहाँ से, बिना पैर पोंछे ही आकर, माँ के पास चिवडे के लिये उसने ज़िद पकडी। सब के नाश्ते के लिये माँ ने कुछ नमकिन बनाया था। उस तश्तरी को उसने एक ओर हटा दिया और दुबारा चिवडे की रट लगाये वहीं डटकर बैठ रही। उसने देखा था कि किसी चीज़ की ज़रूरत पडने पर भैया इसी तरह जिद करता है, और वह यह भी अच्छी तरह जानती थी कि ऐसा करने पर माँ उसकी जिद हर बार पूरी करती है। उसने निश्चय किया कि आज उसी जाल के जरिये वह माँ से चिवडा ले कर रहेगी।

सुमन ने देखा कि माँ उठ नहीं रही है, तब वह और भी ज़्यादा तिल मिला उठी। आज ही क्लास में उस्तानी जी ने कहा था कि गैया का दूध पीते हुए, उसका बछड़ा बार बार माँ के पेट में सिर मारता है। लेकिन इस बावजूद भी गैया उस पर कभी नाराज़ नहीं होती। इस बात का स्मरण होकर सुमन माँ से लिपट गयी तबभी माँ को टस से मस होते देख उसने उसकी दाहिनी बाँह पर अपना सिर टिका दिया और उस स्थान को जोर जोरों से माथे से रगड़ना शुरू किया। सहसा आर्त स्वर में माँ चीख पडी मानों उसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। सुमन को एक ओर धकेल कर वह गरज पडी, "हराम जादी! अंधी कहीं की। दिखाई नहीं देता तुम्हें। आज ही सबेरे मैं ने इंजेक्शन करवाया है। यहाँ मेरा हाथ किस तरह दर्द दे है...और वहीं पर तुमने..."

माँ के एक ओर धकेल देने से, वैसे तो सुमन को कोई खास चोट नहीं आयी थी। लेकिन यह सोचकर, कि रो पडने पर माँ उसे ज़रूर चिवडा देगी, वह सिसकने लगी। तभी, सिनेमा जाने के लिये पैसे माँगने भैया माँ के पास आया। माँ उठकर कोठीवाली कमरे में गयी। वहाँ पर, ताक पर रखे पैसों में से कुछ पैसे निकाल कर उसने भैया को दिये। घुटनों में सिर डाल कर सिसकते हुए, सुमन यह सब देख रही थी। अब उसने और भी जोरों से सिसकना शुरू किया। हाथ में के पैसे गिनते हुए माँ ने कहा, "हायराम! इस में की एक इकन्नी क्या हो गयी ?" शरारत भरी मुस्कराहट से भैया ने कहा, "सुमन से पूछो। कुछ देर पहले, स्टेशन पर उसे आमरूद खाते हुए मैंने देखा था।"

आग लगा कर भैया सिनेमा देखने चला गया। आग आहिस्ता अहिस्ता भभकने लगी। भीषण रूप धारण करने लगी। सच कहने के लिये माँ सुमन को बार बार डाँट रही थी और हर बार सिसक सिसक कर रोती हुई, लेकिन बिना झिझक के सुमन कह रही थी कि उसने इकन्नी नहीं ली। माँ ने उसकी पीट पर चार पाँच धौल जमा दिये गुस्से के मारे वे काबू हो कर उसके गाल पर चार पाँच तमाचे भी कस दिये। उस मार की वज़ह से सुमनका दाहिना गाल स्याह सा दिखाई देने लगा --

सुमन तिलमिलाने लगी, झल्लाने लगी लेकिन अपनी बात पर अड़ी की अड़ी ही रही।

माँ उलझन में पड गयी, और हार कर अब उसने जिरह शुरू कर दी।

"स्कूल छूटने के बाद तुम किधर गयी थी ?"
"स्टेशन"
"किस लिये ?"
"वहाँ पर मेरी एक सहेली का घर है"
"किस काम से गयी थी उसके यहाँ ?"
"आज बच्चे का नाम रखना था"
"नाम ? उसके भाई का ?"
"नहीं!"
"तब, उसकी बहन का ?"
"नहीं--"
"तब किस का ?"
"उसकी गुडिया के बच्चे का......"

माँ के मुखपर दौड़ गयी मुस्कराहट की और सुमन ने गौर से देखा। उसकी पीठ में दर्द हो रहा था, उसे लग रहा था कि बार बार अपने गालों को सहलायें, लेकिन इस खुशी में, कि इस जंग में, अंत में जीत तो उसी की होगी, अपने तमाम दुख दर्दों को उसने भूला दिया। माँ से वह कहने लगी, "उस की माँ ने हमें इस खुशी के उपलक्ष्यमें आमरूद दिये। आमरूद लेकर मैं घर आने लगी। स्टेशन पर भैया दिखाई दिया। मैं ने सोचा कि शायद पिताजी इसी गाड़ी से गाँव जा रहे हैं, और मैं सीधे स्टेशन की ओर चल दी।"

यह सब झटपट गढ़कर कहते हुए सुमन को एक अजीब सी खुशी हो रही थी। कबड्डी के खेल में पिछले साल उसने ईनाम पाया था उस खेल में तमाम लड़कियों को छकाते हुए उसे जितनी खुशी हुई थी, इस वक्त भी वही खुशी...

लेकिन उस खुशी का उपभोग वह ज़्यादा देर कर न सकी। नाश्ता कर चुकने के बाद, हाथ धोने के लिये भीतर जाते हुए उसने यूँ ही आइने में देखा। उसका दाहिना गाल अब भी दिखाई दे रहा था। माँ की पाँचों उगलियाँ वहाँ पर उभरी हुई थीं!!

● ●

अंधेरे और उजियाले की होड में, अंधेरे ने बाजी मार ली थी। बाहरवाली दुनियाँ के साथ ही साथ अंधेरे की काली परछाइयों ने तेजी के साथ आ कर सुमन के दिल को भी घेर लिया। जीजी और दीदी दोनों कैरम खेलते थीं। वहाँ जा कर वह खड़ी रही। उन्होंने नज़र उठाकर उसकी ओर देखा तक नहीं। भैया का कोई दोस्त उसकी पूछ ताछ करने के लिये आया था। उससे माँ ने कहा कि

वह सिनेमा देखने गया है। सुमन ने यह सुन लिया। तुरन्त उसका हाथ अपने दाहिने गाल की ओर गया और उसी क्षण उसे लगा कि भैया, जीजी, दीदी, माँ ये सब उसके दुश्मन हैं। हाँ, इन में से हर एक आदमी उसका दुश्मन है!!

कल शनिचर! उस्तानी जी ने गणित का पाठ दिया है। दोतल्ले वाले कमरे में जाकर उसने पुस्तक खोली लेकिन गणित में किसी तरह उसकी तबीयत नहीं लग रही थी। पुस्तक एक ओर फेंक कर वह उठ खड़ी हुई। सामने ही एक तसवीर दिखाई दे रही थी, जिस में माँ और पिताजी एक दूसरे से बिलकुल सट कर बैठे थे। दाँत पीसते हुए उस तसवीर की ओर उसने देखा। प्रबल आवेग के साथ उसका दिल चाहने लगा कि ज़ोरों का एक घूँसा मार कर उस तसवीर के शीशे को चूर चूर कर डालें! उस्तानी जी पर और माँ पर कविता लिखने वाले कवि पर उसे बेहद क्रोध हो आया। काश! उन दोनों की भी तसवीरें यहाँ पर होतीं। तब तो उन्हें भी वह ज़रूर तोड़ मरोड़ कर फेंक देती। उसे दोपहर वाली उस कविता की पंक्तियाँ याद हो आयी, "दिनभर दाना इन्हें चुगाये... उन की खातिर आप न खाये"... उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि उन पंक्तियों का कथन सरासर झूट है। अपने गाल को सहलाते हुए वह बाहर वाली गैलरी में आ पहुँची और वहाँ पर खड़ी हो कर सड़क पर की चहल पहल देखने लगी। उसको हमउम्र एक लड़की किस तरह सुंदर साड़ी पहन कर जा रही थी! मौसी जी के घर में के तोते के रंग की साड़ी! स्कूल के बगीचे में लहलहाने वाली मुलायमसी दूब के रंग की साड़ी! वह लड़की अपनी माँ की उँगली का सहारा लेकर रास्ते से जा रही थी।...

सुमन का हाथ अनायास हो अपने गाल को छू कर देखने लगा। माँ की पाँचों उंगलियाँ वहाँ पर उभरी हुई थीं। उसे जान पड़ने लगा कि जैसे उसका दम घोंटा जा रहा हो कि जैसे भीतर ही भीतर कोई उसे गरम लोहे से दाग़ रहा हो, कि जैसे कोई उसके दिल को पापड़ के समान, आग पर, दोनों ओर से भून रहा हो....!!

जंगले से नीचे झुक झुक कर उसने देखा। उसका दिल चाहने लगा कि और.....और भी आगे की ओर उठा लें ताकि वह धडाम से नीचे गिर पड़े, उसकी खोपड़ी टूट कर चूर चूर हो जायें, वह लहूलहान हो जायें, चीखते चिल्लाते यहाँ पर लोगों का एक जमघट सा हो जायें। इस दुर्घटना के बाद लोग उसे उठाकर भीतर ले जायें....और....तब, उनसे लिपट कर, उस के बदन को सहला....

प्यार से लबालब भरे उस स्पर्श की कल्पना भर से ही उसके शरीर में रोमांच हो आये! उस अजीब सपने को देखने में वह लीन हो गयी। रास्ते से जाने आने वाले लोग उसे धुंधले से दिखाई देने लगे। सहसा उसके कानों को शब्द सुनाई दिये— "कम्बख्त! किस तरह झुक कर देख रही हो? नीचे गिर पड़ोगी न—?" पिताजी! हाँ पिताजी ही की—आवाज़ थी वह!

"...कम्बख्त! किस तरह नीचे झुक कर देख रही हो।" इन शब्दों को सुनते ही कँप गयी। उसने आँखें खोलीं। डरी डरी सी निगाह से उसने यहाँ वहाँ देखा। वह अकेली ही अपने बिस्तर पर लेटी थी। यह जान गयी कि उस विचित्र दृश्य को वह सपने में ही देख और सुन रही थी, उसे खुशी हुई।

लेकिन वह खुशी पल भर ही में विनष्ट हो चुकी! दूसरे ही क्षण, उसका हाथ अपने दाहिने गाल की ओर गया। वह फूला 'फूला'सा मालूम हो रहा था। उस में दर्द हो रहा था। उसका ख्याल था कि रात को, उसके सो जाने के बाद, माँ उस पर कोई घरेलू इलाज करेगी।... गाल को उसने दो तीन बार छू कर देखा। लेकिन वहाँ पर, दवाई लगाने का कोई निशान नहीं था। तनिक भी नहीं।...

रात को बिस्तरपर सोने के लिये जाते हुए उसे लगा था कि उसे सज़ा देने पर माँ को दुःख हुआ होगा। अब अपने तमाम कामों से निबटते ही, वह उसके पास आकर लेट जायेगी। आधी रात के बाद, आँखें खुलने पर वह माँ की गोद में मुँह छिपा लेगी। घोंसले के भीतर जाती हुई चिड़ियाँ जिस तरह अपने बदन को सिमट कर भीतर घुस जाती है, ठीक उसी तरह, माँ की गोद में वह अपना मुँह छिपा लेगी। 'मेरी' बिटिया, कह कर, माँ उसे अपने और भी निकट खींच लेगी, और तब वह आहिस्ता से पूछेगी, "अपूम्मी," तुम्हारे हाथ का दर्द कैसा है? इंजेक्शन लगाते हुए डाक्टर अहिस्ता से सुई क्यों नहीं लगाते? क्या तुम्हारे हाथ में ज्यादा दर्द है? चलो, हम उसे गर्म पानी से सेकेगें...ऐसा करने से—"

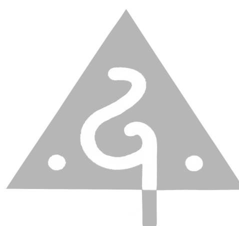
सुमन ने आँखें फाड़ फाड़ कर देखा। वहाँ पर माँ नहीं थी, पिताजी नहीं थे, कोई भी उसके पास नहीं था। वहाँ से कुछ ही फासले पर, आवाज़ सुनाई दे रही थी, मानों बिल्ली गुर्रा रही हों। भैया के खर्राटे भरने की वह आवाज़ थी।

वह बिस्तर पर उठ बैठी। आँखें सक पका कर उसने चारों ओर देखा। भैया के बिस्तर से ज़रा ही दूर, जीजी और दीदी आराम की नींद सो रही थीं। सुमन का गाल बुरी तरह दर्द कर रहा है इस बातकी उन्हें क्यों कर फिक्र होने लगी? खैर, उन्हें तो उसकी फिक्र थी ही नहीं, लेकिन—कमसे कम माँ को तो उसकी फिक्र...

वह सोचने लगी। और तभी उसके मन की दशा यूँ हो गयी, मानों हरी हरी दूब पर खेलते हुए, पैर में खट् से काँच गड़ गयी हों। वह माँ अपनी माँ नहीं है, इस कल्पना के निकट आते ही उसका विचार चक्र तेजी के साथ घूमने लगा। माँ का रंग उजला है; पिताजी का भी रंग काला नहीं है, भैया, जीजी, दीदी, इन सब का रंग उजला है; और सिर्फ़ उसी का रंग काला है; तब इस में संदेह के लिये गुंजाइश ही कब है, कि उसकी सचमुच की माँ और पिता कोई और ही व्यक्ति हैं! तभी तो ये माँ बाप उसे चाहते नहीं, उससे प्यार करते नहीं। यह घर भैया का है, जीजी का है, दीदी का है, उसका नहीं... तब ऐसे घर में किसलिये रहें?......

बड़ी देर तक इन्हीं विचारों में वह उलझी रही। उसे ध्रुव की कहानी याद आयी। भक्त ध्रुव का सिनेमा भी उसने देखा था। इस निश्चय के साथ वह बिस्तर से उठ खड़ी हुई कि वह भी ध्रुव का आदर्श अपनी आँखों के सामने रखेगी... इस घर का त्याग कर वह दूर कहीं चली जायेगी ... वह दरवाज़े की ओर चल दी। तभी सड़क की ओर से गश्तवाले की अवाज़ उसे सुनाई दी... "—सोने वालों, होशियार रहना जी!" उसके पैर वहीं के वहीं





ठिठक गये। उसका दिल बुरी तरह धड़कने लगा। वह उलझन में पड़ गयी कि जिस वक्त ध्रुव घर का त्याग कर तपस्या के लिये चल पड़ा था, उस वक्त गश्तवाले की आवाज़ सुनकर उसका भी वहीं हाल हुआ था या नहीं ! कहानी में तो इस बात का कहीं पर जिक्र नहीं था और उस सिनेमा में भी ...

" सोनेवालों, होशियार रहना जी " मकान की पिछली ओर से दुबारा वही आवाज़ सुनाई दी। सुमन बार बार अपने दिल को तसल्ली देने की कोशिश कर रही थी कि यह गश्तवाला ही है, भूत प्रेत नहीं है, लेकिन उसके कलेजे का धड़कना किसी तरह कम न हो सका। अब तो उसके पैर भी बुरी तरह कँपने लगे। उसे लगा कि ऐसे ही दौड़ते हुए माँ के कमरे में जा कर उसी की गोद में छिप जायें। भय के कारण धड़कते हुए दिल से उस पार के माँ के कमरे में वह दौड़ती सी गयी। माँ के बिस्तर की ओर उसने देखा। बिस्तर पर कोई नहीं था। वह हैरान थी कि माँ किधर चली गयी ? तुरंत उसकी निगाह पिताजी के बिस्तर की ओर गयी। और उसी क्षण उसका समूचा डर जाने कहाँ हवा हो गया...और डर का स्थान क्रोध ने ले लिया। तिलमिला कर उसने दिल में कहा, पिताजी कोई नादान बालक तो हैं नहीं, न आज माँ के हाथों उनकी मरम्मत भी हुई है, और न उनके गालों पर माँ की उँगलियों के निशान उभरे हैं...तब उसे छोड़ कर माँ पिताजी के बिस्तर पर किसलिये चली गयी...!

कमरे में गर्म पानी कि रबर कि बनी थैली दिखाई दे रही थी। उसके निकट ही घड़ी की टिक् टिक् जारी थी। वह हल्की सी आवाज़ आहिस्ता आहिस्ता इस तरह तेज़ होती गयी कि सुमन को जान पड़ने लगा कि जैसे बाहर से कोई मकान के दरवाज़े पर ही जोर से दस्तक दे रहा है। तुरंत उसके दिल ने कहा कि नहीं, यह तो कोई लुहार है, जो भट्टी जला कर गर्म लोहेपर हथौड़े की दनादन चोटें दे रहा है। निद्रित माँ की ओर घृणा भरी दृष्टि से देख कर, वह अपने कमरे में लौट आयी।

धुंधली सी रोशनी में कमरे में तो आँखों को कुछ कुछ दिखाई दे रहा था लेकिन बाहर, चारों ओर घना अंधेरा फैला हुआ था। दबे पैरों से वह खिड़की के निकट गयी। उसे वह सुरंग याद हो आया जिसे उसने दो साल पहले, बम्बई जाता हुआ देखा था। उस सुरंग में भी इसी तरह अंधेरा ही अंधेरा छाया हुआ था। उसने दुबारा देखा, रस सुरंग में भगवान के घर की बत्तियाँ टिमटिम रही थी....

वह दुबारा सोचने लगी। ध्रुव ने जिस वक्त राज महल का परित्याग किया था, तब शायद रात नहीं हुई थी, और इसी से, उसे अंधेरे का मुकाबला नहीं करना पडा था। तभी खिडकी निकट किसी के फड़फड़ाने की आवाज़ सुनाई दी। लड़खड़ाते कदमों से वह अपने बिस्तर की ओर लपकी और कंबल को मुँह तक, कस कर खींचकर, उस आवाज़ को गौर से सुनने लगी।

नहीं ... वह उल्लू नहीं था न चमगादड़। वह तो एक तितली थी।

अब उसका गाल दर्द नहीं कर रहा था। शायद उस पर किसी ने मरहम लगाया था। वह सिनेमा देखने गयी। अकेली ... बिलकुल अकेली ... अकेली ... भैया, जीजी, दीदी, इन सबको धत्ता दिखा कर !

कितना मजेदार था वह सिनेमा। उसमें माली चाचा के बिल्ले जैसी, जीजी के मूछें निकल आयी थीं ... सुमन उन्हें कैंची से काट रही थी ... उस सिनेमा में भैया एक खरगोश का गला घोंट कर उसके प्राण ले रहा था ... एक बहादुर, काली साँवली सी लड़की उस दुष्ट पर गोली दाग़ रही थी ... उसी में दीदी के ... कैरम बोर्ड को पतंग बनकर एक बड़े ऊँचे से दरख्त की डाली में फँसा उसने देखा। एक गिलहरी पेड़ पर चढ़कर उस पतंग के साथ अठखेलियाँ कर रही थी ...तभी नीचे से माँ चीख पड़ी..." चुड़ैल ! आठ साल की गधी हो गयी तब भी ...... "

● ●

उस सिनेमा में काली देवी भी दिखाई दे रही थी। स्कूल ... सवेरे की स्कूल ... सुमन ने हडबड़ा कर आँखें खोलीं। सूरज की किरणें खिड़की से होकर भीतर आकर उसे मुँह चढ़ा रही थी " पगली पगली कहीं की। भला, इतनी देर तक भी कोई सोता है ! "

दौड़ते हुए ही वह नीचेवाले कमरे में आ पहुँची। पिताजी जल्दी जल्दी में नहा रहे थे, गुसल खाने से ही उन्होनें चीख कर कहा, " मेरे ट्रंक में दवाई की वह शीशी ज़रूर रखना... भूलना मत...अरे भाई, सुना तुमने ? "

जैसे तैसे कर, मुँह हाथ धो कर सुमन भीतर गयी। तौलिये से बदन पोंछते हुए पिताजी भीतर आये। माँ ने उनके सामने चाय की प्याली और तश्तरी में दो तीन बिस्कुट रख दिये। सुमन को भी एक प्याली कॉफी और एक बिस्कुट मिला। तभी नहाने के लिये जाते हुए जीजी ने चुपके से सुमन को चार उगलियाँ दिखा-कर कुछ इशारा किया। सुमन ने सोचा कि हर किसी को चार चार बिस्कुट मिले हैं और उसको मिला है सिर्फ़ एक। बस, उसके तन बदन में आग सी लगी। झल्लाकर, सामने रखी कॉफी की प्याली उसने एक ओर हटा दी और 'मैं भी चार बिस्कुट लूँगी' कह कर रोना, कुहराम मचाना शुरू कर दिया।

माँ ने उसे बिस्कुट का डिब्बा दिखाया। उस में एक भी बिस्कुट बचा नहीं था...सुमन ने हाथ पैर पटकाना शुरू कर दिया। तो क्या, भैया, जीजी, दीदी इन तीनों दुष्टों ने मिल कर बिस्कुट के पूरे डिब्बे पर हाथ मार दिया ! और उसके लिये सिर्फ़ एक ही बिस्कुट रख छोड़ा !

उसकी इस हरक़त से माँ भी गुस्सा हो गयी। कुछ क्रोध भरे शब्दों में ही उसे मनाने कोशिश की, लेकिन सुमन सुनना ही नहीं चाहती थी कि माँ क्या कह रही है। वह चाहती थी कि इस कॉफी की प्याली को ठोकर से एक ओर उड़ा दे और तश्तरी तोड़ कर चूर चूर कर डाले। अब इस एक इच्छा के अतिरिक्त अन्य किसी इच्छा के लिये उसके मन में स्थान ही नहीं बचा था।





पिताजीने बिस्कुटों की अपनी तश्तरी उसके सामने पटक दी ...। " यह डायन आजकाल बहुत ज़िद्दी हो गयी है। आठ साल की गधी हो गयी तब भी ... " माँ बुदबुदायी। सिर्फ़ चाय ही पीकर पिताजी जल्दी जल्दी में चल दिये। भैया आइने के सामने खड़ा होकर बालों में भाँग निकाल रहा था। दीदी चेहरे को पावडर लगा रही थी; जीजी हाथ में साड़ी लिये खड़ी थी। माँ ने उनसे कहा, " सुनो रे भाइयो, आज कल वह लड़की बड़ी शैतान बन गई है। इस के साथ आज से कोई बात चीत नहीं करेगा सब कोई इसका बाईकाट कर दो ...... "

वे तीनों भी कहकहे लगा कर हँस पड़े। जहरी तीन तीर सुमन के कलेजे के भीतर तक धँस गये। के वहाँ से उठकर चले जाने पर कुछ अभिमान भरे ढंग से उसने कहा, " अच्छी बात है। 'हमसे' कोई बात न करें! हमें एक ऐसी भी बात मालूम है, जिसे कोई नहीं जानता। हम वह किसीसे नहीं बतायेंगे। कोई हमसे न पूछे ... सिर्फ़ बर्तन माँजने वाली मेहेरी को ही हम ...... "

कुछ ही देर में बर्तन माँजने के लिये महरी आयी। यहाँ वहाँ किसीको न देख, सुमन उसके निकट गयी। आहिस्ता आहिस्ता वह उससे कुछ बता रही थी। मुँह में आँचल लगा कर वह हँसने लगी। बीच ही में विस्मित सी होकर वह पूछती है ... " ऐं? क्या कहती हो! " इस पर सुमन कहती है, " अरे हाँ! झूठ थोड़े ही कह रही हूँ! भगवान की कसम! " अब किस दशा में अपनी हँसी रोकना महरी के लिए असंभव था। उसका वह ठठाकर हँस पड़ना देख माँ हैरान रह गयी। वह उससे बार बार पूछने लगी कि आखिर बात क्या है; लेकिन महरी कुछ बताने के लिये कतई तैयार नहीं थी और न उसकी हँसी कम हो रही थी। जब महरी ने देखा कि माँ गुस्सा हो रही हैं। तब कहा, ... " आप बिटिया ही से पूछिये भाभीजी! " यह सोच कर कि अब माँ की अच्छी फजीहत होगी, गर्दन तान कर सुमन ने कहा " कलरात पिताजी के बिस्तर पर नहीं लेटी थीं तुम ...? "

यह सुनते ही, माँ गुस्से से आग का गोला बन गयी। खींचते, घसीटते हुए वह सुमन को भीतर ले गयी। घबड़ा कर, बैठे स्थान ही से मेहरी चीख कर कहने लगी, " अब छोड़ दीजिये ... अब बस भी कीजिये भाभीजी ... वह बच्ची है ... नादान है ... उसे मुआफ़ कीजिये ... " लेकिन माँ तो क्रोध के मारे बेकाबू हो गयी थी। गाल, पीठ, शरीर का जो भी हिस्सा दिखाई दिया, उस पर निर्मम होकर वह दनादन घूँसे मारती हो गयी अंत में सुमन को दरवाजे की ओर घसीटकर ले जाते हुए वह चीख पड़ी ... " चुड़ैल ... बदतमीज़ ... बदशऊर कहीं की ... चली जाओ ... मेरे घर से निकल जाओ ... " माँ ने सुमन को दरवाजे के बाहर ढकेल दिया और धड़ाम से दरवाजा बंद कर लिया।

● ●

आँसू भरी आँखों से सुमन ने उस बंद दरवाजे की ओर देखा। पलभर, उसके दिल के किसी गहरे स्थान में एक इच्छा हिलोरे मारने लगी कि दरवाजा खोल कर भीतर जाऊँ,— " माँ, मुझसे गलती हो गयी, मुझे मुआफ़ कर दो ... " कह कर, माँ के गले से लिपट जाऊँ और जी भर कर रो लूँ। लेकिन पल भर ही! दूसरे ही क्षण अपनी आँखों में डबडबाये आँसूओं को उसने पोंछ डाला। आँसूओं के बदले उन आँखो में अब शोले धधक रहे थे। उन में से निकलने वाली चिनगारियाँ कह रही थीं कि नहीं, अब तो वह इस दुष्ट माँ की सूरत तक न देखेगी। सुमन ने उस बंद दरवाजे की ओर देखा। जेलखाना! इस जेलखाने से उसका छुटकारा हो गया! बाहर की रूमानी दुनिया में आकर उसका मन झूम उठा। अब वह संतोष की साँस ले रही थी। कितनी खुशी की बात है!

तेज़ी के साथ वह कदम बढ़ा रही थी। आसमान में उड़ान भरने के लिये उसके दिल ने अपने डैने पर फैला दिये थे। अब वह चाहे उधर जा सकती है। मन माना कर सकती है। अब उसे कोई न रोकेगा, कोई न डाँटेगा, कोई नहीं पीटेगा। किसी मेम जैसी नाचती फुदकती वह रास्ते से जाने लगी। सामने वाली गली के मुँहाने पर एक सिनेमा घर था। वहाँ पर कोई नया सिनेमा आया हुआ था। रास्ते से आने जाने वाले लोग उस सिनेमा घर की दीवार पर लगे हुए विशाल चित्र की ओर देख रहे थे। सुमन के पैर वहीं ठिठक गये। उस चित्र में दिखाई देने वाली स्त्री अतीव सुंदरी थी; चार पाँच साल की अपनी बच्ची को कलेजे से चिपकाये वह उससे प्यार कर रही थी, उसे चूम रही थी। सुमन को लगा कि उसकी माँ इस तरह रूपवती नहीं है, और इसी से वह उसका प्यार नहीं करती, उसे नहीं चाहती। लेकिन तुरंत ही अपने दिल को इस बात का स्मरण दिलाकर कि उस दुष्ट माँ का अब उसे स्मरण तक नहीं करना चाहिये, वहाँ से वह चल पडी।

वहाँ से कुछ ही फासले पर एक उड़पी होटल था। उस होटल में ग्राहकों का ताँता सा बंधा था। ग्रामफोन गा रहा था, " ओ दूर जाने वाले ऽऽऽ वादा न भूल जाना ... " यह गीत सुमन को अत्यंत प्रिय था। दो महीने पहले, एक रोज उसने पिताजी से ज़िद पकड़ी थी कि इस गीत का रिकार्ड खरीदा जाय; और पिताजी ने हमेशा के अनुसार यह कह कर कि 'रुपये पेड़ों में नहीं फलते' उसे दुत्कार दिया था।

गीत की उस मधुर सुर – सरिता में उसका दिल थाह लगाने लगा। लेकिन यह खुशी केवल दस पाँच ही पल रही। उसे प्रतीत होने लगा कि जैसे ग्रामोफोन की चाभी खत्म हो चुकी है और अब वह नहीं बजेगा।

लेकिन वास्तव में बात यह नहीं थी। उसके नथूने दूकान से महकने वाली कॉफी की मधुर खूशबू को सूँघ रहे थे। उसी खुशबू के गिर्द उसका दिल चक्कर काट रहा था।

सहसा उसे याद आया कि आज सबेरे से उसने कॉफी तक नहीं पी है। होटल में जाने के लिये उसका मन ललचाने लगा। उसने सोचा, काश कलवाली इकन्नी आमरूद खरीद ने में वह फिज़ूल खर्च न कर डालती।

खैर, कॉफी न सही, वह पानी ही पी कर दिल की तसल्ली कर लेगी। इस निश्चय के साथ वह नदी की ओर चल पड़ी। नदी

वहाँ से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर थी। सुमन घाट पर पहुँची तब उसे थकान सी महसूस होने लगी। बिना पानी ही घाट की एक सीढ़ी पर वह बैठ गयी। दिल के साथ ही साथ, अब उसके तमाम बदन में दर्द हो रहा था। नदी के जल में खड़ी होकर कुछ औरतें कपड़े धो रही थीं। पत्थर पर कपड़ों के पटकने से होने वाली एक अज़ीब सी आवाज़ उसे लगातार सुनाई देने लगी। कपड़ों का वह पटकना सुमन से देखा नहीं गया। उस दृश्य को देखते हुए, उसके मन में यही एक एक ख्याल रह रह कर आ रहा था कि इसी तरह निर्मम होकर उसे आज माँ ने पीटा है। उसने आँखें बंद कर लीं। उस अज़ीब सी आवाज़ की लय प्रतिपल बढ़ती ही जा रही थी। फटक--फटक--मानों कहीं पर एक साथ अनगिनत सुरंग लगाए हुए थे। वायु मंडल में पत्थर तेज़ी से उड़ रहे थे--और एक गहरा--बहुत ही गहरा गढ़ा तैयार होता जा रहा था।

सुमन खट् से उठ खड़ी हुई। तेज़ी से सीढियाँ उतरकर वह नदी के प्रवाह तक जा पहुँची। नदी का जल मंथर मंथर गति से बह रहा था। पानी के इरादे से वह नीचे की ओर झुकी। चुल्लू में उसने पानी भर लिया। लेकिन पानी पीने की उसकी तबीयत नहीं हो रही थी। उसकी आँखों के सामने तो, पानी में डूब कर मरी सुमन की लाश दिखाई दे रही थी। उस लाश को अपनी बाँहों में भरकर वह दुष्ट माँ आर्त स्वरमें करूण चीत्कार के साथ विलाप कर रही थी और सुमन, मारे खुशी के तालियाँ पीटते हुए, चीख चीख कर कह रही थी, 'रो, लो -- और भी जी भर कर रो लो! लेकिन -- लेकिन -- क्या, कहीं लाश भी मारे खुशी के तालियाँ पीट सकती है?

"अरी ओ बिटिया, --" बाँह से पकड़ कर सुमन को खट् से पीछे की ओर खींचते हुए कोई उसपर चीख पड़ा। वह एक पोपले से मुँह बिना दांतों वाली बुढ़िया "पानी में कहाँ जा रही हो बिटिया! क्या जल में डूब मरना चाहती हो?... क्या तुम्हारे माँ बाप कोई नहीं है...?"

सुमन का जी चाहने लगा कि उस बुढ़िया से लिपट कर जी भर कर रो लें, उस के सामने अपना कलेजा निकाल कर रख दें। लेकिन उस के दुख दर्द की कहानी सुनने के लिये उस बुढ़िया को कब फ़ुरसत थी! वह तो तुरंत ही जल्दी जल्दी में कपड़े धोने के अपने काम में दुबारा व्यस्त हो गयी थी।

सुमन ने जी भर कर पानी पीना शुरू किया... वह और पानी पीना चाहती थी... और -- और भी... यहाँ तक कि पानी पीकर उसका पेट फट जाय -- पानी पी लेने के बाद वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। देहात से सौदा सुलूक के लिये आये हुए एक दो ग्रामीण घाट की एक ओर बैठकर कलेवा कर रहे थे। एक मारियल सा कुत्ता जुबान को लपलपाते हुए, ललचाई निगाहोंसे उनकी ओर देखते हुए आहिस्ता आहिस्ता आगे की ओर बढ़ने की कोशिश कर रहा था। किसीने रोटीका एक टुकडा उसकी ओर फेंक दिया। कुत्ता इस खूबी के साथ रोटी के टुकडे पर लपक गया कि सुमन ने सोचा, कि यदि वह कुत्ता कबड्डी के खेल में हिस्सा लेता तो जरूर ईनाम पा कर रहता।

आगे की ओर बढने के लिये उसका मन छटपटाने लगा। लेकिन उसके पैर वहीं पर ठिठक गये थे। एक मैले से कपडे पर खोल कर रखी उस काली कालीसी, जलीसी, रोटी पर उसकी आँखें गड गयी थीं। आईने की भाँति जगमगानेवाले थाल में, माँ के परसे हुए गर्मा गर्म भात की, उस पर परसी जायकेदार दाल पर छोडे हुए खुशबूदार घी की उसे याद हो आयी। उस बढ़िया सोंधी सोंधी महक उसके नथुनोंमें......

राजमहल में रहने वाला ध्रुव उस सोंधी महकसे वंचित थोडे ही रहा होगा? लेकिन इन सभी छप्पन्न भोगोंको ठुकरा कर वह घोर अरण्य में चला गया। हाँ—वह भी ध्रुव की तरह...

भगवान् उसकी तपस्या से जरूर खुश होंगे — प्रसन्न होंगे। इस ऊपर वाले मंदिर में जाकर 'नारायण, नारायण' की रट लगाते हुए वह बैठी रहेगी। जब तक स्वयं विष्णु भगवान प्रकट होकर उसे वरदान नहीं देंगे तब तक...

जल्दी जल्दी में सीढियाँ चढकर वह मंदिर के भीतर गयी। वहाँ उसे कोई दिखाई नहीं दिया। उस सूने सूने से मंदिर की ओर देख कर उसके दिल में प्रसन्नता की एक लहर सी दौड गयी। दर्शन के लिये आने जाने वाले लोगों की तकलीफ से बचने के लिये उसने बिलकुल एक ओर का एक कोना पसंद किया। वहाँ पर काफ़ी अंधेरा भी था। उस कोने में जाकर, आसन लगाये वह बैठ गयी और आँखें बंद कर, 'नारायण, नारायण' रटने की कोशिश करने लगी। लेकिन उसका मन तो रह रह कर, फ़ुर्र से उड़कर, घर ही की ओर उड़ाने भर रहा था। क्या पिताजी गाँव चले गये होंगे? कहीं उनकी संदूक में दवाई की शीशी रखना माँ भूल तो नहीं गयी? भैया का स्कूल दोपहर का है। अब वह क्या कर रहा होगा? जीजी और दीदी दोनों स्कूल चली गयी होंगी। क्या वहाँ पर वे उसे याद कर रहीं होंगी? और माँ... मा अब क्या कर रहीं होंगी? माँ -- उसके अपनी माँ --?

लेकिन तुरंतही, उसका दिल दुबारा तिलमिला उठा! दिल में धधकनेवाले शोले उस से कह रहे थे कि नहीं, वह उसकी अपनी माँ नहीं है! लेकिन तभी दर्द से कराहनेवाले और अलसाये हुए उसके शरीर ने, नींद की गोद में सो जाने लिये करवट बदली और तभी उसके मुँह से एक हल्की सी चीख निकल पड़ी —माँ!

"माँ -- माँ"

सुमन को स्पष्टतया आभास हुआ कि माँ को बुलाने के लिये ही, उस के मुँह से वह चीख निकल पड़ी है। अपने बेशर्म, बेहया दिल पर वह बेहद झुँझला पड़ी। गुस्सा भरी निगाहों से नज़र दौड़ाकर उसने सामने की ओर देखा। एक नन्हीं सी लड़की अपनी माँ को आवाज़ दे रही थी। माँ की गोद में चढ़कर, गर्भगृह के द्वार पर लगा घड़ियाल, वह बजाना चाहती थी। अब कहीं सुमन को स्मरण हो आया कि वह तो इस वक्त मंदिर ही में है। वह झट् से उठी और मंदिर के बाहर आ पहुँची। सूरज ठीक माथे पर पहुँच कर आग बरसा रहा था। बाहर लू चल रही थी। सब

दृष्टि यूँ दिखाई देती थी, मानों ज्वर में ग्रस्त कोई म्लान — मुख व्यक्ति कराह रहा हो, छटपटा रहा हो।

ऐसी तेज लू में वह कैसे बाहर जा सकती है। और आखिर वह किधर जायेगी ?

किधर ?

अपने घर ?

नहीं, हरगिज़ नहीं। तब ?

सुमन पीछे लौटना चाहती थी, लेकिन अब उस के पेट में न जाने कैसी, एक बेनाम सी कुलबुलाहट हो रही थी। बदन का दर्द, दिल की जलन, डाह आदि सब का उसे जैसे विस्मरण हो गया था। इस वक्त तो बस, खाने के लिये उसे कुछ मिल जायें। बिस्कुट ? चिवड़ा ? नहीं। जो कुछ भी मिल जायें, वह प्रेम से खा लेगी।

लेकिन कैसे मिलें ? और कौन देगा ?

तो क्या इस के लिये उसे घर जाना होगा ? उस जेल खाने में ? सिर झुकाकर ? क्या उसे माँ से माफ़ी माँगनी होगी ?

नहीं, हार्गिज नहीं। तब किसी सहेली के घर जायें तो ? या उस शकी के यहाँ —

लेकिन कल ही तो, आमरूद दिखाते हुए शकी को उसने धता बताया है। तब आखिर जायें तो कहाँ जायें ! हाँ ! उसके स्कूल के अहाते में ही, माली चाचा का मकान है। कुछ ही दिनों पहले उसके पुराने फ्राक माँ ने माली की बीमार लड़की को दिये थे। माली चाचा कितना अच्छा आदमी है ! जब भी कभी उससे मुलाक़ात होती है तब पहले तो वह मुस्कुरा देता है। और बाद में स्नेह तिक्त स्वर में आवाज़ दे कर कहता है— "सुमन बिटिया ...।" वह तो उसे हमेशा 'सुमन बिटिया' कहा कहता है। 'डायन,' "नट खट कहीं की", 'चुडैल', 'आठ साल की गधी' इन जैसे जहरीले शब्दों का उसके लिये वह कभी प्रयोग नहीं करता। किसी दिन नहीं। भूल कर भी नहीं ? हाँ उसी के यहाँ कह जायेगी। खाने के लिये उसे रूखा सुखा कुछ तो वह जरूर देगा। वहाँ पर कुछ नाश्ता कर लेने के बाद वह सीधे स्टेशन जायेगी और रेलगाडी में बैठकर कहीं दूर ... बहुत दूर ... ...

सुमन हैरान थी कि इतनी दूर का रास्ता काट कर वह स्कूल तक कब और कैसे आ पहुँची। उसने यूँ ही एक नजर अपनी कक्षा की ओर देखा। वहाँ पर खिडकी के बाहर माली का वही दुष्ट बिल्ला अपनी मूछों पर ताव देने में व्यस्त उसे दिखाई दिया। क्रोध से सुमन का चेहरा तमतमा उठा। उसने एक छोटासा पत्थर उठाया और निशाना साध कर बिल्ले की ओर फेंका। लेकिन उसका निशाना ग़लत था। मूँछों की साफ़ सफ़ाई अच्छी तरह हो जाने के बाद, गर्दन उठाकर, खिड़की से झाँक कर — वह दुष्ट भीतर की ओर टकटकी बाँधे न जाने क्या देख रहा था......।

सुमन दबे पैरों से उसके निकट गयी। उसकी आहट पाते ही वह बुरी तरह चौंक पडा और झट् उछल कर उसकी आँखों से ओझल हो गया। उसकी उस घबराहट और बुझदिलीको देख सुमन अनजाने ही मुस्कराने लगी—

लेकिन वह मुस्कराहट होठों पर प्रस्फुटित होने भी न पायी थी कि वहीं की वहीं विलीन हो गयी। उसकी निगाह कक्षा के छत के कोने की ओर गयी। वह चौडी सी दरार — जहाँ पर चिडियाँ ने अपना घोंसला बनाया था, वहीं पर बैठ कर, उन नन्हें मुन्हें चेहुओं की माँ इस वक्त छटपटा रही थी। लगातार अपने प्ररों को फड़ फड़ा रही थी। सुमन हैरान थी कि वह चिडियाँ घोंसले में, अपने बच्चों के पास क्यों नहीं जा रही है —!

सहसा उसकी निगाह फर्श की ओर गयी। कई चीजें वहाँ पर अस्त व्यस्त बिखरी पडी थीं। तरह तरह के तिनके, नन्हीं नन्हीं टहनियाँ, सूखी घास, कच्चा धागा, नाज़ुक कपास...उस सफ़ेद सी कपास में मिले उन भुरीले रंग के — सन के रेशे —

"कौन है वहाँ पर।" सख्त आवाज़ में कोई पुकार पडा। सुमन ने चौंक कर पीछे मुड़ कर देखा। तुरंत उसके कानों को माली के शब्द सुनाई दिये। "ऐं ! सुमन बिटिया, तुम ? —"

सुमन दौड़ती ही उसके निकट गयी और उसे खींचते हुए खिड़की के निकट लाकर उसने कहा, "माली चाचा, देखो न, इस चिडियाँ को क्या हो गया है। वह अपने पर इस तरह क्यों फडफड़ा रही है ?"

"क्या बताऊँ, तुम्हें बिटिया, वह बेचारी आज अपने नन्हें मुन्नों को खो बैठी है"

"खो बैठी है...?"

"हाँ"

"तो क्या, वे सब के सब कहीं उड़ गये ?"

"हाँ !" चिड़िया की घबड़ाहट और उसकी दयनीय दशा देख कर अनजाने ही माली चाचा ने कह दिया।

यह जानने के लिये सुमन अब उत्सुक थी कि चिड़ियाँ भी उड़ते उड़ते बंबई तक जा सकती है ?

एक ठंडी आह भरकर माली ने कहा, "शायद इन्हें चुगाने के लिये, दाने की खोज में चिड़ियाँ कहीं चल गयी होगी, और मौक़ा पा कर, यहाँ इस कम्बख्त बिल्ले ने ..."

सुमन की आँखों में घबड़ाहट और दुख से मिले जुले भाव तरंगित होने लगे। चिड़ियाँ के वे बच्चे अपने आप नीचे गिर पड़े, या क्लास की शरारती लड़कियों में से किसी ने उन्हें घोंसले से बहार खींच निकाला, या किसी तरकीब से, वहाँ तक पहुँच कर इस दुष्ट बिल्ले ने उनका काम तमाम कर दिया; यह किसी तरह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। चिड़ियाँ की उस अज़ीब सी छट — पटाहट को देख उसका समूचा कौतुहल न जाने कहाँ हवा हो गया। उसने देखा कि वह चिड़ियाँ उस दरार तक जाती, आर्त स्वर में चुहकने लगती, बाद में दुबारा, चिपगाहड़ की भाँति इस दीवार से उस दीवार तक, पंख फड़फडा कर उड़ते हुए चली जाती, तुरंत हा और उसे कुछ याद हो आता, और वह दुबारा घोंसले की आर लौट आती—

इस दृश्य को देख कर सुमन का कलेजा मुँह को आने लगा। भर्रायी सी आवाज़ से सुमन ने कहा, "माली चाचा, क्या वह चिड़ियाँ नहीं जानती कि उसके बच्चे मर चुके हैं ?"





" जानती क्यों नहीं बिटिया ! लेकिन बात यह है कि ... "

पथरायी निगाहों से सुमन माली चाचा की ओर देख रही थी। वह कह रहा था, " बात यह है बिटिया, कि वह बेचारी माँ है, और माँ की ममता बड़ी अजीब होती है ... "

आँखों में छलछलाये आँसुओं को अंगोछे के छोर से पोंछते हुए वह सहसा चौंक पड़ा। कहा, " अरे ! मैं भी कैसा अहमक हूँ। इतनी बड़ी बात तुमसे बताना भूल ही गया ! अरे बिटिया, आज सबेरे से तुम थी कहाँ ? तुम्हारी तलाश में तुम्हारा भैया था। तुम्हारी दोनों बहनें भी आकर गयी और कुछ ही समय पहले, इस घोंसले में चिड़ियों की फडफड़ाहट सुन, यह देखने के लिये कि क्या बात है, मैं भीतर, इस क्लास में आया था, तब मा जी भी यहाँ पर आयी हुई थीं —— "

" माँ — मेरी माँ ! क्या माँ यहाँ पर आयी थी। मेरी तलाश में ? "

माली चाचा ने हाँ में सिर हलाया और सहसा सुमन सिसक कर रो पड़ी।



माली चाचा की उंगली पकड़ कर घर लौटते हुए उसने दूर ही से देखा ...। बरामदे में ही, दरवाज़े से सट कर, माँ खड़ी थी। फटी फटी सी निगाहों से वह चारों ओर देख रही थी। सामने बायें -- दाहिने -- उसे देखते ही, सुमन को कुछ ही देर पहले देखी चिड़ियों की याद हो आयी। माली चाचा के हाथ से सुमन ने झट् अपनी उंगली छुड़ा ली और दौड़ते हुए वह घर की ओर लपकी। उसे देखते ही, उसे अपनी बाहों में भर लेने के लिये दोनों हाथ फैला कर माँ ने व्यथित स्वर में पुकारा, —" सुमन ! " उस पुकार में कितना प्रेम था, कितनी मधुरिमा ! मानों सुदूर कहीं से, अनगिनत गायें बिछडे हुए अपने बछड़ों से मिलने के लिये आकुल स्वर में रँभा रही थीं। रँभाते हुए उनके गले में लटकने वाले घुंगरूओं की मंजुल ध्वनि से वायु मंडल गूँज रहा था और चारों ओर, एक अजीब सा समाँ बँध गया था।

माँ के आँचल से आँखें पोंछते हुए सुमन भीतर आयी। बीच वाले कमरे में उसने देखा, सुबह की कॉफ़ी की वह प्याली और बिस्कुट अब तक वहीं पड़े थे। इसके कुछ ही फासले पर दीदी के कैरम बोर्ड के ऊपर, जीजी की साड़ी रखी हुई थी। उस साडी के ऊपर ही भैया का फौंटनपेन भी रखा दिखाई दे रहा था सुमन हैरान थी कि आज से तीनों चीज़ें इकट्ठा कैसे दिखाई दे रही हैं। पलभर उनकी ओर टकटकी बाँध कर वह देखती ही रही। तभी, प्यार से उसकी पीठ थपथपाते हुए माँ ने कहा, " तीनों भी तुम्हें तलाश करने के लिये बाहर गये हैं ... और तुम्हारे लिये ये तमाम चीज़ें भी यहाँ पर छोड़ गये हैं — "

सुमन ने रसोई घर में झाँक कर देखा। सिर्फ़ तीन ही झूठी थालियाँ दिखाई दे रही थीं। तो क्या, माँ अब तक — भर्रायी सी आवाज में उसने पूछा, " हाँ, तो क्या तुमने अबतक खाना नहीं खाया ? "

माँ सिर्फ मुस्करा दी और पलभर के बाद कहा, " तुम्हारे पिताजी अबतक भूखे ही होंगे। डेढ़ बजने पर गाडी बेलगाँव पहुँचेगी। पेट में दर्द था, इसलिये कल रात भी उन्होंने कुछ नहीं खाया। रात में बड़ी देर तक, गरम पानी से मैं उनका पेट सेंक रही थी। "

सुमन की निगाह बीचवाले कमरे में तश्तरी में रखे तीन बिस्कुटों की ओर गयी। कितनी दुष्ट है वह ! उसकी जिद के कारण पिताजी को सिर्फ़ चाय पी कर ही गाँव जाना पडा ? कल रात भी उन्होंने कुछ नहीं खाया है। उनकी गाडी बेलगांव डेढ बजे पहुँचेगी। तब तक उन्हें भूखा ही रहना पडेगा। इन सब विचारों के कारण उसका दम सा घुँटने लगा। मानों गोते लगाते हुए वह गहरे पानीके बीच डूबती हो चली जा रही थी।

" जरा यहीं बैठो। तुम्हारे लिये मैं गर्मा गर्म कॉफी बनाती हूँ। " माँ के शब्द उसे सुनाई दिए। लेकिन जैसे उन शब्दों का मतलब ही उसकी समझ में नहीं आया। दौडते हुए वह दौतल्ले वाले कमरे में गयी। वहाँ पर लगी पिताजी और माँ की तसवीर के सामने खडी हो कर, हाथ जोडने की उसने कोशिश की, लेकिन उसके हाथ बुरी तरह थर्राने लगे। उस तसवीर के सामने उस से खडा नहीं रहा गया। पागल की भाँति वह ऊपरवाले सभी कमरे में, इस कमरे से उस कमरे तक चक्कर काटने लगी। मानों वहाँपर कोई

अजनबी थी और उन तीनों कमरों को आज पहले पहल देख रही थी। उन में से हर कमरे में उनके प्रति माता पिता का असीम प्यार छलकता उसे दिखाई दिया। वह झूला — बचपन में एकबार उसे बडे ही जोरों का बुखार हो आया था — तब पिताजी रात भर झूला देते हुए उसके निकट बैठे थे। कोने में रखी वह साइकिल... उसपर बिठाकर पिताजी उसे बगीचे में सैर के लिये ले जाते थे— जब वह बकैयाँ चलती थी, उस वक्त की उसकी यह तसवीर— माँ की गोद में किस शान से वह बैठी है वह?

उसके मस्तिष्क में स्मृतियों की एक आँधी सी चलने लगी। सहसा मिठाई — खिलौने, — कुर्सी, — गद्दे — किताबें—कपडे, दवाइयाँ, सभी चीज़ें जानदार हो उठीं। एक दूसरे के हाथ में हाथ डाल सुमन की आँखों के सामने से वे नाचते गाते, झूमते, मदमाती चाल से जाने लगे। सिनेमा के चित्रों की भाँति उनके रूपों में तेज़ी से परिवर्तन होता रहा था। कुर्सीने तिनकों का रूप धारण किया। खिलौने सूखी टहनियों में बदल गये। गद्दों के भीतर से कपास निकल कर, कमरे में चारों ओर फैल गयी और अलमारी में रखे सुंदर सुंदर वस्त्र — अरे, कहाँ है वस्त्र! वह तो सूत का कच्चा धागा — सुमन अपने मकान में नहीं थी। चिड़ियाँ के एक घोंसले में वह छिपकर बैठी थी। उस घोंसले के इर्द गिर्द माँ बार बार चक्कर काट रही थी — तड़प रही थी — छटपटा रही थी —

सुमन दौड़ती हुई माता पिता की तसवीर की सामने जा खड़ी रही। उस की नन्हीं सी देह तूफ़ान की कली की भाँति थर्रा रही थी — काँप रही थी! उस तसवीर के सामने हाथ जोडते हुए उसने कहा, "नहीं, पिताजी: नहीं! मैं इस तसवीर को कभी न तोडूगी — "

"पगली!, यह सब क्या बक रही है!" माँ की आवाज उसे सुनाई दी! कॉफी की प्याली को खिड़की में रख कर, और सुमन को अपने निकट खींचकर उसने कहा, "पगली कहीं की! यह टूटी भी है? — "

माँ की गोद में मुँह छिपाते हुए सुमन ने कहा, "मैं पगली नहीं हूँ माँ! मैं नटखट हूँ — मैं बहुत बुरी हूँ, दुष्ट हूँ — "

दूसरे ही क्षण माँ की गोद से वह दूर हट गयी, और शांति — पूर्ण स्वर में उसने कहा, "माँ, मुझे सज़ा दो — पीटो — जी भरकर पीटो —।" यह सोचकर कि कहीं इस लड़की का दिमाग़ तो खराब नहीं हो गया, यह पागल तो नहीं हो गयी, डरी सी निगाहों से माँ उसकी ओर देखने लगी।

"—माँ, तुम सच भी मुझे सज़ा दो! बिलकुल कल के जैसी। मैं सजा के काबिल हूँ! कल तक पर रखी इकन्नी मैं ने ही चुराई थी। — "

सुमन ने दुबारा माँ की गोद में मुँह छिपा लिया। अथाह प्यार से उसे अपने निकट खींचकर माँ ने उसका मुख ऊपरकी ओर उठाया। और आँसुओंसे छलछलायी उन आँखों को आहिस्ता से चूम लिया।

सुमन का समूचा दुख जाने किधर भाग गया! अब उसके गाल में दर्द नहीं हो रहा था न उसका बदन टूट रहा था, और न ही उसे भूख लगी थी। अब वह काली छछूँदर नहीं थी, वह तो इस क्षण बिल्कुल सफ़ेद सी एक खरगोश में बदल गयी थी।

माँ ने दुबारा उसके होठों पर अपने होंठ टिका दिये। सहसा अपने नन्हें मुन्नों की चोंच से चोंच लगाने वाली वह चिड़ियाँ सुमन की आँखों के सामने दिखाई देने लगी। माँ की गोद के गिर्द बाहें डाल कर उसने कहा, "माँ, अब मैं कभी तुम से नाराज़ नहीं होऊँगी! मुझे कितना भी पीटने पर कभी मैं घर से न कहीं बाहर चली जाऊँगी — "!!

● ● रूपान्तरकार : *माणिकलाल परदेसी*

का ग ज के फू ल



अ न न्त कु मा र पा षा ण

मैं ने अनन्त बार प्यार किया है,
पाप के अंगूरी कंगूरों की छाया में अभिसार किया है !
मगर एक सीटी-सी उस उत्तप्त अनुभव की अब केवल शेष है,
जैसे टूटा रिकॉर्ड बाजे पर एक ही वाक्य को
बार-बार कहता हो —
" तुम हो देवी, मुझे तारने को मिली हो !
तुम हो देवी, मुझे तारने को मिली हो !
तुम हो देवी !...... "
कॉफ़ी का ठंडा घूँट और फिर बिहार का वह पीला छोकरा
ही—ही हँसता हुआ !
बसों में, ट्रेनों में, भीड़ और भड़क्के में किसी से सटे-सटे
मैं ने ज़मीन की लम्बाई नापी है। . . .
चौमहला चुम्बन ले छूआ है तृप्ति-गगन,
सिगरेट के धूएँ में डरावनी आकृतियाँ बन-बन कर
मिट जाती देखी हैं !
रात दस बजे के बाद पज़मुर्दा होटल के कमरे में
घूम-घूम पंखे का चक्करदार हवा के
साये में बैठ कर, अपने रूमाल से बिलावजह होठों को रगड़कर
एक ठंडी सांस ले बोली हूँ–" उफ़ ! "
और फिर–" क्यों ? क्या हुआ ?" " नहीं, कुछ नहीं ! "
" नहीं ! नहीं ! " " नहीं ! नहीं ! कुछ नहीं ! "
" फिर भी तो ! " " अरे, यही ज़िन्दगी ! "
" हाँ, हाँ, क्या ज़िन्दगी ! " " अरे, कुछ भी नहीं ! "
और फिर काग़ज़ के फूलों-सी एक मुरझाती हँसी
सिमट कर रह गयी है ! . . .
वक़्त, मैं सोचती हूँ, कितना डरावना है !
आता है, जाता है, याद रह जाती है ! . . .
" कल मैं ' मैं ' न था, मुझे माफ कर दोगी ?"
और फिर क्षमा का गौरव है, अधकचरा क्षोभ है,
कलेजे पर छोटी-सी एक हरी फुन्सी है !
मैं ने अनन्त बार प्यार किया है ! . . .
ज़िन्दगी के टुकडों को बार-बार चिपका कर खड़ा किया है !
" ओः, दो कप आइसक्रीम ! " " नो, नो, थैंक्स ! "
" क्यों-? " " यों ही ! " " फिर भी क्यों ? "
" मुझे कल रात से सख्त खाँसी है !
" ठीक है समन्दर पर चलते हैं ! " " सब ठीक हो जायेगा ! "
और फिर सब ठीक हो गया है !
सीमेंट के कलेजे पर आँसू को डाल-डाल सख्त बनाया है।
प्यार में आँसू ही होते हैं, हँसना भी रोना ही होता है।
घडियों से बँधे-बँधे चौड़े फैले हुए दफ्तर में बार-बार
जा-जा कर निकली हूँ।
वहाँ एक मातम था, यहाँ एक मातम है।
जलते चिराग़ की लौ भी दुर्घटना है। . . .
जिस गोल दुनियाँ में रह-रह कर मैं ने साँसों को घसीटा है,
वह गोल दुनियाँ भी एक दुर्घटना है।
जीवन भी एक दुर्घटना है ! मैंने सब अपनी आँखों देखा है !
मैं ने अनन्त बार प्यार किया है। . . .
क्योंकि और करने को था भी क्या ?
ज़िन्दगी थी सुबह--शाम और फिर ज़िन्दगी थी . . .
जो चाहती थी कि मैं कुछ करूँ !
कैसे - कैसे लोगों ने मुझे प्यार किया है !
मेरा बाप ज़िन्दा होता तो कितना उदास होता !
देसी अद्धा चढ़ा कर सो जाता।
खिड़की से आती पुरज़ोर हवा से
कैलेंडर फड़फड़ कर उठता है —
वक़्त कम्बख्त उड़ने की फ़िराक़ में है !
बारिश के दिनों में नैफ़थलीन और रेनकोट की रबर जैसी गंध से
पूरित उन कोटों में ट्वीड़ के मुँह अपना छिपा कर
रोयी हूँ — चाहा है —
मेरा भी घर हो, पति हो ओर बच्चा हो !
मगर फिर ! . . .
शाम की फ़ीरोजी रोशनी को स्याह पड़ते देखा है,
मिट्टी की छोटी-सी मुट्ठी में
बड़े बड़े पहाड़ों को आह भरते देखा है !
और फिर सोचा है—
मुझे प्यार करनेवाले सब मेरे बच्चे हैं ! मैं उनकी माँ हूँ !!
और मैं खिलखिला कर हँस पड़ी हूँ !
" क्यों, क्या हुआ ?" " कुछ नहीं !" " कुछ तो !" " कुछ नहीं !"
मेरी ही आफ़िस में बम्बई के पास के किसी अनजाने
गांव का एक लडका है !
सदा मेरी मदद को तत्पर रहता ही है !
और फिर लजाता है !
काश, मैं उससे... मगर फिर रात है !
एक नहीं, सैंकडों, हजारों, अंधियारी रातें हैं !
वह अपनी माँ के साथ अकेला ही रहता है
यहीं किसी ' चॉल ' में ! सब उससे खुश हैं !
वह न कभी खुश और न कभी नाखुश है !
वह तो बस है, जैसे यही बहुत है ! . . .
और मेरे सामने बीते हुए सालों के ढेर हैं—
पान की पीक से रँगे हुए हँसते हुए दाँतों के ढेर हैं—
सिग्रेट से पीले पड़ जानेवाले मसूड़ों के ढेर हैं—
नीले काग़ज़ पर लिखे पत्रों के ढेर हैं—
सैकण्ड शो के सिनेमा के फटे हुए टिकट हैं—
प्लास्टिक की रकाबियों में केक का चूरा है—
हँसती हुई चालबाज़ आँखों के ढेर हैं—
और नीचे दबा दम-सा तोडता हुआ गाँव का वह लड़का है—
बचपन में उसने पनहारिन की लडकी से जाने थे प्रकृति के
भेद और नियम सब ; मरने के पहले वह दो बातें कह कर
दिल हल्का कर लेना चाहता है —
पहली बात, वह पापी है—
और दूसरी बात—
" तुमसे मुझे प्रेम है ! "

● ●

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

असित – सित मेघोंकी
विस्मयकारी आकृतियों से
विनिर्मित,
आत्मा के अमर सौन्दर्य का
शाश्वत गायक —



रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रामगिरि से लेकर हिमालय तक प्राचीन भारतवर्ष का जिस दीर्घ अखंडता से मंदाक्रांता छन्द की तरह जीवन-स्रोत प्रवाहित हो चुकी है, उससे केवल वर्षाकाल में नहीं, चिरकाल के लिये हम निर्वासित हो चुके हैं। वहाँ, जहाँ के उपवन में केतकी पुष्पों की शोभा थी और वर्षाके समय ग्राम्यचैव में गृहवलिभूक पक्षी अपने नीड़ बनाने में महाव्यस्त हो उठे थे, और गाँव की सीमापर जामुनके फल पक कर काले मेघ की तरह उभर उठे थे, वह दशार्ण कहाँ? और वहाँ, जहाँ अवन्ती में गाँव के वयोवृद्धगण उदयन और वासवदत्ता की कहानी कहते थे, वे लोग ही कहाँ? और वह क्षिप्रातटवर्ती उज्जयिनी? उसकी विपुलता श्री, ऐश्वर्य और विस्तारित विवरण से हमारी स्मृति भराक्रान्त नहीं है—यह तो केवल हर्म्य-वितायान से पुरवासियों के कक्ष संस्कार की धूप की सुगंध आ रही है, और रात में जब भवनों के पारावार सो जाते हैं, तो विशाल जनपूर्ण नगरी के परिव्यक्त पथ प्राकार प्रकांड सम्पुष्टि मन में अनुभव करते हैं; और उस रुद्धद्वार राजधानी के निर्जन राजपथ के अंधःकार में कम्पित हृदय व्याकुल चरणों से जो अभिसारिका चल रही है उस की थोडी सी छांया जैसी दीख रही है।

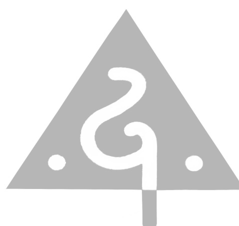
इस प्राचीन भारतखंड की नदी, गिरी, नगरी के नाम भी कितने सुंदर हैं! अवन्तीविदिशा, उज्जयिनी, विन्ध्या, कैलास, देवगिरी, रेवा, क्षिप्रा, वेत्रावती! इन नामों में एक शोभा, संभ्रम और शुभ्रता है! समय की गति में तब से मलीनता आ गई है, उसकी भाषा में व्यवहार और मनोवृत्ति में मानों जड़ता और अपभ्रंशता आ गई है! अब के नाम भी वैसे ही है। यदि आज, क्षिप्रा, निर्विंद्या नदी की तीरवर्ती अवन्ती विदिशा में जाने का कोई भी रास्ता रहता तो आज भी फैली हुई मलीनता से पदत्राण मिलता!

अतः, यक्ष का जो मेघ नंदन-नगरी के ऊपर से उड़ा जा रहा है, पाठक का विरह कातर दीर्घश्वास ही उसका साथी है। उस कवि का भारत वर्ष, जहाँ की जनपद-वधुओं के प्रीतिस्निग्ध लोचन भ्रुविकार नहीं जानते और परवधुओं के भ्रुक्तता-विभ्रम से परिचित कृष्णनेत्रों से मधुकर श्रेणी की तरह कुतूहली हो चुके हैं, अब कवि के मेघ को छोड़कर वहाँ किसी को दूत बनाकर नहीं भेजा जा सकता।

किसी अंग्रेज कविने कहा है, मनुष्य एक-एक विच्छिन्न द्वीप की तरह है। दूर से जब भी हम एक दूसरे को देखतें हैं तो ऐसा लगता है कि कभी हम सभी एक ही महादेश में थे, अब न जाने किसके अभिशाप से विच्छेद का विलाप उठ खड़ा है। हमारे इस कालसमुद्रवेष्टित क्षुद्रवर्तमान से जब काव्यवर्णित उस अतीत भूखंड के तट की ओर देखते हैं तो ऐसा लगता है कि, उस क्षिप्रानदी के तीर पर जो रमणियाँ यूथीवत से पुष्प प्रणय करती, अवन्ती के नगर में जो वृद्धगण उदयन की कहानी कहते और आषाढ़ के प्रथम मेघ देखकर जो प्रवासी अपनी पत्नी के लिये विरह से व्याकुल होते थे उन में और हम में मानों एक संयोग रहना चाहिए था! उनमें मनुष्यत्व का निविड़ ऐक्य हैं, लेकिन काल का निष्ठुर व्यवधान भी है। कविने उस अतीत काल को अमर सौंदर्य की अलकापुरी बना दी है। हमने अपने इस विच्छिन्न मर्त्यलोक से वहाँ कल्पना का मेघदूत भेजा है।

लेकिन केवल अतीत और वर्तमान नहीं, प्रत्येक मनुष्य में अतलस्पर्शी विरह रहता है। हम जिससे मिलना चहते हैं वह अपने मानस सरोवर के अगम्य तीर पर रहता है, वहाँ केवल कल्पना ही जा सकती है, वहाँ सशरीर किसी का जाना असंभव है! मैं ही कहाँ और तुम भी कहाँ? बीच में जो अनन्त है उसें कौन उत्तीर्ण करें? अनन्त के केन्द्रवादी उस प्रियतम अविनश्वर मनुष्य का दर्शन कौन करेगा? आज केवल भावि, भाषा, इशारा, सम्भ्रम मोह देह, मन और जन्म–मृत्यु के ओर में उसकी थोड़ी सी हवा मिल सकती हैं। यदि





अनुक्रमणिका

आपकी मुश्किलें और उस पर अक्सीर इलाज़

आपकी कई तरह की मुश्किलें होंगी ! सच है न ? तो फिर आप मेरे आध्यात्मिक और आकर्षणात्मक शक्तियों की सहायता से उन से बिल्कुल मुक्ति क्यों नहीं पा लेते ? लाखों आदमियों ने शांति, सुख और वैभव पाया है। संसार विख्यात यानी अँग्लैण्ड, अमरिका, अफ्रीका, चीन, अरब देश, आस्ट्रालिया, एडन, बर्मा, मलाया, इजिप्त, ईरान, बोर्नियो, पूर्व व पश्चिम इण्डिज द्वीप, मारिशस आदि देशों पर मेरे विस्मयकारी शक्तियां का प्रभाव जमा है, और हजारों प्रशंसा तथा अभिनन्दन पत्र आप मेरे पास आ कर देखें।



प्रेम	संपत्ति	पेशा–व्यवसाय	परीक्षा
सुरक्षा	अनिष्ट ग्रह	टंटा–झगड़ा	भूत पिशाच
जादू–टोना	करतूत	रेस	अलभ्य धनप्राप्ति

इन सब अड़चनों से रिहाई पाने के लिए, आप मुझे फौरन लिख दें, अन्यथा प्रत्यक्ष मिल लें। आपकी सारी तमाम शिकायतों और गोपनीय सवालों के उत्तर तीन रुपया बारह आने की व्ही. पी. डाक से भेजे जाएँगे। प्रश्न सीलबन्द पाकिट में भेजें।

प्रत्यक्ष भेट

बम्बई व पूना इन स्थानोंपर अब मेरी भेट लेना सम्भव होगा। पहले ही लिख भेजकर पूरी जानकारी पाइए। फीस रु. ३ !

राजप्रसिद्ध आध्यात्मज्ञानी

एच्. एच्. महाराजा ऑव् बडौदा, एच्. एच्. महारानी ऑव् बडौदा, एच्. एच्. महाराजा ऑव् बन्सबाड़ा, एच्. एच्. महारानी ऑव् बन्सवाड़ा, राणी साहिबा ऑव् मोरवी; ऑनरेबुल काला वेंकटराव, नर्तिका साधना बोस, आचार्य स्वामी योगी नेमिनाथजी महाराज आदि कई प्रसिद्ध व्यक्तियोंने सलाह ली है।

कुछ गुणकारी तावीज़

१ : मोहिनी कामविलास, प्रेम में सफलता जिससे चाह उससे ब्याह, घरेलू झगड़ोंका अन्त ! कीमत रु. ५१; विशेष शक्ति रु. १०१

२ : बिसा सर्वसिद्धि सभी अड़चनों के लिये, प्रेम विवाह, संपत्ति, जादू–टोना, परीक्षा, नौकरी–धन्धा, रेस, लॉटरी आदि की शिकायतोंपर अक्सीर इलाज़; कीमत रु. ५१

३ : धनवन्ती ग्रहशान्त : पापग्रहोंका नाश, शांति व प्रगति; रेस आदि में अचानक धनलाभ, कोर्ट–अदालत, नौकरी धंधेमें सुयश; एक साल : रु. ११, तीन साल : रु. २१, ताज़िन्दगी रु. ५१

४ : सरस्वती परीक्षा में यश, पहेलियाँ (X-wards) हल करनेके लिए बुद्धि में वृद्धि स्मरणशक्ति में विकास; कीमत एक सालके लिए रु. २१. तीन साल के लिए रु. ५१

५ : शक्तिवाण भूत पिशाच, शत्रुका जादू-टोना आदिसे संरक्षण, कीमत रु. ५१, जालिम ताकती रु. १०१

६ : मनमोहिनी अत्तर व काजल इसके इस्तेमालसे प्रेमी, ऊँचे अधिकारी और रिश्तेदार स्नेह दिखाना शुरू करते हैं। कीमत रु. २१

वस्तुओंकी तालिका केवल अँग्रेजी भाषामें मिल सकेगी।

अनगिनत प्रशंसा पत्र !

पत्र क्र : १९१९ एफ् : **श्री. पी. आय. परेरा**—प्रिन्सिपॉल गवर्नमेण्ट सी. हायस्कूल सिलोन लिखते हैं : धनवंती गृहशांति तिलस्मान से मुझे बड़ा लाभ हुआ ! मेरी तरक्की हुई।

पत्र क्र : १०१० एफ् : **श्री. रणछोडभाई गोविन्दजी पटेल** : दार एस सलाम, अफ्रीका लिखते हैं : "मैं जिसे चाहता था उससे ब्याह हुआ !"

पत्र : क्र : १०१४ एफ् : **श्री. गिल डी सा कोहिलो** गोआ—"आपने दिया हुआ तिलस्मान तावीज़ उपयोग में लाया और उससे उमंग पुरी हुई !"

पत्र क्र : १०७६ : **श्री. के. एन्. धारवेकर** "आपकी आध्यात्मिक शक्ति से मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ !"

पत्र क्र : १०११ : **श्री. होरारत्न सप्रे,** राहुरी : "आपने पायी हुई गुप्त शक्ति के लिए, बधाई !"

हर घडी भेजे जानेवाले कई पत्रों में से यह कुछ थोडेसे नमूने हैं। इनकी मूल नक़ल दफ्तर में चाहे जब मिल सकेगी !

दीवाली के लिए विशेष सुविधा — मार्च अन्त तक आधा दाम..!!!

प्रो. अशोक अध्यात्मज्ञानी व आकर्षणतज्ञ

पत्रव्यवहार के लिए पता = हिन्दु ॲस्ट्रालॉजिकल सोसायटी, पो. बॉ. नं. ६१११ बम्बई ५

सूचना : मनिऑर्डर्स, रजिस्टर्ड पत्र, तार आदि मेरे पूना के पते पर भेज दें : **प्रो. अशोक :** डेक्कन जिमखाना पूना : ४.

अनुक्रमणिका

हमारे पास है। हो कर दक्षिण की हवा मेरे पास आती है तो मैं [illegible]य हूँ। इससे अधिक इस विराट् लोक में कोई आशा नही करता।

भित्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरंगयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिंग्यन्ते गुणवती मयाते तुपाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदगंमेभिस्तवेति ॥

इस चिर – विरह का उल्लेख करके वैष्णव कवि ने कहा है :

हुँहु कोले दुँहु कोंदे विच्छेद भाविया।

हम सभी निर्जन गिरिश्रृङ्ग पर एकाकी खड़े हो कर उत्तर की ओर देख रहे हैं — बीच में आकाश और मेघ और सुंदरी – रेखासिक्ता अवन्ती, उज्जयिनी, सुख – सौंदर्य – भोग – ऐश्वर्य की चित्रलेखा, जो स्मरण करा देती है, लेकिन नज़दीक नहीं आने देती; आकाँक्षाएँ जगाती है, परन्तु निवृत्ति नहीं करती। दो मनुष्यों में इतना दूरत्व!

लेकिन ऐसा भी लगता है कि हम मानों किसी कारण इस लोक में भी एकत्र एक थे— वहाँ से अब निर्वासित हो गये हैं! तभी वैष्णव कवि ने कहा है, तुम्हें 'तियार भितर होते के कैले वाहिरे!' यह क्या हुआ! जो मेरे अन्तर में है, वह आज वाहर क्यों आ गया है? वहाँ तो तुम्हारा स्थान नहीं है! बलरामदास ने कहा है, 'तेई बलरामेर, पहु चिर नहे स्थिर।' जो एक सर्वव्यापी इनमें एक हुए थे, वे सब आज वाहर आ गये हैं। तभी परस्पर को देखकर 'चित्त स्थिर नहीं हो रहा है'— विरह से विधूर, वासना से व्याकुल हो उठा है। हृदय एक होने की भी कोशिश करता है, लेकिन बीच में बृहत् पृथ्वी व्यवधान के रूप में आ जाती है।

इस निर्जन गिरिशिखर के विरही स्वप्न ने उसके अलिंगन का तुम्हें आश्वासन दिया है कि एक अपूर्व सौंदर्य लोक में, शरद-पूर्णिमा की रात में उससे तुम्हारा चिरमिलन होगा! तुम्हें तो चेतन-अचेतन पदार्थों का भी भान नहीं है— क्या मालूम, यदि सत्य और कल्पना में भी प्रमोद खो बैठो।

● ●

रुपान्तरकार : *राधेश्याम पुरोहित*

शराब नशीली बनी



पुराने जमाने की बात है। एक 'भट्टी' वाला एक पेड के तले अपनी 'भट्टी' सुलगा कर बैठा। आग सुलगाने के लिए ज्यादह लकडियों की जरूरत पडी इस लिए वहीं के पीपल के पेड की लकडियां आग को सुलगाने में उसने जुटादीं। पीपल के सहारे चार प्राणी रहते थे : मैना, तोता, बाघ और सुव्वर! वे दिन भर अपनी खानपान की उलझन को सुलझाते रहते और रात को पीपल तले बसेरा करते! उस दिन वे अपने घर पर आए। पहले मैना आयी, उसने सुलगी 'भट्टी' को देख कर सोचा कि अपना घोंसला जल चुका; अब जीने से क्या लाभ? उसने आग में कूदी लगायी। शराब को नशा चढनेलगा।

बाद में तोता आया। दुःख असह्य होने के कारण उसने भी अपने को 'भट्टी' में जलाया। शराब और भी नशीली बनी। बादमें बाघ और आखिर में सुव्वर, दोनों ने अपने गुजरे साथियों का अनुकरण किया और शराब और अधिक नशीली बनी। इस लिए शराब पीने के बाद आदमी पहले मैना के जैसा गाने लगता है, बाद में तोते की मीठी जवान बोलता है, आगे बाघ के जैसा अनपशनप बक कर दहाडे लगाता है और आखिर में कीचड में लोटपोटता है, सुव्वर के जैसा।

◆ ◆

अनुक्रमणिका



क़शमक़श से भरा
एकांकी नाटक

पात्र :

धनपतराय : वय ४७ साल; मध्यवित्तवर्गीय क्लर्क ।
जानकी : वय ४२ साल; धनपतराय की पत्नी ।
कुलभूषण : वय २३ साल; धनपतराय का लड़का ।
भैया : धनपतराय के मित्र; एक ठीकेदार ।
डॉक्टर :

स्थान :

शहरके बीच की घनी आबादी के मुहल्लेमें से एक मंजिली चॉल । रसोईघर, और दो कमरे, एक सोने की कोठी और दूसरी आव-भाव की कोठी । इसी तरह के एक पहले मंजिले मकान में धनपतराय बीतें २५ सालों से रहते आए हैं । नाटक की अधिकांश घटनाएँ बाहरवाली भाव-भाव की कोठी में सम्पन्न होती हैं ।

समय :

पहला दृश्य शामकी दियाबत्ती जलानेके समय का है । दूसरा, दूसरे दिन के सवेरे के आठ-नौ बजे के आसपास का है; और तीसरा, तीसरे दिन लगभग सवेरे के (पूर्ववर्ती दृश्य के) समय का है ।

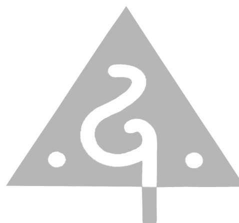
रङ्गमञ्च :

छाया प्रकाश और प्रकाशस्त्रोत की सहायतासे वातावरण और सारे दृश्य दर्शाए जाएँ । बहार की कोठी की 'आव-भगत' की प्रयोजनता ऐसी आकृतियों की सहायतासे सूचित हों, जो मध्यम प्रकाश में दिखाई दें ।

लेकिन संभाषण करने वाले पात्रोंपर खुली रोशनी को कायम रखा जाएँ। पात्रों के हिलनेपर रोशनी दाएँ-बाएँ या उपर नीचे घट-बढ़ सकेगी। पहिले दृश्य में साँज का समय होने से उसमें रक्तिम रंग की रोशनी का प्रयोग हों, वैसे ही शेष दूसरे व तीसरे दृश्य में सबेरे का समय होने से नीले रंग से मिश्रित प्रकाश का प्रयोग हों । दरवाजे, झरोखे, रैलिंग छायाके माध्यमसे अस्पष्ट रूप में चित्रित होते हैं, इसलिए पात्र किस दिशासे आगमन करते हैं अथवा किस दिशा की ओर जानेवाले हैं इसका ठीक अनुमान लगाना मुश्किल होगा । प्रकाश-लोक में आनेपर उनको सुस्पष्ट रूप प्राप्त होगा ।

पर्दा खुलता है तब रंगमंचपर अन्धःकार है । कुछ समय बीत जाता है । एक दो क्षणों के बाद एक ओर का अंधेरा मिटता जाता है और उजेलेमें हाथ में बॅग ले कर डॉक्टर और दरवाजे तक पहुँचाने के लिए आया हुआ कुलभूषण कुछ धीमी-आवाजी बातचीत में व्यस्त हुए नज़र आते हैं । उजेला मध्यिम होने के कारण उनको सुस्पष्टता से देखना मुश्किल है । इतने में अंदर की कोठीसे चिल्लाते हुए बीमार धनपतराय बाहर आते हैं ।





अनुक्रमणिका

सूरज की धौली धूप
आसमाँ में [redacted] सितारों की महफ़िल
मैं पाऊँगा ... देखूँगा ...'
तड़पते दिलों के सोए अरमानों की
ललकारें ——
उनमें से एक : धनपतराय !

धन : दिये जलाओ! अरे...दिये जलाओ! दिये जलाने का वक्त कब का गुज़रा है तब भी अन्धेरे में कानाफूसी करते खड़े रहे हैं? मैं मर तो चुका नहीं हूँ, अब तक? सिर्फ़ बीमार हूँ!

(कुलभूषण बटन नीचे दबाता है। साँवला उजेला अब भरपूर रोशनी बन जाता है। हर एक का चेहरा सुस्पष्ट रूपसे दिखता है।)

कुलभूषण : पिताजी...यहाँ डाक्टर जो है!

धन : ओफ्! मुआफ़ करें, डाक्टर साहब! मुझे लगा कि आप कब के चल दिए होंगे!

डॉक्टर : जी...? हाँ! जाने को ही हूँ; आपकी दावाई के बारे में कुलभूषण को कुछ समझाता था। इतने में ही आप—

धन : फिरसे सीने में धक् धक शुरू हुई है!–डाक्टर सा... (जानकी प्रवेश करती है)... तुम इस लिए आई हो?

जानकी : सोचा कि आप चिल्लाए किस लिए?

धन : कुछ नहीं...! जाओ तुम––

डॉक्टर : [जानकी से] मैंने बतलाई हुई एक टीकी इन्हें लाकर दीजिये! सीने में कुछ बेचैनी होने लगी कि फौरन एक टीकी खिलाइए! (जानकी का प्रस्थान) [धनपतराय से] आप बाहर क्यों निकल आए? वे मतलब से उठना मना है। हालचाल भी नहीं करना; किसी भी तरह की तकलीफ़ न उठना! कितनी बार आपको जतलाए? मेरे पीठ फिराने की देरी कि आपने...

(धनपतराय वहीं की लोहे की खटिया पर बैठकर कुलभूषण से आधार पाते हैं। जानकी लौट आती है। उनको टीकी खिलाती है और पानी का घूँट पिलाती है।)

धन : डाक्टर साब, क्या मैं बिल्कुल सिरीयस हूँ? बुखार तो नहीं है, और खाँसना भी नहीं है; तो फिर काहे की है ये बीमारी?

डॉक्टर : छीः, छीः! कुछ सिरीयस–बिरीयस नहीं है; आपको आराम की ज़रूरत है! बेमतलब की दौड़ धूप, और मामूली बातोंपर दिमाग़ को गर्म करना छोड दें! शरीर और मन दोनों को ऊबाने वाली कोई भी बात न करें; बिल्कुल चुपचाप रहें। समझे?

धन : ना, मैं वैसा कुछ करता नहीं...डाक्टर साब!

जानकी : नहीं क्या कहते हैं आप? कभी–कभी फिजूल बातों के लिए ऐसा शोरगुल मचा रखते हैं कि दिल पानी पानी हो जाता है!

धन : मुझे कुछ अज़ीब बेचैनी मालूम होती है, डाक्टर! कुछ समझ नहीं सकता, कि क्या चाहता हूँ मैं? इस लिए कुछ अनप शनप कर बैठता हूँ! जिन्दगी काम करते करते तबाह हुई–अब ये आरामगी खाए डालती है! कब तक ऐसा ही पडा रहूँ?

डॉक्टर : अजी, ऐसी परेशानी से क्या होगा? इतमिनान रखिए आप सचमुच जल्दी ही तंदुरुस्त होंगे, लेकिन उसके लिए जरा आराम से लेटे रहने की निहायत ज़रूरत है। वह नौकरी और वह काम — सब कुछ बिल्कुल भूल जाइए।

धन : काम के बारेमें अब खयाल भी नहीं चाहिए! अट्ठारह महीनोंकी पूरी तनख्वाह की रजा बाकी है; बाईस सालोंमें रजा भी कितने ली थी?

डॉक्टर : वाह्... सोने में सुहाग! अब तो बेफिक्री से आप जी को आराम दे सकेंगे न...?

धन : जी, अजी... फिक्र काहे की है? नौकरी की फिक्र मुझे क्या! सिर्फ़ एक ही अरमान पिछले बाईस सालों से मन में खुदाई और कुरेदनी करता था... वह भी दो–तीन दिनों में पूरा होगा:

डॉक्टर : अरमान? किस बातका?

धन : (हँसते हुए) मेरा घर! जो दो–एक दिनोंमें पूरा होगा आज ही भैया कहता था! परसों सबेरे पुरोहितजी से मुहूर्त देखकर गृह प्रवेश करें यह भी उसने बतलाया है।

('घर' शब्द सुनते ही—अनचाही बात का उल्लेख होनेपर आदमी जिस तरह नाक भौं सिकोडता है, कुलभूषण उसी प्रकार का चेहरा बनाता है।)

जानकी : घर! घर!! घर!!! बन्द करो उस मनहूस घर का जिक्र — उसी के बदौलत ही तो ये बरबादी हुई है!

(यकायक लालपीले होकर चिल्लाते हुए)

धन : खामोश!...अन्दर चली जा तू!

(जानकी अन्दर की कोठी की ओर जाती है)

कुल : बाबा...बाबा...डॉक्टर साहब क्या कहेंगे?

डॉक्टर : क्या हुआ, क्या मामला है बाबूजी?

धन : उसे कुछ मुरव्वत ही नहीं...! बचपना!

डॉक्टर : जरा शांति तो रखिये! आखिर इस 'घर' का क्या मामला है?

धन : [यकायक शांति से] अजी, क्या कहें?

डॉक्टर : तो यह बात है!

धन : अपनी मालिकी का एक छोटासा मकान बनें, ये मेरी बचपन से हवस है...! समझे आप? कभी न कभी मैं घर बना के रखूँगा ही इसी में, मैं अपने को भूला बैठता! पूरी जिन्दगी बम्बई की चॉल के तंग खोंपडों में बिताई!...कबसे?... अबतक तो वहीं हूँ। लेकिन ख्वाइश ये थी कि अपना खुद का घर, नन्हें नन्हें झाड़ फूस, फूल पौधे, शाक की बेलो का तना एक चाँदवे का मण्डप... बड़ी सुहानी बात होती है न, डाक्टर साहब?

डॉक्टर : ...सच कहते हैं आप!

धन : बाईस साल!...बाईस सालों की जिन्दगी में किसी भी शौक़ को अपना माना नहीं है! ना नाटक देखा, ना उस सिनेमा की भीड़भाड में अपने को रखा! पैसा इकट्ठा करूँ और कहाँ घर बाँधूं इसी साध में अबतक पागल बन कर अपने को दौड़ाता रहा! बारह सालोंसे पहले आठ सौ रुपयों में जोगेश्वरी में एक प्लाट खरीद रखा था....!

डॉक्टर : यानी बारह सालों तक वह प्लाट वैसा ही खाली था?

धन : तो फिर और क्या हो?—अजी, आप सोचिए तो! घर बाँधने को पाँच हजार रुपये तो कमसे कम नक़द चाहिए या

अनुक्रमणिका

श्री. अनन्त काणेकर : अर्वाचीन मराठी नाट्य क्षेत्र के अन्योन्य अलंकार हैं। रचना, नेपथ्य और प्रदान पद्धति इनके लिए ख्यातिप्राप्त मराठी रंगमंच को जीवन की घोर वास्तविकता से जोशिल बनाने का अधिकांश श्रेय इस बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार को देना होगा। सच्ची कला केवल सत्य अनुभूति ही निर्माण कर सकती है, इस सिद्धान्त के हिमायती होने के कारण आपकी रचनाएँ नित नवीनता और नित नवोन्मेष का आगार होती हैं।

नहीं ? अपने पास कहाँ से आते ? आखिर पिछले साल घरके लिए ज़रूरी रकम को इकट्ठा कर सका ! फौरन भैया से कह दिया, हाँ अब शुरू करें !

डॉक्टर : भैया... यानी कौन है ?

धन : जी हाँ ! मुआफ़ करें, मैं उनके बारेमें आपसे कुछ कहना भूल ही गया था। ये अपना एक दोस्त है। मेरे जैसा ही वह एक क्लर्क था, हमारे ही दफ्तर में ! दस बारह सालों से पहले की बात है कि जब उसने अपनी नौकरी का इस्तेफ़ा दिया और ठीकेदारी का धन्धा शुरू किया। बडा अमन चैन में है वह! बिल्कुल मामूली रक़म में घर बाँध देने का वचन दिया था, उसने।

(बोलते — बोलते स्वर धीमा पडता है)

कुल : बाबा, आप साँस भी नहीं ले सकते हैं —— अन्दर चलिए तो ——

धन : (एकदम चिल्लाकर) खामोश ! चूप रहो। मेरे कुछ बिगड़ा नहीं है। (शांत स्वर में) डॉक्टर साहब ... मैं [illegible] हूँ कि कब अपने घर में जाऊँ ! कैसी बेचैनी है...कैसे कहूँ ? कुछ दो चार दिनोंमें ठीक ठीक तंदुरुस्त होऊँगा...न ?

(सीनेको हौले से सिल्हाते हैं)

डॉक्टर : सच कहता हूँ मेरी बात मानिए, आप साँस भी ले नहीं सकते हैं। आँखें मूँद कर जरा थोडी देर तक आराम से लेटिए। बातचीत बन्द रखिए ! और...चलिए तो अब अन्दर।

धन : आँखें मूँद लेने पर सामने तस्वीरें झलकती हैं...जी !

डॉक्टर : काहे की तस्वीरें ? अभी जाँच करता था, उस समय आपने मुझे कुछ बताया भी नहीं ! कौनसी तस्वीरें ?...

धन : आखें मूँदने पर वही नज्जारे तस्वीरें बन कर मन देखता हैं;—मैं अपने घर के अहाते में बैठा हूँ ! सबेरे की पिली धौली धूप मेरे घर में उजियाली भरती चमक रही है। उस सुनहली किरन में मैं नहाया जाता हूँ...

डॉक्टर : वाजीब है।...जिन्दगी के तीस—चालीस साल इस तरह की गन्दी अन्धेरी चॉल में बिताए, इसलिए...

धन : ...वैसी ही और एक तसवीर हैं...बार बार मैं देखता हूँ ! रात को घर के छज्जे पर बैठा हूँ...आसमाँ तारां—सितारां से जग मगा रहा है ! तारां—सितारां से सजाए इस नीले मण्डप के तले मैं देखता हूँ ... कि अकेला बैठा हूँ...

डॉक्टर : ...सच है ! पूरी जिन्दगी आपने आखें नीचे किए बिताई है। झुकी गर्दन को ऊपर उठाने का कभी मौक़ा मिला होगा ?

धन : ऐसा मौक़ा भी कब मयस्सर हो, डाक्टर बाबू ? सबेरे उठे, नहाया धोया, यहाँ वहाँ करके थोडासा जीमे और कचहरी में दौडे...शाम को थके माँदे घर आएँ कि शाक—तरकारी लाने के लिए बाहर चलें; नहीं तो खा—पीकर बिछौने पर लेटे कि फिर से कोल्हू का बैल बनकर घसियारे में दाखिल होता ! वह बुरी रफ्तार ! आँख उठाकर सितारों की रोशनी देखनेकी फ़ुर्सत कहाँ ?

डॉक्टर : ... वही मैंने कहा था ...

धन : दिन में भी जब कभी आँखें मूँदता हूँ, तब उलट—पुलट के इन्हीं तस्वीरों को निहारा करता हूँ और रात तो—

डॉक्टर : रात को ख्वाबोंका जोर होता है ... ?

धन : नींद में मानिए या उनींदी हालत में मानिए, मैं बार—बार यही देखता हूँ ...

डॉक्टर : जी क्या ?... बतलाइए ?

धन : होरमसजी नामका एक हेड क्लर्क था ! — मर गया बेटा बाद में — चाहे उसे, चाहे उस ढँगसे, बेरहमीसे नीचा दिखाके बोलता था; नाक काँटनेकी बात सुनाता अपने नीचेवालोंको !

डॉक्टर : क्यों, उसकी क्या बात ?

धन : सुनिए तो — वह सामने के टेबुलपर बैठा है; वह मुझे कुछ कहेगा त्यों ही मैं हाथ में के सारे के सारे काग़ज़ उसके सामने पटक कर दफ्तर में से बाहर जा रहा हूँ....ऐसी कोई तस्वीर नींद में सामने नाचती है।

डॉक्टर : अच्छा !

अनुक्रमणिका

कुल : आजकल, तो कई वार इस वातको वे कहते हैं !

धन : ... लेकिन और दो ख्वाब तो वड़े मीठे हैं।

डॉक्टर : ...क्या हैं उनमें ?

धन : ...कुलभूषण की माँ को, यानी हमारी इसको ले कर मैं नाटक देखने गया,हूँ...वे दिन, जव हम दोनों जवान थे। वुढ़िया शालू ओढा है, इसने। वालगंधर्ववाला "स्वयंवर" देखने को गए हैं हम ! (ठहाका लगाते हैं) अचम्भा इस वात का है कि मैं ने पूरी ज़िन्दगी में एक भी नाटक-तमाशा देखा नहीं है ! हम सिर्फ़ गंधर्व और स्वयंवर, नाटक का नाम सुना करते थे, वडा दिल लगाकर !

डॉक्टर : वाह्...! वडा अच्छा है ! और दूसरा... ?

धन : दूसरा एक ख्वाव है... कुलभूषण वी. ए. एल्. एल. वी. पास हो चुका है–हमारे घर के दरवाज़े पर उसके नाम का एक साईन वोर्ड ऐव से चकमता है।

डॉक्टर : लेकिन कुलभूषण ...

धन : हाँ, जी ! वह तो निरा ख्वाव है ! मॅट्रिक होते ही मैंने कुलभूषण को कोल्हू का वैल वनाया ! नौकरी की जंजीर से वाँधा ! ओफ्...डाक्टर ... डाक्टर ... हाँ !...हा !–ओह् ! (साँस तेज वनती है। हाँफना शुरू होता है। जोर से चिल्लाते हैं।) डाक्टर ! अजी डाक्टर ! कुछ का कुछ हो रहा है ! वौखालता है। सीने में कोई भर आया है,! मरा...मर गया !

(दोनों हाथों से सीना दवाकर रखते हैं)

मर गया ! मैं मरता हूँ...डाक्टर ! डाक्टरसाव इंजक्शन दो जल्द...

डॉक्टर : धनपतरायजी...सुनिए, डरिए मत ! देखिए मैं आपके पास हूँ ... !

(जानकी दौडती आती है)

कुल : डॉक्टर साहव ! कुछ कीजिए......

धन : ओह्... ओह्... ओ... ओ... मैं उडता जा रहा हूँ — कोई पकड़े मुझे, मैं... उडता जा रहा हूँ — मैं... मैं... पकडो... पकडो... मुझे पकड रखो !...

डॉक्टर : अभी जो दवाई दी थी उसे लाओ। फिरसे इंजेक्शन देना फिज़ूल है —

(कुलभूषण दवाई ले कर आता है। डॉक्टर धनपतराय को दवाई धीरे धीरे पिलाते हैं। धनपतराय का वखौलापन मिट जाता है। स्याह चेहरा उजला वनता है। साड़ी के पल्ले में मसोसना छिपानेवाली जानकी सीधी खडी है।)

डॉक्टर : अव तो आराम है न ?

धन : (सीनेको सिल्हाते हुए) अव जरा आराम है-—

डॉक्टर : अच्छा जी ...! मुझे आज्ञा दीजिए !

[धीरे-धीरे अंधेरा छाता है]

२

(अंधेरा उजेला वनता है। सवेरेका समय, प्रकाश लोक की आभा। धनपतराय वाहरकी कोठी में कुलभूषण की खटिया पर ओढन ले कर वैठे हैं। घरकी रूपरेखाकृति का नीलेरंग का वडा कागज ले कर भैया उनसे वातचीत कर रहा है।

भैया : तुम विल्कुल वचपना करते हो, धनपत !

धन : मेरा मन तुम कैसे समझोगे ? सचमुच मन वड़ा उतावल कर रहा है। यह उतावल वड़ी सख्त है। पिछले वाईस सालोंसे मैंने जिस अरमान को दिलोजान से चाहा था, वह पूरा होने का समय आने पर, मुझसे रुका नहीं जा सकता। कव तक इन्तजार करूँ ? तुम जानते नहीं मैं कितना थका हूँ ... !

भैया : देखो सिर्फ दो तीन दिनोंका सवाल है। एक दरवाजा और उसपर थोडा यहाँ वहाँका गिलावा देनेका काम। और उसके वाद—

धन : ओफ्, और तीन दिन ? यह कैसी वात है ? परसों तुम

बतलाते थे कि दो दिनों में सब पूरा होगा। मैं ने पंचांग देखकर मुहूर्त का समय भी तय करके रखा है। कल सबेरे हम वहाँ जाएँगे। तुम्हारी एक भी बात मैं नहीं सुनूँगा। कुछ भी करो, लेकिन किसी भी हाल्त में कल का मौक़ा नहीं गँवाएँगे।—

भैया : तुम बड़े पागल हो, धनपत! 'घर' के इस पागलपने का क्या माज़रा है?

धन : भैया, तुम जानते हो? जमाना गुज़रा तबसे मैं घर के पीछे पागल बना। जी पर कैसे गुज़री, और कैसी बेवा हाल्त को ले कर मैं हर पाई पाई को इकट्ठा करता था...! औरत, लड़का... ...कुलभूषण, अपना-मैंने किसी के भी बारे में कुछ सोचा नहीं। जानते हो तुम, मैं दफ्तर में तुम लोगों के साथ चाय भी नहीं पीता था... तुम, लोग मेरा मज़ाक करते थे—

भैया : हाँ...हाँ, मुझे याद है। इसीलिए कहता हूँ कि आखिर इस घर का क्या माज़रा है?

धन : (चेहरा गम्भीर; पलकें झुकी) हाँ, कुछ है।

भैया : मुझे बताओ—

धन : (यकायक) भैया, इस तमाम दुनिया में जिसे दोस्त कहूँ, वह तुम अकेले हो। मैं ने अबतक मन की बात किसी से कही नहीं, लेकिन अब कहे डालता ही हूँ।

भैया : बात है छोटी, हमारे अपने देहात की। मेरी बचपन की बात। मैं दस या बारह साल का लड़का था। सख्त गरीब थे हम लोग। रोटी भी मिलना दुश्वार था। मेरी माँ—विधवा थी वह... हमारे एक रईस रिश्तेदार के यहाँ काम करने को जाती थी। एक बार वह मुझे अपने साथ ले गयी थी, उनके यहाँ! रिश्तेदारके एक सात आठ सालोंकी उजले रंगकी मीठी लड़की थी। हम दोनों साथ खेला करते थे। अनजाने में किसी ने कहा, इन दोनों का जोड़ा बड़ा राजरानी होगा! लड़की की माँ खफ़ाईसे झल्ला उठी— 'छी: छी, जिनके घर नहीं, ऐसे भीखमंगोंको मैं अपनी लड़की दूँगी?' वार कामयाब था। मैं तलमलाया। बड़ा हैरान बना मैं।... जमाना गुज़रता है। अपनी रफ्तारसे वह गुजरता गया। तबदीलियों के भीड़ भड़क्के में मैं उस बात को लगभग भूल भी गया। हम बम्बई आये। माँ ने गाँवकी दो तीन लड़कियों से पूछताछ की। काश, उसके ब्याह की तैयारी, जिसके घर नहीं! कौन देना चाहेगा, अपनी लड़की को, जब घर ही नहीं? अपना कायम ठौर नहीं? गाँववाले लोगों ने माँ को जिस बूरी तरह से इन्कार दिया उसकी खबरें मुझे बाद में मालूम हुई। सिर चकरा गया। लेकिन क्या करूँ? बचपन की भूल खोई बात फिर से लपककर चमकती छूरी बनकर अपनी नोंक से कसक पैदा करने लगी। मैंने उसी वख्त यह तय किया, चाहे कुछ भी हो, मैं अपने गाँव में कदम नहीं रखूँगा। इस धरती पर, कहीं न कहीं अपना एक बसेरा बाँधूँ—! ज़माना गुज़रता हैं और एक दिन मेरी माँ भी अपने रास्ते से सिधारती है। मैं ब्याह करता हूँ। लेकिन सिर का वह पागलपना भूला नहीं हूँ।... क्या कहूँ, बडे लम्बे अरसे से मेरा यह पागलपना कदम बढ़ाता मेरे साथ आया है।... बोलो भैया! करोगे न कल इस घर को तैयार? बोलो, बोलो मैं ज्यादह रुक नहीं सकता!

भैया : कोशिश करेंगे, वरना परसों तक मानों बिल्कुल तैयार है—

धन : (खडा—काँपता हुआ; यकायक चिल्लाता—)
क्या कहा...? कल सवेरे किसी भी हाल्त में घर तैयार चाहिए। होना ही चाहिए — मेरे कलेजे को भोंकना चाहते हो तुम? सब बर्बाद करना चाहते हैं—तुम, तू—सब...

(खटिया पर गिर जाते है। जानकी दौडती आती है।)

भैया : (डरके मारे) अरे, सुनो तो धनपत, ऐसा क्या करते हो? सुनो.... किसी भी हाल्त में, मैं यह घर कल सवेरे तक पूरा तैयार रखता हूँ। अब तो हुआ?

(इसी समय बाहर से कुलभूषण प्रवेश करता है। धनपतराय काँपते बदन से तेज साँस ले रहे हैं। उनका चेहरा काला स्याह। जानकी बेचैनसी देखती हुई उनकी पीठपर से हाथ चिल्हाती है।)

कुल : वह क्या? फिरसे अॅटॅक है? माँ देखती क्या हो? — वह दवाई लाओ—(धनपतराय को सहारा देता है। जानकी दवाई लेकर आती है।) उठो बाबा,... उठिए। कितनी बार मना किया है डॉक्टर साहबने, फिर भी क्यों बार बार अपने को सताते हैं?

धन : अब जरा ठीक लगता है!

भैया : मैं कुछ भी सुनूँगा नहीं अब! उठो और अंदर जा के आराम करो। इतमिनान रखो कि कल तुम्हारा घर पूरा हो रहा है।

(जानकी और कुलभूषण एकसाथ भैया के चेहरे की ओर देखते हैं। यह 'घर' ही आखिर इस अनचाही गडबड़ी की वजह है, इस मतलब को आँखें जतलाती हैं। धनपतराय को अन्दर की कोठी की ओर ले कर जानकी और कुलभूषण जाते हैं।)

(थोड़े समय के वाद जानकी चाय का कप लेकर वाहर आती है।)

भैया : भाभी ! आप भी बड़ी अज़ीब है, चाय की क्या ज़रूरत है ?

जा० : चाय बना हो रही थी, इतने में इनका शोर सुनाई दिया और भागी भागी चली आई। पहले से ही चाय तैयार थी।

भैया : ऐसा क्या करता है, धनपत ? – मैं तो कुछ समझ नहीं सकता। मैं वड़ा डर कर सपक गया था। चेहरा कैसा अज़ीब स्याह बना था। दिमाग पर कुछ असर हुआ है क्या ? डॉक्टर की क्या राय है ? क्या कहेंगे ? फूटा भाग। जनम भर अपने को दवाते रहे, और वह सब बातें अब उछल.कर सता रही हैं। और दूसरा क्या कहें ? वैसे कुछ भी हुआ नहीं है। डॉक्टर ने कहा है कि आराम करो। चाहे वह खाओ, पीओ और आराम करो।

भैया : उसका चेहरा भी देखो–आँखें फूल गई हैं। देखते देखते महीना बीत गया। उसकी साँस भी मुश्किल बनी थी–देखा भी नहीं जाता था।

जा० : इनके वारेमें क्या...क्या कहूँ ? हाँफते हाँफते स्याय वनते हैं और चिल्लाते हैं, 'मैं उड़ता जा रहा हूँ...मुझे पकड़ो...मुझे पकड़ो...! दवाई पिलाने पर जरा आराम होता है। वोलना शुरू करने पर लगातार वोलते ही जाते हैं। नहीं तो, आँखें मूँद कर जो साते हैं तो कितनी भी बार क्यों न हिलाए, पत्थर के जैसे बेमतलब से पड़े रहते हैं। मुझे ड़र लगता है, कभी...कभी—

भैया : बडी अज़ीब बीमारी है....!

जा० : भूख लगी इसलिए कुछ खाने को माँगते हैं। कुछ अच्छी चीज़ ले जाएँ तो चबाई हुई चीज़ को खँखार थूँक कर बाहर फेंक देते हैं; कहते हैं कि, अन्दर से कोई बाहर ढकेल दे रहा है। गले में कुछ अटका है। नींद भी बेचैन। कभी–कभी यकायक उठकर लगातार आध घण्टे तक बिछौने में बैठे रहते हैं। कुछ कहना भी मुश्किल है। अगर कुछ कहें तो फिरसे यह चिल्लाना और ललकारना शुरू।

भैया : अभी भी वही हुआ। मैं ने सहज ही में कहा, कि दो तीन दिनों में घर पूरा होगा, आखिर जल्दबाज़ी भी काहे की है ? तिसपर वह जो झल्ला उठा ... बस...!

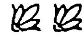
जा० : घर! घर!! घर!!! नाम न लें उस घरका। उसीके बदौलत ही तो यह सारी गुज़री है। मैं सच्ची बतलाती हूँ। हमारी कौन पूछे ? अगर कुछ बना नहीं तो भी कोई फिक्र नहीं। न कभी चाहिए वह कपडे लत्ते, गहने, जेवर हमारे नसीब हुए। (आँखों को पल्ले से ढँक लेती है।) लेकिन कभी अपने वारेमें भी सोचते ? पच्चीस सालों से मैं देखती आयी हूँ। जब कभी देखें उस मनहूस घरका खयाल। संसारको कौन पूछे इस घर के पीछे।

भैया : मुझे याद है, दफ्तर में हम जब कभी बोलते, तो वह इसी के बारे में कुछ कहता; लेकिन वह घर के लिए अपना होश गँवा बैठा है, इसे कभी जान नहीं सका। उस घसियारे होरमसजी हेड़ क्लार्क ने तो इतनी बुरी तरहसे इसको नीचा दिखाया था—हम सब लोगों को लगा कि अब यह इस्तेफ़ा दे कर ही रहेगा। अपनी खफ़ाई की धुन में ऐसा कुछ उसने कहा भी। लेकिन थोड़ी देर के बाद उसने कहा था–'भैया, यह सारा ज़हर हज़म कर मुझे अपनी नौकरी को बना के रखना होगा। मामूली एतराज़ पर उसे गँवा देना भला नहीं होगा। मैं अपने घर के लिए पैसे जमा कर रहा हूँ।' उसने यह कहा था। मैं उस वक्त समझा कि कुछ मज़ाक की धुन में कह रहा है।

जा : अजी....क्या कहूँ ? एक दफ़ा नाटक को जाने को इन के जीने चाहा। पंधरह–बीस सालों से पहले की बात है। उन्होंने कपड़े पहने, मुझे कहा कि चलो हम आज नाटक देखें; तैयारी करो। हम दोनों तैयार बनकर जाने को थे, त्यों ही उन्होंने कहा–छीः छीः कैसी गन्दी बात है, हम फिज़ूल में पैसे खर्च कर रहे हैं। और कहा कि हम नहीं जाएँगे। गंधर्व या ऐसा कुछ किसी का नाटक था वह। वह नाटक ऐसा है, वैसा है, बड़ा बढ़िया है, ये सारी गपशप पूरी चॉल में सुनाई देती थी। उसी को सुनकर उन्होंने चाहा था कि चलो देखें।...कुलभूषण मॅट्रिक पास हुआ, तब की बात भी इसी तरह की थी। चाहते थे कि वह कॉलेज में जाएँ बी. ए., एल्. एल्. बी. हो! कुलभूषण भी वही चाहता था। लेकिन तय करते करते आखिर यह तय किया कि वह नौकरी करेगा!

भैया : (घर की रूपरेखा का नीला कागज़ लपेटते हुए उठता है।) हाँ ! संसार बड़ा अज़ीब है! हर एक अपने अपने ढकोसले के पीछे पागल बनता है। खैर...भाभी, उसे कहो कि कल सबेरे जरूर आऊँगा। घर कल पूरा हो रहा है, इस संदेसे को जरूर बतलाना!

(प्रकाश लोक धीमे धीमे कालिमा में परिवर्तित होता है। एक मिनिट तक बाद में अँधेरा कालिमा घटता है !



३

दूसरे दिनका सवेरा : स्नान करने के बाद कुलभूषण बाल सँवारता है । भैया का प्रवेश । बगलमें नीले लिपटे कागज ।)

भैया : क्यों, क्या हाल है, कुलभूषण ?

कुल : क्या और कैसे बतलाए चाचाजी ?

भैया : क्यों, क्या बात है ? डॉक्टर ने कुछ कहा है ?

कुल : वैसे कोई खास नहीं । (यकायक) सच कहूँ चाचाजी...? डॉक्टरने साफ साफ बतलाया है, माँ से मत कहना——

भैया : छीः, छीः...भाभी से बिलकुल मत कहो । लेकिन भाभी है भो कहाँ ?

कुल : नीचे कहीं, किसी से कुछ लाने गई है ।

भैया : भला — क्या कहते थे डॉक्टर ?

कुल : जो होनेवाला है, वह हो चुका है । काहे की भी बाक़ी बचत नहीं है। अगर बच के रहे तो साल-सवा साल बड़ी हिम्मत का काम है । वह भी यदि ईश्वर ने चाहा तो । फटे आकाश को थिगली कहाँ तक ? नहीं तो, देखते देखते एकाध दिन अनहोनी होगी ! ब्लड प्रेशर बढ़ा है, हृदय क्रिया मरम्मत से बाहर जा रही है, किड़नी में बिगाड़ हो चुका है। शरीर का हर जर्रा जर्रा खोखला बना है।

भैया : तो फिर....?

कुलः डॉक्टर इसीलिए कहते हैं कि, कब क्या होगा इसका हिसाब बताना मुश्किल है। लेकिन क्या करें. ईश्वर करेंगे सो सही। हम अपना काम करें, यही सच है।

भैया : (नीला काग़ज़ खोलते हुए) कल के पूरे चौबीस घण्टे मज़दूरों को खपाकर मैं ने उसके अरमान को पूरा करने के लिए घर को पूरा किया है।

कुल : छोड़ दीजिए, अजी उस निकम्मे घर की बात! आप भी क्या ले रखे हैं उसे, चाचाजी ?

भैया : ऐसा क्यों कहते हो, कुलभूषण, बेटा ? उसको जरा समझ लो। उसके जी के ज़र्रे ज़र्रे में उस घर की ईंट बैठी हैं, तुम क्या जानो ? जो होनेवाला है उससे किसीको रिहाई नहीं है। लेकिन उसकी साध पूरी हो चुकी है, देखने दो उसे। उसे जरा खुश तो होने दो। अपनी आँखों से अपना चाहा अरमान पूरा हो चुका है, इसे वह देखें। मुझे लगता है कि हम उसे टॅक्सी में बिठाकर वहाँ ले चलेंगे।

कुल : लेकिन सुनिए तो। डॉक्टर क्या......?

भैया : रहने दो डॉक्टर की बात डॉक्टर के पास। तक़दीर का लिखा हो के रहेगा। जाओ तुम, और उसे बतलाओ कि, मैं आया हूँ। घर उसका है, उसे आज किसी भी हालत में जरूर दिखाएँगे। होश से हार खाने में क्या मज़ा है ? जा...... चलना होगा...

(कुलभूषण अन्दर की ओर जाता है। भैया घर के नक्शे के काग़ज को निहारता है। कुलभूषण के कंधेपर हाथ रखकर धनपतराय बाहर आते हैं। कुलभूषण की खटिया पर बैठते हैं)

धन : (आँखें खुशीसे हँस रही हैं, छोटे बच्चे सी) हो चुका न पूरा अपना घर, भैया। बिल्कुल तैयार है न ? मैंने बतलाए मुहूर्त पर तैयार किया है तुमने। बडा अच्छा हुआ वाह्... वाह् ! अब, कब चलें ?

भैया : (धनपत की खुशीसे खुश हो कर) क्यों ? अभी, अब चलेंगे ! है क्या उसमें ? तुम्हारी तबीयत भी जरा अच्छी नज़र आती है। कुलभूषण, जाओ बेटा, टॅक्सी लावो ! (कुलभूषण जाता है) कुछ गरम दुशाला ओढ़ के लो बदनपर ! फिर चलेंगे ...

धन : क्यों, बिल्कुल अच्छा बना है न...?

भैया : (नीला काग़ज़ दिखाते हुए) देखो इधर ! तुमने जैसे चाहा था बिल्कुल वैसा ही !

धन : पूरब की खिड़की बडी है न ? चौड़ी रोशनी चाहिए घर में !

भैया : तुमने कहा था, बिल्कुल वैसी ही मैं ने बनाई है। चाहिए उतनी रोशनी अन्दर आएगी ! डरते हो क्यों ?





धन : ... और, [redacted] छज्जेपर जानेके बाद सारा आसमाँ अपनी बाँहों में लिपटना चाहिए ... !

भैया : ... बाखुशीसे ! सारा समाँ बिल्कुल खुला है !

धन : ... क्यों भैया, वह पहाड़ी दिखाई देती है, इस खिड़की में से ?

भैया : यह क्या पूछनेकी बात है ? बीच में और कोई खड़ा नहीं है, साफ साफ...

धन : वाह् वाः ! वाह् वाः !! मेरी जिन्दगी की साध पूरी हुई। अरमान पूरा हुआ भैया !

(नीचे से 'पों...पों' की आवाज। टॅक्सी का हॉर्न सुनाई देता है। वे खड़े रहते हैं)

देखो टॅक्सी आ गयी है। अब चलें घर !

(बच्चें की नाईं छलॉंगे लगाते पिछवाड़े की गॅलरी के अँधेरे में दौड़ते हैं। भैया खोले हुए नक्शे के कागज़ में देख रहा है। कुलभूषण दरवाजे में खडा है। त्यों ही अँधेरे में धडाम् से किसी के गिरने की आवाज़ आती है। "कुलभूषण ... कुल ..." "भैया ..." की दर्द भरी ललकार सुनाई देती है।)

कुल : कहाँ से पुकारा ... पिताजी ने ?

भैया : वहीं ... जो उधर से !

(कुलभूषण दौडता है। उसके पीछेसे भैया जाने को है, त्योंही कुल भूषण लौटता है।)

कुल० : सारा काम तमाम हुआ, चाचा जी।

(गर्दन झुकी है; सिसकियाँ ...)

भैया : (बावले पन से) ... ये ... ये ... ये। उसका घर !

(उसके हाथ में से नक्शे का नीला कागज नीचे गिर जाता है। नक्शा जमीन पर फैला है। प्रकाश लोक उस नक्शेपर पल भर ठिकता है और बाद मे एकदम अंधेरा)

रूपान्तरकार : सुधाकर तोणें

● ●

सखी, मैं तुम्हारा दासानुदास हूँ। मुझ से कुछ भूल हुई और इसलिए तुमने मुझ पर लातें जमाईं, इसमें कोई अन्याय नहीं हुआ ! परन्तु हे प्रियदर्शिनी, मुझे बड़ा विकट संदेह है कि तुम्हारे केवल स्पर्श के कारण मेरी काया पर जो रोम जागे, क्यों कहीं वे तो तुम्हें चुभे नहीं ?



तुम छोड चले निरमोही



राजा बढे

छोड चले मुख मोड चले तुम
आज निठुर निरमोही
पैंया परुँ मैं विनत करूँ, अँसुवन आँख बिछाई
तुम छोड चले निरमोही !
दो दिन का कुल साथ हुआ, जब पंछी
प्रीतम आन मिले
हिय में दुख आघात हुआ, अब
हाथ छुडाये नाथ चले
अधखिली कली मुरझाय गई
नव प्रेमलता कुम्हलाय गई
उजड़ गई मनकी बगियाँ, डर आह
बिरह की आग जले
तुम छोड चले निरमोही !
आज सुहागन बनी अभागन, भाग हमारे रूठ गये
ठिठक गई अंगुलियाँ लिख लिख भालतेख अब भूल गये
तुम बिन कौन सहाई ?
तुम छोड चले निरमोही !
सुख कण चुन चुन गूँथ रही हूँ सुमरन की मधुमालाएँ
अब टूट गई कडियाँ कडियाँ सूख गई असुधाराएँ
मन के बासी, हो बनबासी मेरे पंछी बिछुड चले
सुख की दुनिया खोयी
तुम छोड चले निरमोही !

● ●

अनुक्रमणिका

कुछ शान्ति, कुछ अवसाद,
कुछ दुःख, कुछ आल्हाद—
इन सब से परिपूर्ण
जीर्ण पुरातन,
ना ! नित अर्वाचीन...



वा. भ. बोरकर

सांझबात के समय घर आते ही घरके और पडोसके नन्हे मुन्ने मुझे घेर लेते हैं और नयी कहानी कहो ऐसा कहकर चहचहाने लगते है। वैसे वक्त उनको खाली हाथ लौटाना मेरे लिये असंभव होता है और उनका हठ पूरा करने की नौबत मुझ पर आ पडती है। लेकिन हररोज नयी कहानी आयेगी कहाँसे ? आजतक मैं ने कई नयी कहानियाँ सुनीं, देखीं और पढ़ी हैं। लेकिन पंछी की भाँति वे कब की उड गयी हैं। बाकी रहे हैं सिर्फ़ उनके पैरों के निशान। बढती हुई उम्र के साथ ऐसा ही होता है। कहानियाँ उड़ जाती हैं और उनके मतलब सिर्फ़ बाकी रह जाते हैं। फिर भी अँगूठे पर रावण खींचने की तरह मैं उनके मतलबों से नयी कहानियाँ गढ लेता हूँ और बड़ी मुश्किल से निभा लेता हूँ। मालूम नहीं मेरी इन कहानियाँसे बच्चे क्या सीख पाये। फिर भी मैं बहुत कुछ सीख पाया हूँ।

पहली बात जो मेरी समझ में आयी वह यह थी कि बच्चों को पसंद आनेवाली और भानेवाली नयी कहानी रोज कहना सामान्य प्रतिभा का काम नहीं। उसके लिये "अरेबियन नाइट" की शहाजादी के समान उपजाऊ और ताक़तवर प्रतिभा चाहिये! दूसरी बात यह कि बालकोंके पास ऊँची और संपन्न रसिकता होती है। सफल आलोचना करनेवाले को हम धोखा दे सकते हैं, लेकिन कमजोर और नक्ल की हुई कला के सहारे बच्चों को धोखा नहीं दे सकते। चाहे जो सहूलतें वे हमें दे सकेंगे, तंत्रका किसी तरह का बंधन वे हम पर नहीं लादेंगे, कहानी की शुरुआत हम किसी तरह भी करें, उसका अंत मनमाने करें, उसके लिये वे ना नहीं कहेंगे। आप घोडे के पर लगाइए, हुक्म के अनुसार हवामें उडनेवाली परियाँ पैदा करें। खास केले खाने से आदमी के पंख निकले ऐसा कहिये, जानवर को आदमी की भाषा में बोलने के लिये मजबूर कीजिये, टोपी पहनने से आदमी दूसरे को दिखाई नहीं देता ऐसा कहिये, तालाब में गिरी हुई राजकन्या के आँसुओंमें से सोने के कमल फूट निकले ऐसा कहिये, थोडे में भौतिक सृष्टिके सभी नियम ताक पर रखिये उसके लिये वे कोई आपत्ति नहीं उठायेंगे। लेकिन आपकी बनाई हुई इस नयी सृष्टि की जड़ में पुरातन नैतिक सृष्टि होना जरूरी है, ऐसा आग्रह वे कभी नहीं छोड़ेंगे।

उसके छोटे–मोटे नियमों का थोडासा भी उल्लंघन उन से बरदाश्त नहीं हो सकेगा। सत्य की विजय होनी चाहिये, प्रीति को सफलता मिलनी चाहिये, सद्गुणों की जीत होनी चाहिये, त्याग की इज्जत होनी चाहिये, थोडे में भले का भला हो जाना चाहिये, और बुरे को सजा मिलनी चाहिये। कम से कम पश्चात्ताप करने की नौबत उस पर जरूर आनी चाहिये यानी देव असुरों के संग्राम में देवों की विजय होनी चाहिये ऐसा उनका आग्रह रहता है। प्रमाण दे कर हम यह सिद्ध करने की लाख कोशिश करें कि वास्तव में ऐसा होता है फिर भी वे मानेंगे नहीं।

हम जिसे असली दुनियाँ कहते हैं वह हमने ही बिगाड़ रखी है। शब्दोंद्वारा शायद वे कह नहीं सकेंगे कि असली दुनियाँ नहीं है; लेकिन असंतोष के द्वारा वे ये ही भाव प्रकट करते रहते हैं।

कवि अगर सच्चे सौंदर्य का निर्माण कर सका तो सच्चा रसिक उसको व्याकरण के नियम तोडने की इजाज़त दे सकता है और आगे चलकर उसके प्राप्त हुए स्वातंत्र्य से भाषा का बल और सौंदर्य बढ गया है ऐसा मानकर उसकी तारीफ भी करता है; उसी तरह ये नन्हे रसिक भी अगर आप नैतिक सौंदर्य की सफल निर्मिति कर सकें तो आपके सब तरह के दोष मुआफ़ कर देंगे। लेकिन इस निर्मिति में आपसे कुछ भूल हुई तो उसके लिये उनकी मान्यता आप प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इसाई लोग जिसे "किंगडम ऑव् हेवन" कहते हैं या गांधीजी जिसे "रामराज्य" के नाम से पुकारते हैं, उसकी परछायी वे अपने स्फटिक जैसे निर्मल मानस सरोवर में देखते

श्री. बा. भ. बोरकर : नवीन मराठी कविता परिसर के अत्यन्त देदीप्यमान रत्न हैं। आपकी कविता की सर्वोपरि विशेषता गेयता होने के कारण, आपकी भाषा अनायास ही मधुर एवं प्रसाद के गुणों से परिपूर्ण है, चाहे आप गद्य लिखें। आपकी गद्य रचनाओं की संख्या बहुत कम हैं तथापि शैली व भावना की दृष्टिसे निरसन्देह उनकी श्रेणी ऊँची है।

रहते हैं। और आपकी कथा–सृष्टि उस कसौटीपर कसते हैं। इस तरह वे जन्म से ही यह जानते हैं कि भौतिकता की संचाई धोखे की टट्टी है और नैतिकता के संबंध में की गयी ग़लती अक्षम्य है। ऐसा दिव्य दर्शन और ऐसा कहने का ढाढ़स कौन कर कर सकेगा ?

जिसपर मैल और अहंकार की छाया पडी नहीं है ऐसी आत्मा स्वभावसे ही प्रतिमावान होती है। किसी समय हम भी बालक थे और यह तथ्य हम जानते थे। लेकिन प्रतिभा भी आत्मा की तरह स्वयंभू होती है। इस तथ्य को वासनाओं के पंजे में फँस कर गंदे हो जाने के कारण और अहंकार की वज़ह अंधे बनने के कारण हम भूल जाते हैं। इसी से हम यों ही ज्ञान का ठीका ले कर बैठते हैं और कलाकार प्रतिभा का ठीका अपनी ओर ले कर हम पर हावी हो जाते हैं। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनकर हम रातदिन बालकों को ज्ञान के पाठ पढाते रहते हैं। और जब वे भगवान् की बनी दुनियाँ बिगाड़ने में हम से दो कदम आगे बढते हैं, तब उन्हें प्रमाण–पत्र देते हैं। हम कभी यह नहीं समझ सकते कि हम जैसे ग़लत रास्तेपर चलनेवाले बालिग व्यक्तियों को सही रास्तेपर लाने के लिये ही सृष्टि ने घरघर बालकों की दुनियाँ बसायी है। लेकिन नासमझी की जगह फूलों–पत्तों की तरह खिलनेवाली उनकी प्रतिभा के कोंपल हमें दिखाई नहीं देते।

इन बालनारायणों की प्रतिभा के अनगिनत ज्योतिपुंज मेरी चारों तरफ दमक रहे हैं। लेकिन जीवन का सब ज्ञान उम्र में या किताबों में समाया रहाता है इसी ग़लत फहमी के कारण सब लोगों की तरह मेरा ध्यान उनकी तरफ नहीं गया था। लेकिन एक दिन मैं यकायक ठिकाने पर आया और उनके बोलनेपर ध्यान देने लगा।

एक दिन हम दोनों अपने लडके को ले कर चाँदनी में घूमने गये थे। उस समय वह सिर्फ छः साल का था! आदत के अनुसार हम चल रहे थे, और गृहस्थी की बातें करने में मग्न हुए थे। इतने में फूटपाथ पर सोये हुये एक आदमी की ओर उसने मेरा ध्यान आकर्षित किया और पूछा पिताजी " ये लोग रास्ते पर क्यों सो जाते हैं ? "

" उनके घर नहीं है बेटा " उसकी माँ ने जवाब दिया।

" किराये का भी नहीं ? " उसने आगे पूछा।

" उनके पास इतने पैसा कहाँ से आएँगे ? उनको मिलनेवाली तन्ख्वाह पेट भरने के लिये भी क़ाफ़ी नहीं होती। " मैं ने जवाब दिया। और हम वैसे ही आगे चलने लगे। थोडी देर के बाद वह फिर बोला " ये ही लोग सबके घर बनाते हैं न " ?

" हाँ " — मैं ने जवाब दिया।

तब बडे तपाक के साथ वह बोला " तब

अनुक्रमणिका




उनको कहना चाहिये कि जब तक हमारे घर नहीं है तब तक हम दूसरों के घर नहीं बनाएँगे।" उस के जिस कथन से मैं होश में आया। हम जैसे बुजर्गों की वृत्ति स्वार्थ की वजह सहानुभूति से मुँह मोड़ लेती है और इसी कारण हम प्रतिभा से वंचित हो बैठते हैं इस की कल्पना मुझे आयी। सिर्फ़ छःसाल का लड़का लेकिन कितने थोडे समय में विषमता का और उसके इलाज का ज्ञान उसे हो सका।

जब मैं ने यह बात बडी उत्सुकता के साथ अपने मित्र से कही, तब उसने अपना भी अनुभव बताया; वह भी बडा रोचक था। उसने कहा—"दुपहर का समय था और हम चार आदमी खाने के लिये बैठे थे। रोटी तैयार होते ही हम चारों की थालियों में चार टुकडे परोसे। हम बड़े मजे में खाने पर हाथ फेर रहे थे। इतने में मधुकरीवाले की पुकार कानों पर पड़ी। ताज़ी रोटियाँ तैयार न होने से मेरी पत्नी ने मधुकरीवाले को डिब्बे की बासी रोटी दे डाली, जो कुछ अस्वाभाविक था ऐसा किसी को भी नहीं लगा। मेरे चार साल के लड़के ने अपनी तोतली जबान में कहा, "तुम को गलम लोटी, और मधुकरीवाले को बासी रोटी।" उसके इस सवाल से हम सबों के मुँह पर अच्छा तमाचा सा मिल गया। मेरी पत्नी ने और मैं ने इसका प्रतिकार करने का असफल प्रयत्न किया। उस से उसका तो क्या, हमारा भी समाधान नहीं हो सका। हम ने भोजन किया लेकिन सिर नीचा करके।"

भगवान का न्याय और आदमी का अन्याय बालकों के ध्यान में बहुत जल्दी आ जाता हैं। उसी तरह प्रतिभा से अन्य धर्म भी उनके ध्यान में आसानी से आते हैं। कभी काव्य, तो कभी विनोद, और आलोचना वे जितनी आसानी और होशियारी से कर जाते हैं कि उसे देख कर हम दंग रह जाते हैं। एक बार मेरे एक कवि दोस्त ने अपने लड़के का परिचय करा देते समय मुझ से कहा :

"भूलो नहीं, यह भी बड़ा कवि है। बचपन की बात है कि जब एक बार बारिश के ओले मिले, इस खुशी में वह मुट्ठी में कुछ पकड़ के ले आया। मैं देखने गया तो थे सफेद कंकड।" यही कल्पना अगर कोई छंदबद्ध करें तो हम उसकी वाह् वाह् करते हैं। काव्य की तरह उनका विनोद भी बड़ा सरल होता हैं।

मैं एक बार पातालेश्वर की गुफाएँ देखने के लिये गया था। मेरा छोटा लडका मेरे साथ था : सामने के नंदी के पास जा कर अंगुली निर्देश करते हुए वह बोला, "यह नंदी बिलकुल गँवार हैं। बगैर जांघिया पहने मंदिर में आया हैं।" उसका यह बोलना सुनकर आसपास के लोग हँसने लगे : एक बार उसने अपनी माँ से कहा कि बिल्ली के बच्चों को इसके आगे अपने घरमें न आने दिया जाय। उसने कारण पूछने पर वह बोला—"बहुत गंदे हैं वे। टट्टी करते हैं लेकिन कूले नहीं भी धोते।"

हम ऐसा समझते हैं कि बच्चों को काल्पनिक कथाएँ अधिक भाती हैं, स्वाभाविकता किस चिडियाँ का नाम है इसका तो उन्हें पता तक नहीं होता। इस क्षेत्र में भी वे हम पर मात कर जाते हैं। एक बार मैं अपने दोस्त के साथ "तुकाराम" सिनेमा देखने गया था। उनका आठ साल का लडका भी उनके साथ था। सिनेमा खतम होने के बाद उसने पिता से पूछा

"इस सिनेमा में कौनसी गलती,—कहाँ हुई है, यह बताइये"। हमें तो कोई गलती नज़र नहीं आयी थी। इसीसे हम असमंजस में पडे थे।

"हमें तो कोई गलती दिखाई नहीं दी। अब तुम ही बताओ"—हमने कहा। यह सुनकर वह बोला—"इस सिनेमा में तुकाराम कई बार गाता है लेकिन एकतार एकबार भी नहीं छेडता।" उसका कहना बिलकुल सही था। मशहूर दिग्दर्शक की बड़ी गलती उसने कितनी आसानी ने बता दी थी। कला के बडे बडे आचार्य को भी आश्चर्य में डालनेवाले चमत्कार ये बालक कितनी आसानी से कर जाते हैं इसका पता इस घटना से लगता है।

पॅरिस में चित्रों की प्रदर्शनी लगी थीं और उसमें दो सर्वश्रेष्ठ चित्रों में से किसको पहला पुरस्कार दिया जाय इस बात पर परीक्षक मंडल में परामर्ष चल रहा था। इतने में दो बालक उन चित्रों के पास आ पहुँचे। उस चित्र में एक चिडियाँ भुट्टेपर बैठ कर एक दाना मुँह में डाल रही थी। उसकी ओर देखकर एक लडके ने दूसरे से कहा—यह चित्रकार बिलकुल अनाड़ी दिखाई देता है। चिडियाँ के बोझ से भुट्टा झुक जाता है, यह छोटीसी बात भी उसके ध्यान में नहीं आयी, परीक्षक मंडल के एक सदस्य का ध्यान उनकी ओर यों ही

अनुक्रमणिका

गया। और पुरस्कार के चित्रकार और परीक्षकों के ज्ञान का एक साथ भंडाफोड हो गया।

बालकों की प्रतिभा के इस तरह के अनेक पहलू देखने पर मुझे कई बार ऐसा लगता है कि दुनियाँ के कई मशहूर प्रतिभासंपन्न कलाकारों ने उनसे नसीहत ली होगी, उनसे कितना उधार लिया होगा! एक बार मैं ने लड़के से कहा—

"बाहर के बरामदे में मैं अपनी किताब छोड आया हूँ; जा कर वह ले आओ।"

"लेकिन बाहर अंधेरा है न" उसने कहा।

"तुम इतने निडर हो कर भी अन्धेरे से घबराते हो?"

यह सुनकर उसने कहा,—

"ओह, मैं कहाँ घबराता हूँ, मेरा शरीर घबराता हैं?"

हम अपने शरीर से भिन्न हैं, भीति का परिणाम शरीरपर होता है, प्राणोंपर नहीं, यह बहुत बडा सत्य उसने यों ही कह दिया था। जैसी एक ही क्यों, हजारों बातें घर घर दिखाई देती हैं। ज्ञान का झूठा दंभ छोड कर हम जैसे बुजुर्ग बाल-प्रतिभा के इस विलास की ओर ध्यान दें। तत्परता से उनकी टिप्पणी करें तो प्रतिभा की बहुत क़ीमती खान हमारे हाथ लग सकेगी। लेकिन हम जैसे मनहूस ऐसा तो करते ही नहीं, बल्कि अपने मलीन और उद्दण्ड अभिमान भरे बरताव से उनको ही बिगाड़ देते हैं। मिसाल के तौरपर परसों की एक घटना बताता हूँ। यहीं के रिमांड होम में एक दस बारह बरस के लडके को किसीने दाखिल किया। स्टेशन पर रुकी हुई खाली गाडी में वह लड़का सोया हुआ मिला था! उसने उससे खूब छेडा। लेकिन वाह अपना गाँव, ठिकाना नहीं बताना चाहता था! मजबूर हो कर उस आदमी ने उसे रिमांड होम में जाकर भरती किया। आधिकारियों ने पूछने पर वह बताने लगा कि मैं मुसलमान हूँ। लेकिन उसके कान छेदे हुए थे। फिर भी उस अधिकारी ने उसके प्रति अविश्वास प्रकट नहीं किया। उल्टे आदर और अपनावे के साथ वह उसके साथ पेश आया। आगे चलकर उसके ही मुँहसे उसकी हक़ीक़त उसे मालूम हुई। असल में यह लडका बहुत ही अच्छा था। पाठशालामें वह हमेशा अव्वल रहता था। खेल, नाटक और वक्तृत्व में वह ईनाम पाता रहा। ऐसे मौके पर पाठशाला के उसके शिक्षक और रिश्तेदार उसको बधाई देने के लिये उसके माँ बाप के पास आते थे। उस समय वे बडे अभिमान के साथ उनसे कहते—"हमारा अनुशासन ही ऐसा है।" और वे लडके को किस तरह थप थपाते, उसपर किस तरह निगाह रखते, इसका रसभरा वर्णन वे बढा चढा कर करते। अपनी मिहनत से प्राप्त श्रेय अपने माँ बाप छीन लेते हैं इस बात से उसके स्वाभिमान को बड़ी ठेस पहुँची। उस दिन से उसने तय किया कि पढाई खूब स्वाँग कर पढाईसे पूरी किनाराकशी करना। इतनी निष्ठासे वह पहले यश के पथपर आगे बढता रहा था उतनी ही नफ़रत से वह हार की राह पर चलने लगा। माँ-बाप को नीचे देखना पडे इसलिये वह अपनी ओर से भरसक कोशिश करता गया। और उसकी इस कोशिश से जब उसे घर में रहना दुश्वार हुआ तब घर से वह चंपत हुआ।

इसी वज़ह बालक बिगडते हैं।

जब मैं ऐसी घटनाएँ सुनता हूँ या देखता हूँ तब मुझे अपना बचपन याद आता है और हृदयतल में कूडा बन कर पड़ी हुई कटुता यकायक जोर से उछल उठती है। उस उम्र में झूठ कहना जितना मुश्किल था उतना ही आज सच कहना मुश्किल हो बैठा है, यह बात ध्यान में आते ही मैं उदास हो जाता हूँ। उस समय झूठ ठीक तरह न बोल सकने के कारण मुझे सजा भुगतनी पडी थी! दुपहर का समय था। मेरे पिताजी अपनी मौसी के साथ शतरंज खेल रहे थे। खेलने में बडा रंग भरा था। ऐसे समय में खेल देखते हुए पास ही खड़ा था। इतने में घर से संदेशा आया कि गाँव का लक्ष्मण चमार पैसे माँगने के लिये आया है। उसकी लडकी की शादी थी और इसलिये पिताजी ने पैसे देना कबूल किया था। लेकिन उनका खेल इतने रंग में आया था कि और किसी अन्य बात पर सोचने के लिये वे बहुत नाराज़ थे। उन्होंने मुझ से कहा—

"उससे जाकर बताओ कि मैं घर में नहीं हूँ।" हुक्म के मुताबिक मैं बाहर आया और मैं लक्ष्मण से बोला—

"पिताजी ने, मैं घर में नहीं हूँ, ऐसा तुमको बताने के लिये मुझ से कहा है।"

ये शब्द मुँह से निकलते ही मेरी पीठ पर एक जोरका मुक्का पडा! मुड़कर देखा तो मेरे पिताजी।

"ब्राम्हण के लड़के कहलाते हो, और ऐसी बेहुदी बातें करते हो? क्या तुम्हारी अक्ल भाड़ झोकने गयी है?" उन्होंने चिढकर कहा। वह बेहकूफी ज़रूर थी। सच कहने के लिये अक्ल की जरूरत नहीं होती है। लेकिन झूठ कहने के लिये वह होती है, जो मुझ में नहीं थी।

ऐसा नहीं कि बुजुर्ग लोग जान बूझ कर बच्चों को ऐसा कुमार्ग बताते हैं। उन में जो सत्य, मांगल्य और सौंदर्य होता है उसकी ओर उनका ध्यान न जाने से ही ऐसा होता है। जहाँ जायें वहाँ सिरपर सितारे होते हुये भी उनकी ओर दुर्लक्ष्य कर आदमी जिस तरह अंधेरे में टोकर खाते हुए चलता है उसी तरह घर के इन सितारों की उपेक्षा कर वह अप्राप्य ज्ञान और पवित्र आनंद से कदम कदम पर हाथ धो बैठता है। जिस आदमी ने बालक को पहले पहल नक्षत्र की उपमा दी वह उच्च कोटि का जीवन रसिक था। नक्षत्रों के प्रकाश से वंचित रहनेवाले आदमी का उद्धार हो इस लिये भगवान प्रतिभा के ये नक्षत्र घर घर भेज देता है, बात उसने जान ली थी।

नक्षत्रों को इस भाँति घर में ला कर और अपने प्रतिभावान् महापुरुषों के नाम दे कर उसने स्वर्ग और पृथ्वी का हमेशा के लिये गठबंधन किया। दुनियाँ के सभी प्रतिभावानों के केन्द्र बिंदु बालक ही हैं। यह जानकर ही दिव्य दृष्टि रखनेवाले अपने पुरखों ने नक्षत्र मंडलके ध्रुवपद पर इसका अभिषेक किया है। उनकी यह जीवनकला भूला देने से ही हमारे जीवन पर अवसाद की छाया पडी है। इसीलिये साँझ के समय घर लौटते वक्त में आकाश के सितारे जी भरकर देख लेता हूँ और उसके बाद ही घर में कदम रखता हूँ।

● ●

रूपान्तरकार : ग. वा. करमरकर





अनुक्रमणिका

'गंगा-लहरी'





अनुक्रमणिका

एक प्रदीर्घ प्रीतिकथा

वेळुलीला

—— पुरुषोत्तम भास्कर भावे

यह वही चेहरा है, जिसे देखकर ज़माने से पहले मैं बावला बना था। इसी चेहरे के नाज़ से दंग हो कर मैं ने उसे चाहा और अज़ीब चाह से चाहा था! वह लालच, अब कहाँ? वह रौनक अब कहाँ? कहाँ है वह सारा ऐब?





अनुक्रमणिका

दुनियाँ की गतिविधि की धारा में
कोई अजीब तरह से
फँस गया है –
कहीं आप तो नहीं ?
जीवन की विस्मयकारी कहानी !



१

विन्सेण्ट रोड़, दादर,
६ जून १९३७

प्रिय, गोपी

आखिर हम बम्बई पहुँचे। न पहुँच कर करते भी क्या ? ' बोरगाँव ' वाले अकस्मात हर दिन तो नहीं होते ! चाहता था कि एकाध दूसरा मीठा अकस्मात गाडीमें ही हो जायें; लेकिन ऐसे अकमास्तों और दुर्घटनाओं के प्रसंग सिर्फ उपन्यासों के नायकों के जीवन में होते हैं। हमारे भाग में ऐसी कोई दुर्घटना शायद लिखी नहीं है। लेकिन सच कहे तो मेरा डिब्बा बिल्कुल ' सूखा ' नहीं था। नागपूर से बम्बई की यात्रा और पाँच सौ बीस मीलों की सफर में दो–चार दुर्घटनाएँ होने योग्य सामग्री मेरे डिब्बे में ज़रूर थी। लेकिन हमारे नसीब का तारा जिस ' भयंकर मोड ' के खतरे को ले कर जागा वह तो बिल्कुल उलटी गंगा की तरह ! मेरी पडोसमें बैठी हुई गोशा पहनी हुई बिबी तुम्हें याद है ? मेहेंदी से रंगे हुए उसके गोरे हाथ ? उसके हाथ के तलुए ही हमें दिखाई देते थे। और गोशे की जालीमें से टकटकी लगानेवाली उसकी स्याह आँखों की मतवाले पंछी के परोंकी जैसी फड़फड़ाहट ! भीड के धक्कम धक्के की पहली लहर की फटकार ने उसे मेरे पास मेरी बैठक पर ढकेल दिया, और उस से जरा पीछे उस के पास वाले बूढे को। चम्पू दोस्तने उसी समय अन्दाजा फर्माया कि मधु की बम्बई अब गाड़ी में ही उतर आई है। कर ले, चाहिए उतना मास कॉण्टॅक्ट ! भला मुझे क्या पड़ी है ' कॉण्टॅक्ट ' की गरज़ ? भीड़ने ही उसे और उसका पीछा करनेवाले बूढ़े दाढ़ीजार को अपनी जगह में गिड़ाकर चिपका कर बिठाया था।

गाड़ी के धक्के और भीड़ के मुक्के...मुझे लगा कि अब क्या पूछे, सितारा बुलन्द हुआ है। तुम लोगों के मुँह के पानी का गीलापन मैं ठीक तरह जानता था। बुमनराव (बामन को इस खत को चाहिए तो दिखाओ) पुटपुटाने लगा, " मुझे बम्बई का तिकट काट के दीजिए जी। " आलूजंग ने ईर्ष्यासे कहा, " मधु के बदले अगर हम होते तो क्या ही अच्छा होता ! ". तुमने कहा " मधुकी जगह पाने के लिए बी. एस्. सी. में अव्वल दर्जे में आना चाहिए, मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिलना चाहिए और तिसपर मधु के जैसी सूरत पानी चहिए। नहीं तो तुम बेटाजी आलू जंग, तुम्हारी मनहूस सूरत देखते ही एकाध हिडिम्बा भी मील भर के फासले पर से भाग जाएगी। "

तुम सब लोगों के ठहाके मेरे मनमें अब भी गूँज रहे हैं। गाड़ीने स्टेशन से बिदाई लेने के बाद तुम लोगों के पाँच–छः रूमाल हवा के संग हिलने लगे। अब भी वह सारा दृश्य मेरी आँखों के सामने हिलता है। गाड़ी आखिर का मोड़ ले कर चलते दमतक मैं गर्दन को लंबी कर तुम लोगों को देखता जाता था।— मान न मान लेकिन सच कहता हूँ, पासवाली गोशे की हसीना को भी बिल्कुल भूल गया था। गाडी के साथ तुम सब लोक कुछ थोडी देर चले उसके बाद प्लैट-फ़ॉर्म के कोने पर चौडेपर खडे रह कर सब खडे रहे ! जिराफ़ देशपाण्डे का सिर मुझे काफ़ी देर तक दिखाई देता था। बाद में लोगों के हिलनेवाले हाथ, आखिर में जिराफ देशपाण्डे का हाथ और उसके बाद... बाद में सब कुछ मिट चुका ... !

एक पल भर में ! पलक की झँप की निमेष में सब कुछ स्वप्नवत् बन गया। अभी अभी दो–तीन मिनटों से पहले मैं तुम लोगों के संग बात–चीत करता था। वह सारे निशान कितने जीवित थे।

हर कोई आँखों से ओझल बना था। पिछले चार सालोंका अपना हम सफरीका वह ज़माना ! हँसी-खुशी के दिन ! रात भर जागने की वे कई रातें। वे सैर-सपाटे, एक साथ देखे हुए सिनेमा ! मज़ाक-दिल्लगी की मटरगश्तियाँ ! गणेशोत्सवों के वे बरसाती दिन ! दीपावलि के अवसर के वे शीतल, सुगंधित विमल दिन ! परीक्षा के मौसमी परिश्रम के गरम उसास !... नागपूर नगरी का चार सालोंका वह जीवन अब सदा के लिए मानों बीत गया। तुम लोगों के हिलने वाले हाथों को देख कर बीता जमाना एकदम जीवित हो कर मुझे अतीत काल में ले चला गया। जी में एक अजीब मचलन हुई। बेहद हदीसा छा गया। अखिर में. जिराफ़ देशपाण्डे से आलू जंग को छोटे लड़के की तरह कंधे पर उठा कर मुझे ' टा-टा ' करने लगा, उस समय मैं अपनी हँसी को रोक भी नहीं सका। यों लगा कि बम्बई में मैं कइ बातें देखूँगा, लेकिन क्या तुम लोगों के जैसे दोस्त मुझे कभी फिर से मिल सकेंगे ?

मैं जरा *Sentimental* हो रहा हूँ, सच है न ? लेकिन इन्कार क्यों करूँ ? उस वक्त *Sentimental* होने को हुआ था, यह सही ! गाडी ने दो-चार मोंड़ो पर से जबर्दस्त धक्के लगाए, उस वक्त वह यवन सुन्दरी-नाजुक हसीना-मेरी गोद में ढुलक गई थी, फिर भी मेरा ध्यान उस की तरफ नहीं था।

—अरे, भाई। उस गोशेवाली-बुर्केवाली औरत का किस्सा

अनुक्रमणिका





बतलाना मैं बिल्कुल भूल गया। पता नहीं मैं क्या लिखता था... लेकिन कुछ भी हो, उसके साथ का इलाज तुम लोगों की यादगार की ग़मग़ीनी हालत पर अच्छा असर कर सका। गाड़ी छूटते समय तुम लोगों के मन में जो विचार होंगे लगभग उसी प्रकार के खयाल मैं भी करता था। ये किस बूते पर कहूँ कि उस बुर्केवाली के मन ये खयाल न होंगे? गाडी के धक्कों के साथ अपने को सम्हाल लेने की 'बदन सिकुडाई' उसने बिल्कुल न की। वह मेरी ओर बुर्के की जाली में से 'पर्दाबाजी' न करते हुए खुले आम देखती थी। मैं ने भी चिड़ियाँ का रंग समझ लिया। मुझे लगा कि इसके वर्ताव में अनचहापन या अनमना पन नहीं है, इसलिए मैंने अपने को जरा और इस ओर खींचा और बिछौने पर वह बैठे इस ढंगसे जरा खाली छोड़ दी। लेकिन जो हुआ सो उलटा ही।

हमारा सुख उसके साथवाले दाढ़ीजार बूढे को अखरा और वर्धा स्टेशन आते दम तक वह ही उसे अलग 'बाजू में' हटा कर हम दोनों के बीच बैठा। और फिर पूछिये मत, रात भर मैं उसी के लातों का ग़ुलाम बना।

गोशा और स्त्री समाज की पराधीनता के सम्बधमें मेरे मन में उस समय विचारोंका बड़ा बवण्डर जागा। किसी भी सुन्दरी को गोशे में बाँध कर रखना यह उस लड़की पर और उसके अड़ोस पड़ोस के लड़कों पर सरासर अन्याय है।—बुर्के में की स्त्री एक लड़की है और सुन्दरी है इसके बारेमें बुर्केका खयाल न करते हुए मैं ने अपनी राय तय कर डाली है। स्त्री समाज की पर्दे और बुर्के की प्रथा को बाकायदा क्यों न दूर किया जाएँ? सौंदर्य की संपदा को छिपाकर उसका चोरी चोरी से सौदा इस नए भारत में चुप चाप सहा जाएँ... इत्यादि इत्यादि...।

हाँ, लेकिन इस बुर्के को अगर कानून की मदद से हटा दें तो वह जिस तरह वरहान होगा वैसे ही अभिशाप भी साबित होगा। कारण यह है कि सुन्दर स्त्रियों का असुन्दर स्त्रियों के साथ जो विषम प्रमाण है उसको ध्यान में लेते हुए मन में खयाल जागता है कि बुर्का होना ही अच्छा है। क्या जाने इसी बुर्के की ओट में कई बदसूरत औरतें छिपी होंगी! जिसमें आखिर भलाई पुरुषों की ही है।

खैर! तो लिखने का मतलब यह है कि नागपूर–बम्बई की हमारी यह यात्रा बिना किसी विशेष दुर्घटना से समाप्त हुई। यात्रा में के शीर्षासन, मयूरासन के प्रकार करने में न मुझे मज़ा मिलता था न बतलाने से उनकी रोचकता बढ सकती है। उस यवन–सुन्दरी की कहानी शोकान्तिका बनी।

आज इस बम्बई नगरी की धरतीपर सिमटे बदन से और सकुचे मन से कदम रखता बना। कॉलेज का प्रारम्भ होने को अब भी दो-तीन दिनों की अवधि है। उससे पहले ही कॉलेज से जरा जाना-पहचाना बनूँ इसलिए आज या कल कभी फ़ुर्सत से वहाँ जाना चाहता हूँ। गोपी, अब बड़ी मज़े की बात है की विज्ञान का उपाधि धारी होने के पश्चात् भी फिर से मुझे कॉलेज के प्रथम वर्ष से प्रारम्भ करना पडेगा। आखिर तुम्हारा भी लॉ का पहिला ही साल होगा। मानों, कहना होगा कि, अपने बुढ़ापे में बचपना फिरसे शुरू हुआ है! फ़र्क इतना ही है कि लॉ के जंजाल में से तुम दो सालों में रिहा हो जाओगे और मेडिकल कॉलेज की प्रसूति क्रिया का यह काम साढ़ेचार-पाँच सालों तक चलता रहेगा। यह कोर्स बड़ा जटिल होता है। इधर की परीक्षाओं में एक-दो बार फेल होना कोई नीचे दिखाई देनेवाली बात मानी नहीं जाती। मतलब यह है कि तुम बड़े कानूनी 'पण्डत' बनकर अपनी 'दूकान' खोल बैठोगे तब भी हम विद्यार्थी ही रहेंगे। भविष्यत् में तुम मालदार आदमी बनोगे, ऊँचे न्यायालय के न्यायाधीश–अदल–ए–जहाँगीर–अदालती बनोगे, हो सकता है देश के प्रधानमंत्री भी बनोगे, लेकिन फिर से कभी कॉलेज के विद्यार्थी नहीं बनोगे! यह आनन्द एक बार मिट चुकने पर फिरसे लौटता नहीं है। आदमी अपनी बाद की जिन्दगी में चाहिए वह रुख अपना सकता है। परीक्षा में शामिल न होते हुए भी बड़प्पन के बूतेपर विश्वविद्यालयों से जबरन् चाहिए उन उपाधियोंको पा सकता है; लेकिन वह फिरसे विद्यार्थी बनने के सुख से वञ्चित ही रहता है। समझ में आया भाई जान? इसीलिए मेडिकल के आनेवाले चार सालो में मैं चाहिए उस तरह से मौज और दिल बहार को लूटना चाहता हूँ! दर असल वही मेरा मतलब है! फिरसे बेटा, किस बाप का बेटा जवान बनने वाला है? *Cheerio* गोपी!

श्री पुरुषोत्तम भास्कर भावे : अब 'दीपावली' के पाठकों के लिए कोई नवीन कलाकार नहीं हैं। वयःसन्धि कालीन यौवन की आहट की सूक्ष्म तरल संवेदना को अत्यन्त मार्मिकतासे अंकित करनेवाली 'सत्रहवां वर्ष' (दीपावली–१९५३) कहानी हिन्दी कथा क्षेत्र में बड़े उत्साह से स्वागत पा सकी। कर्तव्य के प्रति सर्वस्व का बलिदान करने के उपरान्त भी संपूर्ण सार्वभौमिक जीवन की दृष्टि से 'कर्तव्यपन' का खोखला पन बडी कठोरता से निवेदित करनेवाली और आवेगमय भावना व प्रभावोत्पादक भाषा का अत्यन्त सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करनेवाली 'मुक्ति' (दीपावली–१९५४) कहानी हिन्दी कथा साहित्य का अपूर्व रत्न बन बैठी है।

आपकी कहानियों में ठोस अनुभूति की प्रकाण्ड शक्ति होने के कारण उनका स्वागत किसी भी देश में किसी भी समय पर कोई भी रसिक करेगा! अनुभूति की इसी तीव्र शक्ति के कारण मराठी साहित्य क्षेत्र में आपने 'भावे-शैली' निर्माण की है, जिसकी सर्वोपरि विशेषता 'भावना की अत्यन्त सूक्ष्म रेखाओं का बडी कुशलता से व्यक्तीकरण,—इन शब्दों में परिचित करायी जा सकती है। किसी आलोचक ने आपका संक्षेप में परिचय देते हुए कहा है कि 'श्री भावे शब्द प्रभु है। भाषा मानों बाँदी बन कर इनके इशारे पर नाचती है।'

'दीपावली' का बड़ा सद्भाग्य है कि इस कलाकार की मराठी साहित्य में किसी एक जमाने में 'अत्युत्तम' मानी हुई इस प्रदीर्घ कथा का रूपान्तर इस वर्ष प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

हमें विश्वास है कि 'दीपावली' के इस वर्ष के इस अनन्य आकर्षण का राष्ट्रभाषा प्रेमी अवश्य स्वागत करेंगे—क्यों कि इस में मराठी साहित्य का बल है, और वैभव है!

समशेरजंग आलूजंग, जिराफ़ देशपाण्डे, डेंगरू, गोविंद, प्रभाकर, हरेक से अपना नमस्कार बतलाना। कह देना कि फ़ुर्सत पा कर खतावत करते जाना।

और क्या लिखें !

स्नेहांकित
मधु



२

विन्सेण्ट रोड़, दादर
२४ जून १९३७

प्रिय गोपी,

तुम्हारा पत्र मिला। वर्ग में न जाते हुए भी तुम्हारी हाज़िरी लगती है ? तो फिर तुम लोग बाहर की बालेंदा की चाय की दूकान में बैठे-बैठे गपशप में ही वक्त को बरबाद करते हो क्या ? नागपूर का लॉ कालिज याने सचमुच बड़ी मज़े की चीज़ है। लेकिन हमारे मेडिकल कॉलेज की बात का हाल मत पूछो, जरा अलग ही मामला है। फिजिऑलॉजी और ॲनोटॉमी की राम कहानी शुरू हुई है। जरा थोड़ी लापरवाही बतलाई कि हम पूरे मिट चुके ! बिल्कुल सिर को कफ़न बाँधे और गर्दन हाथ पर लिए बाप-दादाओं को याद कर के यहाँ अध्ययन करें, फिर भी यहाँ कभी कभी खतरा होता है। तो फिर जो जानबूझ कर लापरवाह बनेगा उसके हाल का खयाल ही करो। अपने नागपूर का सोहोनी याद है तुम्हें ? पिछले बारह सालों से वह मेडिकल कॉलेज में पढ़ता है। याने एकाध को अँग्रेजी पहली से ले कर बी. ए. तक की पढाई के लिए जितना समय लगेगा, उतनी अवधि सोहनी ने केवल मेड़िकल कॉलेज में ही गुजार दी है।

मैं अबतक पहली श्रेणी पाता रहा यह तो बडी आफ़त बन बैठी है। जिसके बदौलत, अनुत्तीर्ण होने की भी अनुमति नहीं माँगी जा सकती है। इसी कारण मैं ने बिल्कुल प्रारम्भसे ही अध्ययन की टेक को चालू रखने की बात ठान ली है। अध्ययन की खातिरदारी करने के बाद बाकी शेष समय दिल बहलाव और मौज-मज़ाक में जरुर बिताने वाला हूँ।

मन्मथ की तुम्हें याद है ? वह अपने से दो साल आगे था। उसने यहाँ पर बडा अच्छा नाम कमाया है। मन्मथ के कपडे, लज्जतदार अँग्रेजी और छलैयेबाज रहनसहन दी अदा इधर मेडिकल कॉलेज में भी ठीक तरह से निखर कर चमक कर दिखने लायक है। वह तो दो हाथों से दौलत को बिखेरता और फेंकता जाता है। *Spend more and you get more* — दौलतको बहाइए और मालूम होगा कि दौलत की बाढ बढ़ती है-यही उसकी ज़िंदगी का मक़सद है।

कर्ज़ और छोरियाँ मन्मथ के निजी खास साथी है। आकण्ठ कर्ज में होने के बावजूद भी उसके चेहरे पर गले शिकवे की कोई लकीर नहीं मिलेगी। खाइयो 'पिइयो', कर्जदार बनियो, चैन करियो, 'लेकिन कभी अनुत्तीर्ण न होइयो' – इस प्रकार का उसका जीवन प्रवाह का संक्षेप में परिभाषामय रूप है ! दिल चाहे उतनी मटरगश्ती करने के बाद भी परीक्षा बड़ी ऊँची श्रेणी में पास होता है, इसके बारे में कइयों को बडा अचरज मालूम होता है। सच कहना हो तो, वह लड़का जितना शरारती है उतना ही अक्लमंद है। वैसे ही वह जितना चैन विलासी है उतना ही निश्चयी और उद्योगी है। अबतक मैं बड़ी सीधी लकीर से चलता रहा; और उस सीधे पन के फल भी भुगते। इस के बाद मैं मन्मथ का गुरूगण्डा बाँध लेनेवाला हूँ। लेकिन अबतक तो किसी भी बात का पता नहीं है। सिर्फ़ मुर्देचिरन में हूँ। हम प्रथम वर्ष के लड़कों का नर्सेस के साथ खींचातानी करने के बाद ही सम्बन्ध जुड़ाया जा सकता है ! वर्ग में जो हमसाथी लड़कियाँ हैं वे 'बिनवाइन' ही हैं; उनके ब्याह नहीं होते हैं, इसीलिए शायद मेडिकल कॉलेज में दाखिल हुई हैं ! उनके ब्याह करने पर शायद एकाद ही आदमी पर कुछ बला गुजरती ! लेकिन अब तो उनके डॉक्टर बनने से हजारों पर कयामत गुजरेगी इस में कोई शक नहीं ! उन के चेहरे और दवाई के इलाज़ के बदौलत ! मेडिकल कॉलेज का नाम तुम कई बार सुन चुके होंगे। लेकिन 'वैसी' खुशी और मज़ाक की बातें तीसरे वर्ष के कोर्स में होतीं हैं। फिलहाल तो मैं बिल्कुल वीरान जीवन बसर कर रहा हूँ। मैं ने वैसे सुना था कि बम्बई एक अजायब घर है; कई शान शौकत की बातें यहाँ हैं, लेकिन अब तक उन में से कुछ भी मेरे नसीब नहीं हुआ है।

तुम्हारा
मधु







२

विन्सेण्ट रोड़, दादर
३ जुलाई १९३७

डियर गोपी जी

तुम्हारा उपदेशात्मक समाचार पत्र पढ़ा।* तुम्हें शायद यह लगा है कि घर की ओर से मुझे उपदेश की मात्रा कम प्रमाण में दी जाती हो, इसलिये हम भी उस कमी को घटाने की कोशिश करें। वकीली सलाह की इतनी ज़ल्दबाजी ?

मैं मन्मथ बॅनर्जी को गुरू मानूँगा इसका मतलब कतई यह नहीं कि मैं बिल्कुल उडपटाँग वर्ताव रखूँगा और अस्तबल से रिहाई पाया हुये घोडे के जैसा बनूँगा। मन्मथ बानर्जी के बारे में भी लोगों की दर असल ग़लत धारणाएँ हैं। वह दिखता है वैसा बेशऊर तरीक़त लड़का नहीं है। समझे तुम ? उसके पागलपने में ढंग है। वह शराब पीता है, लेकिन कभी नशे में चूर पाया नहीं जाता। वह लड़कियों के संग रास खेलेगा, लेकिन गठबन्धन के फाँसे से अलग ही रहेगा। वह कर्ज़दार होता है, लेकिन किसी को डूबा देने की खबर कानों नहीं है। और 'दौलत को बाँटते जाओ, तुम्हें ज्यादह मिलता जायगा' वाली नीति उसके विषय में एक सौ दस टका कामियाब हुई है। कुछ पूछो मत, जहाँ पैसे जाना मुश्किल माना जाता है वहाँ मन्मथ की जीत ही जीत होती है। 'रमी' और 'ब्रिज' के ताश के खेलों में वह तो बड़ा सिकंदर माना जाता है। दूसरों को खाई में गिरा देने वाली सुलभ पहेलियाँ और रेस के घोड़े, इस के नसीब के बुलन्द सितारे हैं। बे-भूल से इस के ऐलान सही निकलते हैं। लड़कियों का बात ही क्या पूछे ? उस के पीछे मानों उन का ताँता बँधा रहती है। घुड़ दौड़ चलती है उनकी ! अर्धांग्ल और पारसी और न जाने उस की बिरादरी से नाता लगाना किस को नापसन्द है ! मन्मथ सचमुच एक बड़ा मीठा, सुहाना और अक्लमन्द लड़का है। केवल गुण ही क्यों अवगुणों के बूते पर भी वह यहाँ बड़ी लोकप्रियता और सफ़लता पा बैठा है।

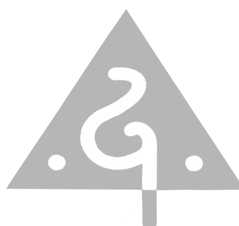
और अगर मैं कहूँ कि बाद की ज़िन्दगी में उस की तरक्की इसी रफ्तार से होगी तो, मैं ग़लत नहीं बतलाता हूँ। और इसीलिए मैंने कहा है कि अगर मैं मन्मथ को अपनी आँखों के सामने आदर्श के रूप में ठानूँ तो उस में आखिर किस प्रकार की बुराई है ? वैसे तुम तो जानते ही हो, सीधेपन से वर्तन रख कर मैंने भी, जिन्दगी में क्या पाया है ? साधन की शुचिता का अवलम्ब, मुझे लाभदायक तो जँचा नहीं है। आलापनबाजी ने मेरी कोई खास सहायता नहीं की है। बिल्कुल किसी रोमानी उपन्यास के नायक की भाँति मैं ने उस कामना से दिलो-जान से अपने को भूल कर प्रेम किया, विवाह के वचन के गठबन्धन भी हुए,

निश्वासों से कितनी एकांत की रातें दर्द से भींग गईं; हर दिन को एक इस गिनती से प्रेमपत्रों के ढेर रचे, डॉक्टरी हासिल करने के अपने मनसूबे को रत्तीभर भी नहीं माना, और सारे अरमानों को छोड़कर उस लड़की से ब्याह करने को तैयार मैं हुआ—इस सारे त्याग का फल भी किस शान से मिला? आँचल में काँटे और अक्ल के पीछे लट्ठ ले कर घूमने के क़िताब! अपनी 'इश्क हवालात' की पहली दास्ताँ का एक दिलचस्प किस्सा—जिसका हिरो था: दत्ता भुस्कुटे-(उसकी) पहली मुहब्बत का वह नाजुक दौर मैं ने सुना और हम तरक्की चाहते हैं, इस बात का जीते जी सबूत देने के लिए, वह सारी बातें सुनकर मैं ने उसे क्षमा किया। उसके मासूम और सुहावने (इसीलिए लुभावने) चेहरे की ओर देखकर यह उसका *Calf Love*—काफ़ लव्ह—होगा, इस तरह का तर्क हम मन ही मन कर बैठे, और अन्ततः खुद ही एक ठीक साँड़ बने। मेरा उसके साथ जो किस्सा बना था, उसे 'काफ़ लव्ह' में ही ज़मा करना अधिक ठीक होगा—सो कहना अधिक सरल है। मेरे जीवन की उस पहली लड़की पर मैं ने जो कुर्बानियाँ की उनको शब्दों में कैसे बाँध सकूँगा? वह चिलचिलाती धूप या प्रेम की चाँदनी रात? क्या कहूँ, और कैसे कहूँ? सच-मुच उस बावले पन के ज्वार में संसार को ठोकर लगाने को खड़ा रहा। घरकी बपौती जायदाद से हाथ धोने के लिए भी तैयार बना था। घरवालों की अवज्ञा मेरे बाएँ हाथ का खेल बना था। अबतक के जीवन में पिताजी की पूजनीय और श्रद्धेय माननेवाला मैं, कामियाब डॉक्टर बनने की अपनी जीवन साध पर पानी फेरना पसंद करने लगा। इतना ही नहीं लेकिन जब दूसरे किसी रईसजादे से प्रेमविवाह तय कर के उसने मुझसे बिदाई ली तब तो मैं आत्मत्याग करनें के लिए भी तैयार बना था। बीते दिनों की ये बातें जब मैं देखता हूँ तब क्या हँसना, क्या रोना, अपनी सुधि-बुधि पर मुझे अचम्भा होता है! *By Jove*! दोस्त, *Baby faced* छोकरी के लिए मेरे जैसा अध्ययन प्रेमी, तंदुरुस्त दिमाग़ का लडका भी न जाने कुछ का क्या करने निकला था। एक फटकार में प्रेम विवाह, आन्तर्जातीय विवाह, तंगदिलीमन्द मातापिता के ख़िलाफ़ बग़ावत, अपने अकेले इकलौतेपन की ज्यादह फिक्र न करते हुए उनकी देढ-दो लाख की इस्टेट पर ठोकर! जीवन की, पुरुषार्थ की, यश की, सारी कल्पनाओं को बेमतलब और 'छिछला' मानकर मैं पाणिग्रहणार्थ उसके लिए चल पड़ने को तैयार बना था। पंचमहाभूत व मेरी वांशिक सम्पत्ति इन को साक्षी समझ कर वह भले ही बेमतलब से कुछ भी क्यों न हो बकी हो, लेकिन मेरे पिताजी ने मुझे दिए हुए कोरे जवाब और मेरी आकिञ्चन स्थिति में घर से बाहर निकलकर 'दूर बहुत दूर...' कहीं किधर बनकुञ्ज में 'प्रेमनगर' बसाने की मेरी सुहानी मधुर कल्पना ने उस चालाक़ लड़की को सचमुच घबराया। और बादमें रोमियो कि रोमानी परम्परा को निभाते हुए, घर के निर्वंश होने के बारे में ज्यादह सोच विचार न करते हुए, मैंने आत्मघात के विचार की निश्चिति बाँधना शुरू किया। छीः छीः छीः...पता नहीं! जिस्मानी फरेब के पेशे की मनहूस लेकिन मासूम चेहरे की *Make-up* वाली उस लड़की के लिए, *Baby faced* लौंडी के लिए न जाने क्या करनेवाला था मैं!

गोपी!...मेरे पिताजी ने यदि धीमी चालाकी का मेरे साथ सलूक न किया होता और तुम दोस्तों ने मुझे सम्भल के सम्हलाया न होता तो इस समय मैं बम्बई के बजाय स्वर्ग में होता। सूर्याजी मालुसरे के नमूने पर तुमने कृतघ्न बनकर लगाई हुई ललकार अब भी मुझे याद—"मधु, किधर भागते हो तुम? तुम्हारे इस मौत के दरवाजे में खड़ें पिता को त्याग कर तुम कहाँ भाग जाओगे? चलो पीछे हटो। तुम्हारे कमरे में टाँगी हुई फाँसी की रस्सी को हमने सदा के लिए काँट डाला है। *We will just laugh out your silly senseless love*.

और तुम सब घोडे के जैसे हिनहिनाने लगे। तुम्हारी उस हँसीसे, उस बे रोक-टोक की मज़ा मजाकी से और उस बुझदिल दिल्लगी के नतीजे से मैं संसार में बचके रहो। मेरे अहं को





अनुक्रमणिका

जगाने का, मेरे सुप्त पुरुषार्थ को जगाने का सच्चा श्रेय, गोपी, मेरे पिताजी साथ साथ तुम्हें भी देना उचित होगा। सुप्त लेखक को सराहना भाए इस व्यंग्य से तुमने कहा था... "मधु, तुम एक लड़की के लिए मरोगे? अपने को मिटाओगे? अरे, जिसने ब्याह के बाद तुम्हारे साथ दगाबाज़ी की होती, वह ब्याह से पहले ही तुम से फरेबी कर बैठी। सचमुच कितनी खुशहाली की बात है ये! दर असल तुम्हारे भाग का तारा इतना बुलन्द है, इसलिए तो यह बन सका! ऐसी निमक हराम लडकी के लिए, एहसान फरामोश लडकी के लिए तुम खुदखुशी करोगे? माता पिता, जिन्होंने इतने दिलो-जान से तुम्हें लाड़ प्यार से बडा किया, और हम सब तुम्हारे साथी, जिन्होंने तुम्हें अपना कहा, वे क्या इसलिए बने हैं कि किसी छटी हुई बदमाश लडकी के बदौलत तुम मौत की खाई में खुशीसे कूदो! कितनी लज्जा की बात है ये! सचमुच तुम इतने डरपोक अभिमान हीन, और क्लीव भी कैसे? इस जीवन में कुछ पुरुषार्थ कर के दिखाओ कि जिससे उस बेमुरव्वत लड़की को भी ऐसा लगे कि इसी लडके के संग ब्याह करने का मौक़ा मेरे हाथों आया था, लेकिन मैंने अपनी मूर्खता के कारण उसे हाथ से छूटने दिया। रोने-धोने की बारी अगर किसी के जिम्मे होगी, तो समझो कि वह उसको उठानी होंगी! दूसरे, उसके गोबर गणेश पति के पास सिर्फ़ दौलत होगी, तो तुम्हारे पास बुद्धि है, रूप है, कर्तृत्व है! भाई, तुम इस साल पास हो जाओ, बड़ी कामियाबी से पास हो जाओ, कि कामना के जैसी दूधमुँही लड़कियाँ तुम्हारे चरणोंपर लोट-पोट जाएँगी! जो लड़की को पचा नहीं सकता वह नामर्द इस इश्कबाजी में फँसे ही क्यों? वह केवल किताबों को कुरेदे और पहिले क्रमांक को लाए!"

इसीलिए कहता हूँ गोपी कि मन्मथ बॅनर्जी का जीवन पथ आँखों के सामने रखने में मुझे कोई खतरा मालूम नहीं होता! अगर तुम्हारा यह शक़ है कि, ऐसे क़िसी मायापाश के कारण मैं अपने अध्ययन और पढाई-लिखाई के काम के बारे में लापरवाह बनूँगा, तो उसे भी फ़िजूल मानना। कामना ने इस विषय में मुझे जीवन कर निश्चय करने योग्य पाठ पढ़ाया है। जीवन-दर्शन का दार्शनिक कहो, यदि चाहते हो तो! उसने बडी लगनसे भेजी हुई विवाह की कुंकम पत्रिका को मैंने बडी होशियारी से अपने पास सुरक्षित रखा है। सच कहना हो तो मोह की पिशाच्च बाधा से संरक्षण देनेवाला वह किसी पीर का 'तावीज़' लगता है मुझे। उस कुंकुम पत्रिका से मैं सचमुच स्फूर्ति को अनुभव कर रहा हूँ लेकिन जरा अलग मतलब से! मैं किस प्रकार का बर्ताव रखूँ और मुझे क्या करना उचित है, इन बातों का इशारा वह 'पत्रिका' मौन रूपसे करती जाती है।

तुमने मुझे उपदेश की दीक्षा देने का प्रारम्भ किया था इसलिए हनुमान जी की इस पूँछ की खबर लेने बैठा था। खैर!

'लॉ कॉलेज़' की आबो हवा में आवश्यकता से अधिक रूखा बनना कोई भलमनसाहत नहीं है। तिस पर लॉ-कॉलेज में 'हसीनों' की कमी होने से कॉलेज और भी काष्ठवत् सूखा बना होगा। भला यह भी बताओ कि: क्या कुरूप लडकियों की अपेक्षा लडकियाँ ही न होना अच्छा है या लडकियाँ बिलकुल न होने

की अपेक्षा कुछ विरूप–कुरूप लडकियाँ चाहिए ही ? तुम्हारी राय और अनुभव बताओ तो जरा ! यहाँ की बात ही कुछ अजीब है। इस बम्बई–नगरी में औरतों की तादाद का अहवाल मत पूछो ! भई, चाहे उधर जाओ औरतें...और औरतें ही मिलेंगी। सुना है कि इधर की आबोहवा औरतों के लिए बडी लाभदायी है। हवा ही अपौरुषप्रधान है; इसलिए पुरुषों को उससे कुछ लाभ नहीं है सो निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं है। लेकिन नारीजन द्वारा नियंत्रित यह वायुमान, हो सकता है, अन्ततः पुरुषों के उद्दिष्ट को ही सफल कर सकता हो !

बरसात की झडी बेरहमी से झरती है, बस पूछो नहीं ! जीवन अपने दायरे में बंदिस्त हो रहा है ! समँदर के किनारे पर हूँ, लेकिन अब भी सूखा-रूखा हूँ। कहते हैं कि बम्बई मजा-मज़ाकियों और ऐश-आराम में बसर करने वालों की है लेकिन अब तक अपने जिम्मे कुछ भी नहीं। एकाध तिनका भी नहीं ! अगर सब दिन इसी तरह गुजरेंगे तो गुरुदेव मन्मथ से कुछ गुरु गण्डा बाँध लेंगे। बच्चे लोगों को सलाम !

तुम्हारा
मधु



विसेण्ट रोड दादर
१८ जुलै १९३७

चि० गोपाल को अनेक आशिश :

विशेषोपरि विशेष :

गोपी, भाई देरी से भेजे हुए पत्र के बारे में इतना कोलाहल क्यों ? पंद्रह दिनों में एक पत्र : किसी मित्र के लिये यह नियम बड़ी उदारता का है। हर दिन पत्र लिखने के लिये क्या तुम 'कामना' हो ? और एक बताऊँ ? प्रिया के साथ विवाहित होने पर आदमी पत्र लेखन की कला बिल्कुल भूल बैठता है ! हमारे कॉलेज के विवाहित लड़कों को मैं बाकायदा देखता हूँ। अपनी पत्नी से खतावत करने के बजाय महाशय दूसरी स्त्रियों से पत्रव्यवहार करने के लिए अधिक व्याकुल ! संसार के ऐसे दस्तूर होते हुए भी, मैं तुम्हें जिस 'रफ्तार' से पत्र भेजता हूँ उसे तुम 'देरी' कह सकोगे ? जरा हिसाब तो करो ! तुम्हारे जैसे 'लेखकों की जाति' के आदमी 'नामकरण' क्या या, उत्थानिकरण' क्या एक ही है। 'मेडिकल कॉलेज' से जिस विषय–वस्तु – *Material* – की अपेक्षा तुम करते हो उसके बारे में मैं कुछ भी लिख नहीं सकता हूँ। यहाँ न है बाँस तो कैसे बजे बाँसुरी ?

बम्बई में हरकिस्म के लफड़े हर दिन सुनाई देते हैं। स्टोव से साडियों का जलना, छुरीबाजियाँ, कोई किसी को भगा ले गया है; इश्क की दर्दनाक कहानियाँ ! हाय भाग्य; मेरे जिम्मे तो कम से कम एक दिला दो ! पानी में रहकर मछली प्यासी ही रहेगी ? जिन्दगी बडी धीमी और अहिस्ता ठंडी ढंगसे रेंगती जा रही है। तुम्हारे जीवन में कुछ *Thrill* सनसनाहट – पैदा करने के लिए मेरे पास का एक हड्डियों का ढाँचा भेज दूँ ? यार दोस्त, खैरीयत है, वह भी एक औरत का ही है। तुम चाहोगे तो पहली मुर्दा फाड़ागी के वक्त मुझपर क्या गुजरी थी उसका ब्योरा लिख भेजूँ ? यदि आवश्यकता पड़ी तो उसे भी लिखकर भेजेंगे, फुर्सत पा कर ! हाँ, अगर उस का ब्यौरा अगर तुझे चाहिए ही हो तो कानन डॉईल की 'राउण्ड दि रेड लॅम्प' का आमुख ही पढ लो। तुम लेखक जाति-मात्र के सदस्य हो, इसे मैं किस कदर भूलूँ ? अगर कुछ खास विशेष और तिलस्माती बात हुई तो जरूर ही उसे लिख भेजूँगा। अरे भाई, तुम्हें नहीं तो और किस को लिखूँ ? मान लिया की बड़ी जासूसी कहानी है, लेकिन उसके लिए भी किसी पाठक अथवा श्रोता की आवश्यकता होती ही है न ? विवाह के जैसे मधुर रहस्य के लिए भी एकाध पुरोहितजी के मध्यस्त-दूतिकार्य की आवश्यकता होती है। लेकिन गोपी, मान न मान, अगर ऐसी कुछ घटना घटी, तो क्या मैं न चाहूँगा ? तुम चाहे उसके नाम-धाम, गाँव-ठिकाने छिपाकर रखोगे पर मैं तो उसको आस्वादित करनेवाला–*At first hand*–तो रहूँगा न ! हाय रे भाग्य, क्या करूँ आखिर ? अनॉटॉमी, फिजिऑलॉजी, टाँगें, हाथ — इनको ही विद्वत्तापूर्ण वैद्यकीय परिभाषा कोष में *Extremeties* कहलाया जाता है—फॉर्मेलीन इन्हें छोडकर ओर कोई बात ही नहीं है। जिन्दगी की यह रफ्तार सूखी, सीधी ओर विरंगी बनी है। *Oh, it is so dull, so very dull*, एकाध बड़ा पत्र लिखूँ ऐसा सोचूँ, तो लिखने के लिए हौसला कहाँ से लाऊँ ? ऐसी हालत में अगर तुम ही नागपूर का रोचक समाचार भेजोगे तब ही इस पनिया जिन्दगी में कुछ रंग भरेगा। *Feel so very bored*—बिलकुल ऊब गया हूँ।

तुम्हारा
मधु



५

विन्सेण्ट रोड–दादर
२८ जुलै १९३७

राजमान्य राज्यश्री गोपालराय जी की सेवा में सविनय नमस्कार !

पत्र में लिखने लायक विशेष कुछ नहीं है, इसलिए पत्रका प्रारम्भ जरा दीर्घसूत्री बनाया है। तुमने माँगा हुआ 'टॉड' का 'ॲनल्स ऑफ् राजस्थान' फिलहाल यहाँ मिलता नहीं है ! फोर्ट विभाग के लगभग सारे कोने छाने हैं ! इतिहास को पूछनेवाला आजकल कौन है यहाँ ? 'इश्क' हक़ीकतें चाहिए तो भेजूं ! गिबन का 'डिकलाइन ॲण्ड फॉल' मिला है, जिसे आज ही भेज रहा हूँ। क्यों, इतिहास की किताबों को माँग रहे हो; क्या कहीं एकाध ऐतिहासिक उपन्यास लिख–लिख देनेका विचार है ? हाँ, ये खूब रहा कि जब चलता जमाना फ़ीका पड़ता है तब इतिहास की ओर मुड़ना जरा फायदेमन्द होता है। हमारे चलते वर्तमानकाल की पूछिए नहीं, फिलहाल खोखला है ! कमसे कम हम अपने बारेमें तो जरूर कहें।
Cheerio !

——मधु



विन्सेण्ट रोड, दादर
६ अगस्त १९३७

प्रिय गोपाल,

....

स-स्नेह
— मधु

पुनश्चः *Fill in the blanks!* सभी पत्रोंमें अक्सर जो बातें होती हैं, उनमें से ही ऊपर कुछ लिखा है, सो समझना...बेटाजी!
— मधु



७

विन्सेण्ट रोड, दादर
८ अगस्त १९३७

माय डियर गोपीजी,

आज सवेरे बड़ा मज़ा आया! तुम्हारी लेखक की भाषा में कहना हो तो वह पँच पँच उपःकालीन वेला थी और मेघों का ओढन फेंक कर—या रात का कम्बल दुत्कार दे कर — भगवान सहस्त्ररश्मी अभी अभी अपने शीश को उत्तिष्ठवान् बना रहा थे। मैं कनिंगहॅम की 'विच्छेदन' शास्त्र पर की किताब लेकर बैठा था। जुलै के अन्त तक मैं ने टँगे और हाथों की कॉट छॉट की छॉटनी समाप्त की थी। थोरॅक्स — *Thorax* — का भी गला घोंटकर मैं आज से गर्दन कॉटने के लिए मुक्त हुआ था। पर छुरी चलाने का काम जरा जटिल और विल्कुल छटे हुए लडके का भी पूरा एक या डेढ महिना खाता है इसलिए इस नाजुक मामले में मैं 'कनिंगहॅम' साहबके जैसे सुयोग्य गुरू के साथ विचारविनिमय करता था और हमारा नामदेव स्टोव्ह को भभका कर चाय की तैयारी में मश्गुल था।

मान लो, मैं ये सारी बातें पार्श्वभूमि को रंगाने के लिये अथवा नंमन के रूप में कह रहा हूँ। अगर मतलब की बात बतलानी हो तो यों कहें कि दरवाज़े पर ठिकठिकाहट शुरू हुई। ऊबते जी से पुटपुटाते हुए मैं ने दरवाजा खोला; तो सामने दरवाज़े में दत्त बनकर एक अजनबी लडकी खडी थी—एक अपरिचिता मैं ने देखी।

—लड़की... हाँ — हाँ, सचमुच गोपी, एक लड़की! एक नाजुक हसीना, महीन और लुभावने, मचलन पैदा करने वाले कपडोंमें सिंगारी हुई, सत्रह अठारह साल की लड़की! वह लमहा! पलभर यकीन करना मुश्किल बना। बिलकुल भोर के समय, एक वैद्यकीय विद्यार्थी, कि जिसके बारे में गाँवभर ढिंढोरा पीटा जा रहा है, एक अभी-अभी खिली हुई कली की नई मुसकानेवाली एक लड़की आ कर खड़ी तैनात रखती है, आखिर इसका क्या मतलब?

"दरवाजे में क्यों? आइये, अन्दर आइये।"

मैं अपने आप अनजाने में बोलता गया। वह हँसी।—और उसी वक्त उसके साँवले गालों के वह मनोरम मोड और श्वेतशुभ्र दंतरेखाने मेरी आँखें भर दीं।— और वह अन्दर आयी। बिल्कुल अपनेपनसे। उसने छाता ओर पर्स कुर्सीपर रख दिये जो इतना सहजता से मानों यह कमरा जैसे मेरा अपना था वैसे ही उसका अपना भी था। मैं आसमान के तारे गिनने लगा। सिर को खुजलाया, यादगारों की कतारों को छानने की कोशिश की, लेकिन यह समझ न सका कि मैं ने उसे कहाँ देखा था! हमारी पहचान कब की थी? जहाँ तक यहाँ का सवाल था मैं किसीसे भी इतना परिचित तो था नहीं कि कोई यहाँ पर मेरे कमरे में अकेली आ जायें। नागपूरकी बात—एक अपवादको छोडकर—तुम जानते ही हो।

"क्षमा कीजिये, लेकिन..." मैं ने कहा। क्षमा कीजिये लेकिन मैं आपसे अपरिचित हूँ, यह मैं कहनेवाला ही था, इतने में वह कहती बनी, "क्षमा कीजिये, मैं जरा कष्ट देना चाहती हूँ। क्या आपको कुछ स्नो, साबू, ब्रिलियंटाईन चाहिये?"

तब भी मैं कुछ समझ न सका। अँधेरा फँट कर रोशनी बाहर नहीं आती थी। अपने नागपूर को किसी जवान लडके के कमरे पर जा कर कोई जवान लडकी स्नो, साबू, ब्रिलियंटाईन के बारे में पूछताछ करने का दस्तूर अनदेखा है। मैं सकपकाया। और थोडासा *outrage* बन गया। त्यों ही बाहर से बोझे वाले ने एक पिटिया अन्दर ला रक्खी। उस पर लिखा था 'मस्तानी प्रॉडक्ट्स लि० बम्बई।'

"मैं 'मस्तानी प्रॉडक्ट्स' की विक्रेती हूँ। लीजिये स्नो, इस की बास बड़ी मीठी है।" उस ने मेरे आगे शीशी को खोल कर कहा,

"मैं स्नो का इस्तेमाल नहीं करता।" मैं ने कहा।

"आप स्नो का उपयोग नहीं करते?" उस ने अचम्भा किया, "लेकिन आज कल के लडके स्नो का उपयोग करते हैं; लगभग सौ प्रतिशत।"

"होंगे, लेकिन मैं नहीं।"

"तो आप स्नोके खिलाफ़में है?"

"बिल्कुल खिलाफ़। लडकियाँ भी स्नो का इस्तेमाल न करें ऐसी राय है मेरी; तो लडकोंकी क्या बात?"

"तो फिर मैं आपको हेअर ऑईल दे दूँ?"

"जी बिल्कुल नहीं।"

"आप तैल भी नहीं लगाते?"

मेरे सिरपरके बालोंकी ओर उसकी निगाह सरसराती दौडती है।

"हाँ तेल लगाता हूँ, लेकिन शुद्ध कॅस्टर ऑईल।"

उसका चेहरा सुर्ख बनता है। फिर भी पेशेकी आमदा हँसी हँसकर वह आगे कहती है,

"तो फिर मैं आपको ग्लिसरिन सोप दिखाती हूँ। सचमुच वह आपको बड़ा पसंद आयेगा।"

"बिल्कुल पसंद नहीं करूँगा!" मैंने कहा,—"मैं अक्सर किसी भी साबू का इस्तेमाल नहीं करता।"

की अपेक्षा कुछ विरूप–कुरूप लडकियाँ चाहिए ही ? तुम्हारी राय और अनुभव बताओ तो जरा ! यहाँ की बात ही कुछ अजीब है। इस बम्बई–नगरी में औरतों की तादाद का अहवाल मत पूछो ! भई, चाहे उधर जाओ औरतें...और औरतें ही मिलेंगी। सुना है कि इधर की आबोहवा औरतों के लिए बडी लाभदायी है। हवा ही अपौरुषप्रधान है; इसलिए पुरुषों को उससे कुछ लाभ नहीं है सो निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं है। लेकिन नारीजन द्वारा नियंत्रित यह वायुमान, हो सकता है, अन्ततः पुरुषों के उद्दिष्ट को ही सफल कर सकता हो !

बरसात की झडी बेरहमी से झरती है, बस पूछो नहीं ! जीवन अपने दायरे में बंदिस्त हो रहा है ! समींदर के किनारे पर हूँ, लेकिन अब भी सूखा-रूखा हूँ। कहते हैं कि बम्बई मजा-मज़ाकियों और ऐश-आराम में बसर करने वालों की है लेकिन अब तक अपने जिम्मे कुछ भी नहीं। एकाध तिनका भी नहीं ! अगर सब दिन इसी तरह गुजरेंगे तो गुरुदेव मन्मथ से कुछ गुरु गण्डा बाँध लेंगे। बच्चे लोगों को सलाम !

तुम्हारा
मधु



४

विसेण्ट रोड दादर
१८ जुलै १९३७

चि० गोपाल को अनेक आशिश :

विशेषोपरि विशेष :

गोपी, भाई देरी से भेजे हुए पत्र के बारे में इतना कोलाहल क्यों ? पंद्रह दिनों में एक पत्र : किसी मित्र के लिये यह नियम बड़ी उदारता का है। हर दिन पत्र लिखने के लिये क्या तुम 'कामना' हो ? और एक बताऊँ ? प्रिया के साथ विवाहित होने पर आदमी पत्र लेखन की कला बिल्कुल भूल बैठता है ! हमारे कॉलेज के विवाहित लड़कों को मैं बाकायदा देखता हूँ। अपनी पत्नी से खतावत करने के बजाय महाशय दूसरी स्त्रियों से पत्रव्यवहार करने के लिए अधिक व्याकुल ! संसार के ऐसे दस्तूर होते हुए भी, मैं तुम्हें जिस 'रफ्तार' से पत्र भेजता हूँ उसे तुम 'देरी' कह सकोगे ? जरा हिसाब तो करो ! तुम्हारे जैसे 'लेखकों की जाति' के आदमी 'नामकरण' क्या या, उत्थानिकरण' क्या एक ही है। 'मेडिकल कॉलेज' से जिस विषय–वस्तु – *Material* – की अपेक्षा तुम करते हो उसके बारे में मैं कुछ भी लिख नहीं सकता हूँ। यहाँ न है बाँस तो कैसे बजे बाँसुरी ?

बम्बई में हरकिस्म के लफड़े हर दिन सुनाई देते हैं। स्टोव से साडियों का जलना, छुरीबाजियाँ, कोई किसी को भगा ले गया है; इश्क की दर्दनाक कहानियाँ ! हाय भाग्य; मेरे जिम्मे तो कम से कम एक दिला दो ! पानी में रहकर मछली प्यासी ही रहेगी ? जिन्दगी बडी धीमी और अहिस्ता ठंडी ढंगसे रेंगती जा रही है। तुम्हारे जीवन में कुछ *Thrill* सनसनाहट – पैदा करने के लिए मेरे पास का एक हड्डियों का ढाँचा भेज दूँ ? यार दोस्त, खैरीयत है, वह भी एक औरत का ही है। तुम चाहोगे तो पहली मुर्दा फाड़ागी के वक्त मुझपर क्या गुजरी थी उसका ब्यौरा लिख भेजूँ ? यदि आवश्यकता पड़ी तो उसे भी लिखकर भेजेंगे, फुर्सत पा कर ! हाँ, अगर उस का ब्यौरा अगर तुझे चाहिए ही हो तो कानन डॉईल की 'राउण्ड दि रेड लॅम्प' का आमुख ही पढ लो। तुम लेखक जाति-मात्र के सदस्य हो, इसे मैं किस कदर भूलूँ ? अगर कुछ खास विशेष और तिलस्माती बात हुई तो जरूर ही उसे लिख भेजूँगा। अरे भाई, तुम्हें नहीं तो और किस को लिखूँ ? मान लिया की बड़ी जासूसी कहानी है, लेकिन उसके लिए भी किसी पाठक अथवा श्रोता की आवश्यकता होती ही है न ? विवाह के जैसे मधुर रहस्य के लिए भी एकाध पुरोहितजी के मध्यस्त-दूतिकार्य की आवश्यकता होती है। लेकिन गोपी, मान न मान, अगर ऐसी कुछ घटना घटी, तो क्या मैं न चाहूँगा ? तुम चाहे उसके नाम-धाम, गाँव-ठिकाने छिपाकर रखोगे पर मैं तो उसको आस्वादित करनेवाला–*At first hand*–तो रहूँगा न ! हाय रे भाग्य, क्या करूँ आखिर ? अनॉटॉमी, फिजिऑलॉजी, टाँगें, हाथ — इनको ही विद्वत्तापूर्ण वैद्यकीय परिभाषा कोष में *Extremeties* कहलाया जाता है—फॉर्मेलीन इन्हें छोडकर ओर कोई बात ही नहीं है। जिन्दगी की यह रफ्तार सूखी, सीधी ओर बिरंगी बनी है। *Oh, it is so dull, so very dull*, एकाध बडा पत्र लिखूँ ऐसा सोचूँ, तो लिखने के लिए हौसला कहाँ से लाऊँ ? ऐसी हालत में अगर तुम ही नागपूर का रोचक समाचार भेजोगे तब ही इस पनिया जिन्दगी में कुछ रंग भरेगा। *Feel so very bored*—बिलकुल ऊब गया हूँ।

तुम्हारा
मधु



५

विन्सेण्ट रोड–दादर
२८ जुलै १९३७

राजमान्य राजश्री गोपालराय जी की सेवा में सविनय नमस्कार !

पत्र में लिखने लायक विशेष कुछ नहीं है, इसलिए पत्रका प्रारम्भ जरा दीर्घसूत्री बनाया है। तुमने माँगा हुआ 'टॉड' का 'ॲनल्स ऑफ् राजस्थान' फिलहाल यहाँ मिलता नहीं है। फोर्ट विभाग के लगभग सारे कोने छाने हैं ! इतिहास को पूछनेवाला आजकल कौन है यहाँ ? 'इश्क' हकीकतें चाहिए तो भेजूँ ! गिबन का 'डिकलाइन ॲण्ड फॉल' मिला है, जिसे आज ही भेज रहा हूँ। क्यों, इतिहास की किताबों को माँग रहे हो; क्या कहीं एकाध ऐतिहासिक उपन्यास लिख–विख देनेका विचार है ? हाँ, ये खूब रहा कि जब चलता जमाना फ़ीका पड़ता है तब इतिहास की ओर मुड़ना जरा फायदेमन्द होता है। हमारे चलते वर्तमानकाल की पूछिए नहीं, फिलहाल खोखला है ! कमसे कम हम अपने बारेमें तो जरूर कहें।
Cheerio !

——मधु







अनुक्रमणिका

विन्सेण्ट रोड, दादर
६ अगस्त १९३७

प्रिय गोपाल,

....

स-स्नेह
— मधु

पुनश्च: *Fill in the blanks!* सभी पत्रोंमें अक्सर जो बातें होती हैं, उनमें से ही ऊपर कुछ लिखा है, सो समझना... बेटाजी!
— मधु



७

विन्सेण्ट रोड़, दादर
८ अगस्त १९३७

माय डियर गोपीजी,

आज सवेरे बड़ा मज़ा आया! तुम्हारी लेखक की भाषा में कहना हो तो वह पँच पँच उषःकालीन वेला थी और मेघों का ओढन फेंक कर—या रात का कम्बल दुत्कार दे कर — भगवान सहस्त्ररश्मी अभी अभी अपने शीश को उत्तिष्ठवान् बना रहा थे। मैं कर्निगहॅम की 'विच्छेदन' शास्त्र पर की किताब लेकर बैठा था। जुलै के अन्त तक मैं ने टाँगे और हाथों की काँट छाँट की छाँटनी समाप्त की थी। थोरॅक्स — *Thorax* — का भी गला घोंटकर मैं आज से गर्दन काँटने के लिए मुक्त हुआ था। पर छुरी चलाने का काम जरा जटिल और बिल्कुल छटे हुए लडके का भी पूरा एक या डेढ महिना खाता है इसलिए इस नाजुक मामले में मैं 'कनिंगहॅम' साहबके जैसे सुयोग्य गुरू के साथ विचारविनिमय करता था और हमारा नामदेव स्टोव्ह को भभका कर चाय की तैयारी में मश्गुल था।

मान लो, मैं ये सारी बातें पार्श्वभूमि को रंगाने के लिये अथवा नंमन के रूप में कह रहा हूँ। अगर मतलब की बात बतलानी हो तो यों कहें कि दरवाज़े पर ठिकठिकाहट शुरू हुई। ऊबते जी से पुटपुटाते हुए मैं ने दरवाजा खोला; तो सामने दरवाज़े में दत्त बनकर एक अजनबी लडकी खडी थी—एक अपरिचिता मैं ने देखी।

—लड़की... हाँ — हाँ, सचमुच गोपी, एक लड़की! एक नाजुक हसीना, महीन और लुभावने, मचलन पैदा करने वाले कपडोंमें सिंगारी हुई, सत्रह अठारह साल की लड़की! वह लमहा! पलभर यकीन करना मुश्किल बना। बिलकुल भोर के समय, एक वैद्यकीय विद्यार्थी, कि जिसके बारे में गाँवभर ढिंढोरा पीटा जा रहा है, एक अभी-अभी खिली हुई कली की नई मुसकानेवाली एक लड़की आ कर खड़ी तैनात रखती है, आखिर इसका क्या मतलब?

"दरवाजे में क्यों? आइये, अन्दर आइये।"

मैं अपने आप अनजाने में बोलता गया। वह हँसी।—और उसी वक्त उसके साँवले गालों के वह मनोरम मोड और श्वेतशुभ्र दंतरेखाने मेरी आँखें भर दीं।— और वह अन्दर आयी। बिल्कुल अपनेपनसे। उसने छाता और पर्स कुर्सीपर रख दिये जो इतना सहजता से मानों यह कमरा जैसे मेरा अपना था वैसे ही उसका अपना भी था। मैं आसमान के तारे गिनने लगा। सिर को खुजलाया, यादगारों की कतारों को छानने की कोशिश की, लेकिन यह समझ न सका कि मैं ने उसे कहाँ देखा था! हमारी पहचान कब की थी? जहाँ तक यहाँ का सवाल था मैं किसीसे भी इतना परिचित तो था नहीं कि कोई यहाँ पर मेरे कमरे में अकेली आ जायें। नागपूरकी बात—एक अपवादको छोडकर—तुम जानते ही हो।

"क्षमा कीजिये, लेकिन..." मैं ने कहा। क्षमा कीजिये लेकिन मैं आपसे अपरिचित हूँ, यह मैं कहनेवाला ही था, इतने में वह कहती बनी, "क्षमा कीजिये, मैं जरा कष्ट देना चाहती हूँ। क्या आपको कुछ स्नो, साबू, ब्रिलियंटाईन चाहिये?"

तब भी मैं कुछ समझ न सका। अँधेरा फँट कर रोशनी बाहर नहीं आती थी। अपने नागपूर को किसी जवान लडके के कमरे पर जा कर कोई जवान लडकी स्नो, साबू, ब्रिलियंटाईन के बारे में पूछताछ करने का दस्तूर अनदेखा है। मैं सकपकाया। और थोडासा *outrage* बन गया। त्यों ही बाहर से बोझे वाले ने एक पिटिया अन्दर ला रक्खी। उस पर लिखा था 'मस्तानी प्रॉडक्ट्स लि० बम्बई।'

"मैं 'मस्तानी प्रॉडक्ट्स' की विक्रेती हूँ। लीजिये स्नो, इस की बास बड़ी मीठी है।" उस ने मेरे आगे शीशी को खोल कर कहा,

"मैं स्नो का इस्तेमाल नहीं करता।" मैं ने कहा।

"आप स्नो का उपयोग नहीं करते?" उस ने अचम्भा किया, "लेकिन आज कल के लडके स्नो का उपयोग करते हैं; लगभग सौ प्रतिशत।"

"होंगे, लेकिन मैं नहीं।"

"तो आप स्नोके खिलाफ़में है?"

"बिल्कुल खिलाफ़। लडकियाँ भी स्नो का इस्तेमाल न करें ऐसी राय है मेरी; तो लडकोंकी क्या बात?"

"तो फिर मैं आपको हेअर ऑईल दे दूँ?"

"जी बिल्कुल नहीं।"

"आप तैल भी नहीं लगाते?"

मेरे सिरपरके बालोंकी ओर उसकी निगाह सरसराती दौडती है।

"हाँ तेल लगाता हूँ, लेकिन शुद्ध कॅस्टर ऑईल।"

उसका चेहरा सुर्ख बनता है। फिर भी पेशेकी आमदा हँसी हँसकर वह आगे कहती है,

"तो फिर मैं आपको ग्लिसरिन सोप दिखाती हूँ। सचमुच वह आपको बड़ा पसंद आयेगा।"

"बिल्कुल पसंद नहीं करूँगा!" मैंने कहा,—"मैं अक्सर किसी भी साबू का इस्तेमाल नहीं करता।"

" आप सोप नहीं लगाते ? " उसने अपनी काली, मोटी, सुहानी आँखें और भी सुहावनी करते हुए कहा।

" नहीं। मैं साबू नहीं लगाता। शिकेकाई से काम चला लेता हूँ; वरना चनेका आटा है ही। "

" हाँ, तो आप कम से कम दाढी के लिये साबू चाहते होंगे ही! " आवाज़ में जरा बढावा है, कामयाबी का; — " हमारी मस्तानी शेव्हिंग स्टिक आप एक बार देखिए तो। "

" दाढी के लिये भी मैं किसी भी स्टिक-विक को नहीं चाहता। अक्सर शेव्हिंग क्रीम मुझे पसंद आती है। " मैं ने पथरीली नोंक से कहा। उसका चेहरा पीला पड गया। कारण यह था कि उसने बतलाये हुए नामों में से साबू, तेल, शेविंग स्टिक और न स्नो की पसंदगी मैंने बतलायी थी। कुछ देर तक मेरी ओर भौं चक्की आँखों से वह देखती रही, और देखती ही गयी। जो गलत बतलाया उसकी नज़र में केवल भौं चक्कापन नहीं था। उसको किसी नाम से अथवा संज्ञा से बतला नहीं सकता। और ऐसी कुछ अजीब अज़नबी रंगीन बातें उन में समायी हुई थीं कि पूछो मत! आखिर मैंने किस क़दर उसे उस तरहके ज़बाब क्यों दे दिये, ढूँढो तो भला इसकी वजह; तुम लेखक हो; क़लम के क़ारीगर! जरा मज़ा भी आयेगा। लेकिन मेरे जवाबों का उस पर कुछ तिलस्मी असर जरूर हुआ। औरतें जब कुछ चुनने बैठती हैं तब उनकी आँखें जिस सवाल को अपने में ढाल देती हैं, लगभग वही भाव तब था। उसने गुस्सा नहीं किया, लेकिन थोडी अनमनी बनी; ' आया, देखा और अपनाया ' का दस्तूर अब तक उसने देखा था। '*My face is my fortune Sir*' यही उसकी एक मात्र धरोहर थी। अन्यथा मस्तानी सेट, ऑईल, ब्रिलियंटाईन, शेव्हिंग स्टिक इन निकम्मी चीजों को खरीदनेवाला कौन हरी का लाल होगा? पहले इस मस्तानी को निहारे और बाद में ही, उस मस्तानी को, इस मस्तानी के लिये खरीदने की बात सोचें! लेकिन कुछ भी कहें, ' मस्तानी प्रॉडक्ट्स ' वाले जो भी कोई हों, बड़े चालाक हैं! औरतों के बारेमें हमारे विशाल राष्ट्रीय दृष्टिकोन की नस को उन्होंने भलीभाँति समझा है। मस्तानी स्नो, पाऊडर, ऑईल, सोप आदि के वेष्टणों पर औरतों की मस्त छवियाँ उन्होंने चिपकायी थीं। इतना ही नहीं, लेकिन शेव्हिंग स्टिक को भी ढाँकने वाली एक तूफ़ान जवान औरत थी! अब कहो? दाढ़ी साफ़ करने के इस औजारपर भी मनहूस औरत का चुनाव! साहब इसे कहते हैं, योजनाचातुर्य! दरअसल ' मस्तानी प्रॉडक्ट्स ' वालों का हिसाब खुले आम जाहीर है। अगर सिर्फ़ औरतों की छबियोंके लिये पंचांग, मासिक, पुस्तकें हाथोंहाथ बिकी जाती हैं तो एकाध औरतको ही सामने खडी कर अगर एकाध चीज की बिक्री की, तो उसकी खपत घुडदौड की रफ्तार से क्यों न हो?

—ओफ, भूल ही गया था! ये सारी बातें लिखते लिखते अपने कमरे में बैठी हुई उस युवतिको मैं बिल्कुल ही भूल गया! अरे लेखक! युवति को भूलने की मूढ़ता और कोई दूसरी होगी भी? 'मस्तानी प्रॉडक्ट्स' के बनिया भी जिस लडकी को नहीं भूले होंगे, वहाँ मेरी क्या शामत? कोई युवतियों को भूलें या न भूलें लेकिन नामदेव जब मेरे कमरे में चाय का ट्रे ले आया, तब कमसे कम वह उस लडकी को भूला नहीं था। उसके लिये चाय का एक शानदार कप वहाँ हाज़िर था।

"लीजिये, जी।" कप आगे करते हुए मैं कहते बना।

"जी नहीं" उसने कहा।

"क्यों जी? मैं ने मस्तानी स्नो, पाऊडर, सोप खरीदा नहीं, क्या इसीलिये आप चाय का इन्कार, करती है!

या, आप कभी चाय पीती ही नहीं ?"

"जी, मैं घरसे बाहर चाय कभी नहीं पिया करती।"

"यानी, किसी ईरानी की भी नहीं ?"

"जी, लेकिन...... मैं......"

"तो, हम समझें! बाहर का मतलब यह कि हमारे जैसों के घर में आप कभी चाय नहीं पिया करती! दूरदर्शित्वकी दृष्टिसे आप बिल्कुल सही कहती हैं। लेकिन क्या एक बात बतलाऊँ ? —" मैंने उस चायमें मार्फिन नहीं डाला है।"

यह सुनते ही उसकी बरौनियाँ और मत्थेका कानके आसपासका भाग जुलता दिखाई देने लगा।

"मार्फिन याने क्या ?" उसने पूछा।

"वह एक अफ़ीमका बड़ा महत्वपूर्ण भाग है—लेकिन मैंने उसे चायमें नहीं मिलाया है। अब आपकी जगह पर कोई दोस्त होता, तो मैं चाय पिलाये बगैर जानेको कब देता! पराये आदमी के सामने चाय पीने की आदत मैं बम्बई में पहली बार देख रहा हूँ; दर असल अपने गाँवपर ऐसी कोई बात अनसुनी है और अनदेखी है।"

"तो लीजिये।"

मैंने चाय के कप को फिरसे आगे किया। ग़रदन इन्कार के इशारे में हिली।

"तो फिर आप अपनी तशरीफ़ ले जा सकती हैं..."

वह दंग बनकर अन्यमनस्क नयनों से देखने लगी। वह लगभग उठी भी; जानेको हुई, लेकिन संकोच-वशात् ठिठककर खड़ी रही।

"देखिये, आप" मैं कहते गया, "केवल दाक्षिण्य के कारण मैंने आप से नहीं कहा था, कि चाय लें। आप के स्थानपर अगर कोई दूसरा पुरुष भी होता तो मैं उसे भी चाय पिलाए बगैर न जाने देता। किसी पराये के सामने चाय पीने की चाल मैं बम्बई में पहली बार देख रहा हूँ। हमारे गाँव पर ऐसी कोई चाल नहीं है।

"आपकी बाड़ी कौन ?" उसने पूछा।

"नागपूर! वहाँ किसी मेहमान के सामने अकेले चाय पीनेकी आदत नहीं पायी जाती। इसीलिये मैं ने साफ़ तौर पर कहा है कि एक, या तो आप चाय लीजिये अथवा चली जाइयेगा। क्यों कि आपके होते हुए मुझसे चाय नहीं पी ली जायगी।"

उसकी आँखें विकल और व्यथा से ओतप्रोत दिखायी दी!—ऐसे भाव तुरंत प्रदर्शित करना यही उसका काम होगा! आवाक् बैठकर उसने चायका कप एक ही घूँट में किसी दर्दनाक दवाई को निगल डालने के ढंग से गले के नीचे उतार दिया। उस कोमलांगी को चाय पीने के कष्ट असह्य वेदना पहुँचाते थे या मेरा प्रभावपूर्ण वक्तृत्त्व दर्द पहुँचा रहा था इसे सिवा ईश्वर के कौन बेचारा जाने ?

चाय पीते ही वह आश्वस्त भाव से खड़ी रही और कहने लगी, "आज्ञा दीजिए।"।

जाने के बहाने कहते कहते उसने 'मस्तानी अगरबत्ती' नाम की एक पुडिया में से – और इसपर भी एक मतवाली युवति हँसती थी – एक अगरबत्ती खींच के निकाली और मेज़ में नोंच दी। मेजपर की

दियासलाई की काँडी जलाई, उससे अगरबत्ती सुलगाई और बड़ी बड़ी आँखों में उजलाहट भरकर वह काँडी की लौ को होठों की फूँक से बुझाते हुए फिर से कहते बनी,

"आज्ञा दीजिए। मैं चल दी।"

उसने होठों से जब आग को बुझाया तब मेरा मन समझ गया कि उसके होंठ भी बड़े मदमाते और लुभावने हैं।

"मैं ने आपकी आज्ञा लिये वगैरे इस अगरबत्ती को जलाया।" उसने कहा।

"अजी, बेमतलब में आपने अगरबत्ती को नाहक बरबाद किया।"—मैं ने जवाब दिया।

"नमूने के रूप में हमें कुछ चीजें यों ही देनेकी सहूलियत है।" वह कहने लगी, "अबकी बार मैं सचमुच गयी। मैंने आपको बड़ी विपत्ति में डाला है। आशा करती हूँ आप क्षमा करेंगे।"

"ठीक है; कभी आती रहियेगा।" मैंने समाप्ति के हेतु से पूर्णविराम कहा।

और वह चली गयी; उसके साथ वह बोझेवाला भी! और उसने सुलगाई हुई उस अगरबत्ती से निकलनेवाली अगरधमकी महकती आवर्तमयी धूमरेखा को मैं निहारते रह गया–*By the way*–स्नो, पावडर, सोप वगैरह जाने कैसे भी क्यों न हों, लेकिन मान न मान इस अगरबत्ती की खुशबू किसी खिली हुई जूही की जैसी है।

–उसने कहा था।–फिरसे उसने कहा था–बार बार मैं कहता गया था; और उसके बाद वह चली गयी थी। और उसने सुलगाई हुई अगरधूम की धूमिल रेखा मुझे लपेटती जा रही थी! ......अहे लेखक! तुम इस घटना को कैसे समझोगे? सूचक और मौलिक......अगरधूम की सुगंधिसम भावनाओं के हिलोर मेरे मन में उछलने लगे। मानों केवल अगरबत्ती ही नहीं, लेकिन उसने मेरे कलेजे में आग धधकाई थी।......क्या, कैसे, कौन जाने, किस तरह? लेकिन डरो नहीं। मैं बिल्कुल ठंडे दिल से हूँ। हाँ, शरीर कुछ तपने लगा है! लेकिन शरीर की आग और दिलका धधकना क्या अलग अलग है? जहाँ तक मेरा खयाल है शरीर का तपना मैं एतराजमंद नहीं मानता! अन्यथा मेरे बाद अब तो घर घर में इस तरह की अगरबत्तियाँ सुलगाई जानेवाली हैं। वह उसका रोजाना काम है।

जिस आपबीती को मैं ने यहाँपर लिखा है, वह कोई अजीब और तिलस्मी बात थी, सो नहीं कहूँगा, लेकिन पिछले दो महीनों के भीतर हरदिन कोल्हू के बैल की तरह अपना काम शुरू करता था; लगभग वह स्थिति आज गायब थी! जाने क्यों उसके आँखों से ओझल होनेपर बार बार मन पछतावा करते–करते कहता था कि अगर इतनी कड़ी जबानसे न बोलता तो चल सकता था। लडकी ऐरी-गैरी गिनती में नहीं गिनी जायगी। संस्कृत नायिका भेद में बतलायी हुई सुरसुंदरी वह भले न होगी, लेकिन जिसे हम व्यक्तित्व की मधुरिमा कहते हैं, उसका विचार करनेपर उसे साठ प्रतिशत गुण अवश्य देने होंगे। इसका ही मतलब यह है कि हरदिन सबेरे अगर वह आ जायें तो सुदूर भविष्यत् की योजना की दृष्टि से मस्तानी प्रॉडक्ट्स का एक पूरा सेट हर बार ले लें तो भी कोई भारी चीज नहीं! इस तरह की यह लड़की है! निष्पक्ष रूपसे विचार करनेवाला कोई भी यही कह उठेगा। और जो सविकार समाधि लगाएगा वह तो केवल उसके गालके हँसते मोडों को ही पचास प्रतिशत गुण दे बैठेगा; उसकी बुलानेवाली और साथ साथ पिघलानेवाली मदमाती आँखोंके लिये और पचास नम्बर! उसकी कटी–छटी मद भरो–पूरी कायाकृति को उजले साँवले रंगको, लगभग घुटनोंतक फैलनेवाले बालोंको, नुकीली खरी हलचलको, वह एक के बाद एक इस ढँग से पचास प्रतिशत से अधिक गुण देता जायगा। बतलाओ, कितनी हुई कुल गिनती? नफ्फर नाक के दस गुण घटाने के बाद भी—?

—काश, कैसी भूल की मैं ने! ये मेरी दग़ाबाज़ ज़बान! अगर मन्मथ बॅनर्जी मेरे स्थानपर होता तो बस, ऐसी मुलायम अदा से बर्ताव की खिदमत पेश करता कि पूछो मत! अरे अभागे! द्वार पर गंगाभागिरथी आनेपर भी जो उस से लाभ नहीं उठाएगा वह पापी के सिवा और क्या कहलाएगा? लेकिन जाने दीजिए। 'बरबाद बने दूध के बारे में कभी चिल्लाओ नहीं'–इसे हमारे गोरे भाइयोंने कह डाला है। साहब, हाजिर सो वजीर वाली कहावत भी सुनी है। जब मौक़ा आएगा, तब फिर से देखा जाएगा।

पत्र बड़ा लम्बा चौडा बना है। पिछली बार की शिकायत को अब मिटाया है। इससे पहले के पत्र को लिखते समय मानों मैं नागपूर आ कर तुमसे बातचीत कर रहा हूँ, ऐसा लगता था।

— मधु

पुनश्च:

अरे भाई, मस्तानी अगरबत्ती अजीब मीठी है–उसकी मालकिन मस्तानी की जैसी! मैंने जलती अगरबत्ती को बुझाकर रात के लिए आधी बचा कर रखी है, फिर भी उसकी भीनी भीनी खुशबू मन को कैसे भर देती है।

— मधु

पुनः, पुनश्च:

अभी-अभी उसे जो कड़ी बातें सुना रहा था उस वक्त मेरा खयाल हुआ कि मेरे आगे कामना ही खडी है और मैं उससे ही बोल रहा हूँ।

— मधु

पुनः पुनश्च, पुनश्च:

गोपी अरे भाई, सारी बातें नदारद! उस 'मस्तानी' का नाम? पता नहीं क्या होगा? जाने दो, दोस्त! अपने मतलब के लिए उसे हम 'मस्तानी' ही कहते चलें।

— मधु



८

विन्सेण्ट रोड़, दादर
८ अगस्त १९३७
रात्रि: १०-३० बजे

मित्रोत्तम गोपाल राय की सेवामें,

गोपी, अरे एक मज़ेदार बात हुई है। सबेरे आई हुई उस मेहमाना का छाता यहीं पर भूला है! यानी मतलब यह कि छाते





को ले जाने के लिए यह फिर से यहाँ आएगी ! हो सकता है, ऐसे छाते उसकी गिनती में कहीं गिनाए जाते होंगे ? सोचो तो फिरसे, एकाध मामूली छाते के लिए वह, क्यों आए ? गोपी, बिल्कुल 'भवानी' के प्रहर पर वह मेरे यहाँ आयी थी। हमारे यहाँ भवानी की दाल न गल सकी और तिस पर छाता तो भूल गयी है। जरा सबक पढ़ाना चाहिए इन मतवाली लड़कियों को। कभी कभी मन सोचा करता है कि कहीं जानबूझ कर यह मनहूस लडकी छाता भूली नहीं होगी ? यानी जिसका मतलब हुआ कि फिर से यहाँ आने का कोई कारण हो चुका। अनायास ही उसने यहाँ आने के लिए पार्श्वभूमि तैयार कर रक्खी। लेकिन मैं कहता हूँ, चलने दे उसे चाहे वह चाल ! मैं भी अब न गँवार नहीं रहा; क़ाफ़ी जानकार और सयाना भी बना हूँ। ऐसी पछताऊँगा कि जनमभर वह मुझे याद करें। लेकिन हाँ, सुना गोपी ! उसका नाम चाहते हो ? 'सुश्री सुरंगा शिरोडकर' – यानी वह अबतक कुँवारी है। लेकिन दोस्त ! गोआ की बाजू के इन नामों से मुझे बड़ा डर है। पता नहीं आखिर क्या माज़रा है ? नहीं तो इतने ढाढ़स से किसी पराये पुरुष के मकान में जा कर ऐसी खटखटाई कौन करने चली ? लाखों में एक नामी पेशा उसने ढूँढ निकाला है। गोपी, इस महामाया बम्बई में ऊपर के चमकीले लिबास के तले कुछ ऐसी भी अनगिनत, अजीब और चकमा देनेवाली कई बातें पकती हैं ! तो फिर मुझे अब इस बात की खबर लेनी ही होगी। अदरख का व्यापारी अब जहाज़ की खबर क्यों न लें ?

रातको घर आते ही नामदेव ने समाचार दिया था कि वह छाता भूल गयी है। फ़ौरन यह खत लिखने बैठा ! एक ही दिन में लिखा हुआ यह दूसरा पत्र ! मेडिको डायनिंग हॉल में आज खाने का सख्त जोर था। आँखें कैसी उनींदी बनी थीं ! लेकिन छाता देखते ही नींद हवा बनी। रोंगटे खड़े रहे। अब इसके बाद 'हॅलिबर्टन' अथवा 'हॉवेल' साहब के साथ कुछ थोडीसी कानाफूसी और गपशप कर लेता हूँ और उसके बाद सो जायँगे–*Good Night* गोपी !

— मधु

पुनश्चः 'गुड नाईट गोपी' यह शीर्षक किसी फिल्मको या उपन्यासको कैसा जँचेगा ?

— मधु



विन्सेण्ट रोड़, दादर
९ अगस्त १९३७.

मेरे गिरधर गोपाल,

चप्पा चप्पा सच्चा निकला ! गोपी, वह आज फिरसे आई। स्थान वही, पात्र भी वही ! दरवाजे पर कंगनों की किनकिनाहट के साथ जब थपकियाँ सुनायी दीं, तब ही मैं समझ गया।

"क्षमा करें, क्या मैं अपना छाता यहाँ भूली हूँ ?"

"भूल गयी है, या छोड गयी है ?" मैंने पूछा।

उसका चेहरा स्याह बना।

"मैं ठीक जानती हूँ, छाता यहीं है।"

"अजी साहिबा, आपने दूसरे घरों में पूछ ताछ की है ?"

"जी नहीं।"

"क्यों भला ? 'मस्तानी प्रॉडक्टस्' का शुभ वर्तमान निवेदित करने के लिये आप किसी दूसरे स्थानपर यहाँ से निकलने के बाद नहीं गयी थी ?"

मेरा बोलना जरा कड़ुआ था, यह सही। लेकिन उसके हर घर धूल छानने की नियम से मैं खफ़ा हुआ था।

"जी ... नहीं।"

"लेकिन आपने तो हमारे यहाँ से अपना काम शुरू किया था न ?"

"वहीं पर मैंने अपना काम समाप्त किया।"

"क्यों ?"

"जाने क्यों, मेरे जीने नहीं चाहा।"

—उसका जी नहीं चाहता गोपी। शब्द चयन जरा ध्यानमें रखो।

"तो फिर है न, मेरा छाता यहाँ ?"

"अजी, सुरंगा जी, लीजियें यह अनमोल छाता आपका ; और आई है तो थोडी चाय भी पीते जाना।"

"अरी ! मेरा नाम कैसे जाना आपने ?"

"हाँ, आप के छाते ने कानाफूसी की !"

अनुक्रमणिका

" मेरा छाता और कौन कौनसी बातें बतला रहा था ?

" उसने कहा आप बड़ी चालाक हैं। "

" हमारे सेठजी कहते हैं कि मैं बड़ी भोली, बावली और पागल हूँ। "

" हो सकता है, वह भी आपकी चालाकी हो। और आपके सेठजी की भी। " — गोपी इसके सेठजी ! समझे ?

" वे कहते हैं, आदमी को इतना *Impulsive* और *Sentimental* नहीं होना चाहिये। "

" याने आपका कहना यह कि आप *Impulsive* और *Sentimental* हैं। "

" अजी, क्या कहूँ ! सेठजी कहते हैं कि मेरा भावुक, *Moody* स्वभाव भी पेशे को लाभदायी नहीं है। "

" कहने का मतलब यह कि आप भावुक और *Moody* हैं। "

" और क्या कहूँ ! सेठजी यह भी कहते हैं कि प्रचार और बिक्री के इस पेशे को यह भावुकता बिल्कुल फायदेमंद नहीं। सेठजी यह भी कहते हैं — "

" सेठजी कुछ भी नहीं कहते हैं। और मान लिया कि कुछ कहते हैं, तो वह सरासर झूठ होगा। "

" अजी, वाह् री वाह् ! " उसने आँखें विस्मय से बडी की। और आगे कहा: " हमारे सेठजी बडे भले मानुस है। "

" औरतों के बारे में सेठजी वैसे बडे भले होते हैं। बाँया हाथ नचानेवाले सेठों की भलमनसाहत के सिलसिले में आप मुझे न कहें। "

मेरी यह रायें, मुझे लगता है, उसे भली न लगी हों। उसके होंठ यों ही कंपित हुए। आँखें खुल पडीं। नथुने अनजाने में थर्रा उठे। उसका यह हावभाव सचमुच बडा विलोभनीय था। गोवा की इस लडकी को सेठिया कौम के बारेमें अपनावा लगना बिल्कुल स्वाभाविक है। वह कुछ कहने को थी, इतने में *My man Jeeves* नामदेव चाय के ट्रे को आगे ला कर रखता है; कहने की जरूरत नहीं, उस के लिये एक शानदार कप हाजिर है।

" क्या मैं पूछ सकता हूँ कि इस धंधे को आप सचमुच दिलोजान से चाहती है ? " मैं उस के हाथ में चायका कप देने को होनेवाला ही था, इतने में उसने अपने आप चाय का कप ले लिया।

" भला, इस में चाहने-वाहने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? हम जो कुछ करते हैं, क्या वह सब हमें पसंद आता है इसलिये करते हैं ? "

" इस में अच्छे-बुरे कई अनुभवों में से गुजरना होता होगा मैं ने द्वयर्थी मतलब से जरा चतुराई का प्रश्न पूछा।

" बुरे किस्से तो हजारों हैं। एक बार एक ने सचमुच ही चाय में से कुछ पिलाने का प्रयत्न किया था। तब से मैं किसी से भी चाय नहीं लेती। "

" तो फिर, हमारे यहाँ आपने पीना शुरू किया जो ? "

" मैं आपका भरोसा करती हूँ। "

" यह क्यों ? "

" आपने मुझ से कुछ भी खरीदा नहीं; दूसरे पुरुष जिस ढंग से बोलते हैं, उस ढंग से छेड़छाड़ नहीं की। "

प्रशंसा का यह एक नया तरीका, गोपालभैय्या, जरा याद रखना।

" यह तो गैरइन्साफ है। मैं ने आपकी प्रशंसा नहीं की, आपसे कुछ भी खरीदा नहीं, क्या इसी बूतेपर आप मुझे भला आदमी मानने लगी ? सचमुच आप बडी भोली हैं। "

" सेठजी भी इसी तरह कहते हैं। "

" सेठजी गए जहन्नुम में ! "

" छी: छी:, सेठजी के बारे में आप ऐसा न कहें। "

" क्यों जी ? वे आपके कौन होते हैं ? "

" मालिक जो ठहरें ! वे हमें अच्छा कमिशन देते हैं। वरना मेरी जैसी गँवार लडकी को कहाँ काम मिलेगा ? "

" आप कितनी पढी हैं, भला ? "

" पिछले दो सालों से मॅट्रिक फेल हो रही हूँ ! "

" भला, यह क्यों ? "

" सभी बातों को कैसे सम्हालूँ ? क्या आप मेडिकल कॉलेज में है ?

" यह आपने कैसे जाना ? "

" यह हड्डियाँ जो दीख रही हैं। क्या आप ब्राह्मण हैं ?

जातीय प्रश्न पूछना दरअसल हराम है। लेकिन उसके पूछने पर मैं ने भी उसी सवाल को उलट के पूछा,

" ठीक। मैं ब्राह्मण हूँ। क्या आप भी... ? "

उसके चेहरेपर खून की लाली दौड आई; गर्दन झुक गई; और दबी आवाज़ में वह हौले से बोल उठी,

" जी हाँ, लगभग... "

गोपी, मैं शर्तपर कहता हूँ, वह सरासर झूठ बोलती थी। भाई, उसका चेहरा बोलता था। उस सेठिया के बारे में, अपनी पढाई के बारेमें, अपना धंधा, अपनी कमाई, पता नहीं किस किस के बारे में वह झूठ बोलती थी; ईश्वर जाने !

" तो फिर, आप भी ब्राह्मण ! " मस्तानी अगरबत्ती के अधजले टुकडे को सुलगाते हुए मैं कहते गया। और वह तमतमाते चेहरे से झुकी थी।

" आप को यह अगरबत्ती पसंद आयी ? " बातचीत के दौर को नया रुख देते हुए उसने पूछा।

" बिल्कुल पसंद। एक दर्जन पॅकेट दीजिये। "

उसने एक दर्जन पॅकेट निकाल के दिये; किसी कदर पैसे नहीं लिए।

" जी, रहने दीजिए। मुझे काफ़ी पैसे मिलते हैं। "

वह मुझे ही उलटे ढंग से कहती गयी ! दर असल कोई पुरुष किसी स्त्री से जिस तरह का वर्ताव रखता, लगभग उसी ढंग से वह मुझसे सलूक करने लगी। आखिर मैंने बड़ी जबरदस्ती से उसकी पर्स में पैसे धँस दिये; और फिरसे कभी आती रहने का न्यौता देखकर विदाई ली।...*So long* ?

—मधु

अनुक्रमणिका

पुनश्च—गोपील भैया, यह छाते का मामला जरा टेढा दीखता है। भाज सवेरे जिस छाते को ले जाने के लिये वह दौड़ धूप करके यहाँ आयी थी, उसी को फिर से भूल गयी है। अपने बावले और भोलेपन के बारे में उसने पहले ही इश्तहार फहराया है और ऐसी हालत में इस लड़की को कौनसे नाम गिनाऊँ ? या चालाक कहें या अनजान कहें या दोनों एकसाथ ? चाहे जो हों। इस बहती गंगा में हाथ नहीं धोये तो संसार भर में मुझ से मूर्ख कौन होगा ?

—मधु



१०

विन्सेण्ट रोड, दादर
१० अगस्त १९३७

गोपाल !

न भूलते हुए वह आज सवेरे आयी थी, यह बतलाने की क्या जरूरत ? मैं ने एकदम सीधे से कहा,

" क्यों, सुरंगा जी ?"

" मेरा छाता यहीं रहना चाहता, जो, है।

" सिर्फ छाता ही ?" मैंने अपने वाक्य को पलभर अनजाने में अधूरा ही लटकता रखा। जिस परिणाम की मुझे आशंका थी वह भाव उसके चेहरे पर हौले हौले छाने लगा। मैं ने संदेह को मिटाते हुए कहा,

" आपकी पर्स को यहाँ की हवाखोरी पसंद नहीं है!" जैसी उम्मीद की थी उसके मुताबिक उसका चेहरा फिरसे फ़ीका बना। अपने धावा बोलने के तौर तरीके को मैं ने पहले से तय करके रक्खा था। जाने दाँवपेंच केवल लडकियाँ ही जानती है!

मस्तानी अगरबत्ती की एक पूरी जूड़ी सुलगाई और कहा,

" आप आज तीसरी मरतबा यहाँ धूल छानने आयी हैं।"

"इसीलिये पूरी जूडी अगरबत्ती सुलगानेकी क्या ज़रूरत ?"

" हाँ; आजका यह प्रसंग कुछ विशेष प्रकार से हम मनायेंगे। आपकी ओर हमारी जानपहचान अब केवल औपचारिक नहीं रही!"

मैं ने अगरबत्तियों की जूडी उसके सामने पकडी त्यों ही वह खाँसने लगी और उसकी आँखोंसे पानी झरने लगा। उसके न माँगे मैं ने उसे पानी दिलाया। उसकी पीठपर से हाथ फेरा। उसकी आँखें सुखायीं। उस की खाँसी का दौर भी मिट चुका था लेकिन उसके हाथ मेरे हाथों में ही अटक कर लटकते रहे। मेरे स्पर्शने उसको काफ़ी भड़काया था; जो बिल्कुल साफ़ साफ दिखाई देता था। स्त्रियोंकी वैषयिकता का यह सुस्पष्ट प्रत्यंतर था। यकायक तेज बनी हुई साँस, काँपनेवाली काया, पसीने से तर्र भाल प्रदेश और हाथों की वह गहरी पकड़ इन्होंने मुझे उसके बारे में जो अन्देशा करने लायक था, वह कह दिया था। मैंने हाथों को छुड़ाया और उसके कन्धोंपर ...

केसर दीप कली !



मनिळकुमार

केसर दीप कली !
तम के नील सरोवर में उग एकाकिनि मचली

सेंदुर सी तुम चन्दन चर्चित
तुम पलकों-सी अर्धोन्मीलित
दीप परिधि की नेह-झील में सुन्दर शुक्र-कली
केसर दीप कली !

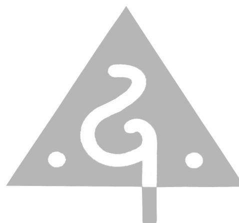
किरण-लता के तन पर शोभित
पंखुरियों की झिलमिल ज्योतित
चन्द्रकलश की अमिय बूँद तुम मोहक रंगरली
केसर दीप कली !

इन कलियों के हार सुदुर्लभ
गूँथ रहे हैं आज धरा नभ
तम कबरी में झिलमिल रंगीम लघु दीपक अवली
केसर दीप कली !

● ●

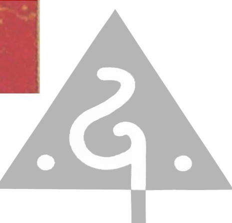
अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका





त्यों ही कुछ ताज्जुब की बात हुई। देखते–देखते वह मसोस मसोस कर रोने लगी; और मद्धिम स्वर में कसक से कहराती हुई आवाज़ में कहने लगी;

" ना ना ! मत करें ऐसा; कसम आपकी, सच कहती हूँ, ऐसे करने से मैं कहीं की नहीं रहूँगी ! मिटियामेट बनूँगी ! इसी तरह से हम लोगों की बरबादी हो चुकी है ! "

मैंने चौंक कर एकदम उसे दूर ढकेल दिया। उसकी इज्ज़त की रखवाली करने का यह नूर बड़ा अज़ीब था ! सिर्फ़ हाथों की कलाई से बहाना दिलाकर, बहका कर पागल बनाने का अगर उसका कुछ इरादा हो, तो मैं उसे क्यों मानने चला ? जीवन ने सिखाया था कि केवल ' प्लॅटॉनिक, ' आध्यात्मिक ' अथवा ' बौद्धिक ' प्रणय करने के लिए अब कतई फुर्सत नहीं है ! हालाँ कि वह सब बातें प्रथम प्रणय के प्रसंग पर सब भावुक लड़के बड़े चाव से करते हुए दिखाई देते हैं। और ऐसे किस्से में जब उन्हें ठोकरों का गुलाम बनने की बदनसीबी महसूस करनी पडती है, तब वे सब पहली इश्कबाजी के बाद के हिस्सो में बिलकुल दुनियावी और बाजारू लेन–देल का खयाल ज्यादह रखना शुरू करते हैं; दरअसल इसीलिए मैंने इस चालाक और अकलमंद मस्तानी के सात्विक कारुण्य की ज्यादह फिक्रमंदी करने के फँदे में न फ़ँसते हुए सन्यस्तपने से कह दिया :

" हम दोनों में से कोई किसी के सर्वनाश या बरबादी का कारण नहीं बनेंगे। दर असल एक कमीने जाहिल के घर आप बार बार आयी, यही बडी भारी भूल है ! "

" छीः, छीः, मैंने आपको जाहिल कब कहा ? "

" अजी...क्या संसार के सारे भाव कभी शब्दों में कह कर बतलाने की जरूरत होती है ? कभी कभी उनके बारे में इशारा भी काफ़ी होता है, कहते हैं न ' सयानों को इशारे '; तिसपर आपने मुझे कुछ सुझाया भी हैं। "

" जी ... नहीं ! सचमुच नहीं ! मानिए तो..."

वह झोंके सी आगे लपकी और उसने लगभग मेरे हाथ को स्पर्श किया। लेकिन मैंने ठंडेपन से हाथ को पीछे हटाया – आखिर इस खेल की चाहत की चालबाजी, क्या वही अकेली जानती थी ?– और रुखे भावसे कहते गया,

" सुनिए, जिस मामले में दोनों को सुख होता नहीं, उससे हम कोसों दूर रहें; यही मुनासिब होगा। मुझे अपने अध्ययन की कई बातों में अगले हफ्ते में काफी गम्भीरता अपनानी होगी। "

" तो फिर, मैं अगले हफ्ते में सचमुच तकलीफ़ देने नहीं आऊँगी; यह कैसे रहा ? " आँसुबनी आँखों ने मिन्नत की।

" और अगर आना भी हो, तो छाते की ओट में छिपकर, बहाना ढूँढकर या डरके मारे सकुचाने की कोई जरूरत नहीं है, समझी ? " आगे की बातों को बड़ी मार्मिकता से परखते हुए मैंने नरमाई की मुलायमगी से बतलाया।

" लेकिन यह किसने कहा कि मैं आपसे डरती हूँ ? " उसने धीमी आवाज़ में साहस भरने की कोशिश करते हुए कहा।

" भले आप नहीं, लेकिन मैं जो आपसे डरता हूँ, सचमुच, किसकी सौंगंध ? लीजिए, यह अपना छाता यह पर्स, ये चप्पल, अब तो आप अपनी किसी चीज़ को यहाँ खो कर नहीं जा रही हैं ? "

" हाँ..... बहुत कुछ खो के...बहुत कुछ पा...के जा रही हूँ। मेरी ये सतानेवाली, तकलीफ करनेवाली स्मृतियाँ पीछे रही हैं। "

और वह चली गयी। गोपी, वह सचमुच चली गयी; लेकिन वह चली गयी हैं, फिरसे वापस लौट आने के लिये। साँप और नेवला इनका संग कभी टूटेगा नही। ' साँपको चाहिए कि वह नेवले से मिले और उन दोनोंमें से किसी न किसी एक को किसी दूसरे के लिए अपनेको मिटाना चाहिए — जैसे कामना ने हमें पूरी तरह मिटा दिया। पता नहीं इस लड़की का जाल कितनी कामयाबी ले कर बना है ? पता नहीं जिन्दगी किस के लिये हैं। लेकिन एक बार अपनी ताक़त को अजमा ले।

तुम्हारा
—मधु

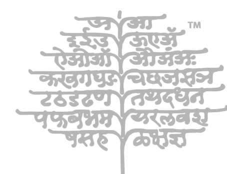


११

विन्सेण्ट रोड़, दादर
१३ अगस्त १९३७

गोपाल भैया,

इस नई देहलीपर पूरा सन्नाटा छाया है। अफलातून लड़की *Suspense* को बढ़ाना पूरी तरह से जानती होगी। कल मन्मथ बॅनर्जी महाशय की सवारी बिअर की आधी दर्जन बोतलें ले कर मेरे यहाँ चली आयी। हमारी वैसे घनी पहचान नहीं थी। लेकिन अपने गाँवपर पराये मालूम होनेवाले लोग बम्बई में मिलने पर सगे रिश्ते-दार मालूम होते हैं। और सच कहें, तो उनका बर्ताव भी बिल्कुल अपनेपनसे भरा होता है। खास कर अपनी जान पहचान को बढाने की दृष्टिसे ही वह मेरे यहाँ आया था। और कहा जाता है कि पहचानगी के समारोहों के लिये–' शराबके जैसा जानपहचान कराने-वाला अच्छा साथी और कोई नहीं है '–यह उसकी राय है। कल उसने मुझे दीक्षायुक्त दीक्षित बनाया। मैंने सिर्फ़ एक ही जाम पिया। और शेष साडेपाँच बोतलें बातचीतके दौरान में मन्मथ ने हज़म की। मुझे बियर का स्वाद कोई विशेष अच्छा नहीं लगा। मन्मथ कहता है ' बियरका स्वाद ' बनाना होता है। वैसे देखा तो करेला और प्याज ये कब खाने में स्वादिष्ट माने गए हैं ? लेकिन ज्यों ही मुझे बियर का चस्का लगेगा त्यों ही प्रत्यक्ष अमृत पान का माधुर्य इसी बियर में से छकलने लगेगा। गोपी, यह सब उसकी रायें हैं। मैं और कामना का किस्सा, दिलके वे हजार टुकडे उसको जबानी याद है। उस से हमारी मुहब्बत की दास्ताँ को सुनकर मैं दंग रहा। उसकी राय है कि लडकी से धोखा खाना बड़ा अच्छा होता है। पहली लडकी से कोई सम्बन्ध होने से पहले लड़के, लडकियों से भी नाजुक तबीयत के और निरे गँवार होते हैं; और इसीलिये लडके को चालकी, ढाढ़स और सब से अधिक पौरुष दिलाने का अन्तिम श्रेय हमें उस लडकी को–पहली मर्तबा बेवकूफ बनाने वाली उस लडकी को–दे दें। उसने अपने इस सिद्धान्त का समर्थन कई तरह से किया।




" क्या तुम्हें किसी लडकी ने चकमा दिया था ? "

मेरे इस सवाल पर उसने कहा,

" हाँ क्यों नहीं ? बिल्कुल हाथोंहाथ मुझे बावला बनाया था। लेकिन उसके उस गुण को मैं ने सूद के साथ चुकाया है। लडकियाँ जितनी ही धूर्त उतनी ही मूर्ख होती है।" *Feminine Foolishness* — औरतों की बेवकूफी, यह बेवकूफों की खास क़ौम है, यह भी उसकी धारणा है। वह कहता था अक़्लमंद औरतोंमें से अक़्लमंद औरत को लीजिये, वह भी अपनी इस कौमी कमी से अपूर्ण नहीं होती।

" क्या, तुम्हें औरतों से गुस्सा है ? "

मेरे इस सवाल पर उसने विवरण दिया, " *I love them wholesale dear creatures and they love me too !* "

वह औरतों से आमफ़हम मुहब्बत करता है। – शादी नहीं, समझे ? – फिर भी (और इसी लिये) औरतें उस से मुहब्बत के सिवा और अधिक क्या नहीं दे सकती ? यह तो आम तौर पर खुलमखुले दिखाई देता है कि, जो पुरुष शौर्य, यश ओर कर्तृत्त्वपर प्रेम करता है उसी से, अधिक से अधिक स्त्रियाँ स्वाभाविकता से प्रेम करती हैं। कर्तृत्वपूर्ण शौर्यकी अपेक्षा केवल स्त्रियों से अधिक प्रेम करनेवाले व्यक्तियों से स्त्रियाँ कभी भी प्रेम नहीं करती; — इसके जैसे जाने कितने ही सूत्रबद्ध सिद्धान्त वह मुझे सुनाता था। इस क्षेत्र का, समझो, वह एक अधिकारी पुरुष ही है। संपूर्ण मन ओर श्रद्धा से मैं उसके प्रवचन को सुनता था और उसकी बातें मेरी नसनस में भीनती जाती थीं। वस्तुतः मैं उससे प्रभावित बना। – परीक्षा, यश, संपत्ति इनसे मैं ने कामना को अधिक चाहा त्यों ही मुझे ठोकर मिली थी।

" क्यों रे, मैं ने तुम्हारी ऐशबाजी के बारे में काफ़ी सुना है। " मैंने गाँव की खबर उसे सुनायी, जिसे सुनकर उसने रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए कहा,

" सच कहूँ, तो सिनेमा, सिगरेट और वैसे ही औरतें इनसे मैं जीता गया हूँ और नहीं भी; लेकिन मेरी सफलता अथवा परीक्षा के कर्तव्य पथपर रोड़े के रूपमें मैं ने उन्हें कभी आने का अवकाश नहीं दिया। सिनेमा के समान मैं ने औरतों को भी दिल बहलाव का एक साधन मात्र, विश्राम करनेका एक स्थान, इससे अधिक कुछ महत्त्व नहीं दिया। हाँ, लेकिन एक बात ध्यान में रखना, मैं औरतों से बातचीत करते समय उन्हें इस बात की खबर कभी नहीं देता। उनके साथ जब बोला करता हूँ तब मुखचंद्र, तारे, नक्षत्र, आकाश, गुलाब, बुलबुल ये ही उस वक्त इर्द–गिर्द मँडराते और चक्कर काँटते रहते हैं। दरअसल इसका कारण यह है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के पास सच्ची बातें सुनने और कहने की योग्यता बहुत कम प्रमाण में पायी जाती हैं। उनके चरित्र में गप्पें हाँकना ओर मीठी गप्पें सुनना इनकी ही बहुतायत होती हैं। "

मन्मथ आगे कहता था कि नागपूर की तुलना में 'मजा–उड़ाने के लिये' बम्बई में काफी जगहें हैं। मैंने कुछ वैसी मज़ा मौज को चखने की कोशिश की थी क्या, इसके सिलसिले में भी उसने पूछा। मैं ने कहा अबतक वैसा कोई मौक़ा नहीं आया है। तब उसने कहा, " दोस्त, मौक़े कभी आते नहीं, उनको लाया जाता है या तैयार करना चाहिए। अगर कुछ भी नहीं तो कमसे कम एकाध सेल्स गर्ल को जाल में पकडने की कोशिश करो – " यह उसने अनायास कहा। बिक्रेती लडकियों की बात सुनते ही मेरा मन कौतुहल से जाग उठा और मैं ने उस ज्ञानी महापुरुषसे पूछा,

" क्यों, ये सेल्सगर्ल्स् काहे की बिक्री करती है ? "

" भाईसाहब, वह स्नो, पाऊडर, तेल, बिस्कीट इनसे ले कर कई अनगिनत चीजें बेचती हैं। लेकिन उनके पास सबसे खास ध्यान देने योग्य चीज़ कौनसी होती है, मालूम है ? "

" कौनसी ? "

" अरे पगले, वह खुद ! "

" क्या कहते हो ? "

" सच कहता हूँ; नहीं तो बिक्री के मामूली कमिशन से क्या वे जी भी कैसे सकेंगी ? उनमें से कुछ एक तो साफ़ तौरपर घरवाले की ढूँढ़ढाँढ़ में मश्गुल होती हैं। और देखते-देखते आँखोंके इशारोंसे और पलकों के झेपने से वे मुफ्त में किसी मासूम लडके को फँसाने की ताक में होती हैं। लेकिन यह कहानी यहीं पर समाप्त नहीं होती। ऐसे कुछ उदाहरण हैं कि मर्दों को फँसा कर बाद में ब्लकमेल करनेवाली सेल्स गर्ल्स् कई हैं, इसे भी सुना हैं। "

" उफ् ! याने उन से कभी सम्बन्ध न बने, यही ठीक होगा न ? "

" नहीं ! बाखुशीसे सम्बन्ध हों। भला सम्बन्ध भी क्यों न हों ? सिर्फ़ इसी बात का खयाल रखना है कि उन के हाथ का शिकार होने के बजाय उन्हें अपने हाथ का गुलाम बनाएँ। वे हमें ब्लकमेल करें इस तरह का कभी मौक़ा न दें। बड़ी झूठी चालाक और ढोंगी होती हैं, ये लडकियाँ। संसार के कोनेकोने की खाक़ छानी हुई इन लडकियाँ को कभी कभी हमारे जैसे गुरू प्राप्त होते हैं। "

" लेकिन क्यों मन्मथ, इन लडकियां में भी अपवाद के रूप में कुछ अच्छी लडकियाँ जरूर होंगी न ? " मैं ने ढाढ़स से पूछा।

"देखो भाई बर्वे, यह अपवादवाला सिद्धांत एक धोके की टट्टी है। हर कोई समझता है कि उसे जो कोई सेल्सगर्ल मिलती हैं वही केवल परिस्थिति के कुठाराघात से ताड़ित ओर व्यथित होती है; अवसर मिलनेपर वह देवता तुल्य बन सकेगी। हम केवल अपवादा हैं, परिस्थिति से रौंदाई गई हैं, जो कुछ हो चुका वह केवल भूलवशात् हो चुका है, और अगर सुधरने का रास्ता मिलता है तो हम देवता भी बन सकेंगी – इस प्रकार की ढोंगबाजी कर किसी रईस लड़के को अपने जाल में फँसाना – यह इन लडकियोंका माना हुआ तंत्र होता है। हो सकता है कि उनमें कुछ लडकियाँ बडी अच्छी होंगी, लेकिन अपने स्वार्थ और संरक्षण के बारे में यदि सोचना है, तो यह सब लडकियाँ खतरनाक हैं, ऐसा समझ कर ही चलना ही अधिक चतुराई और बुद्धिवादिता का परिचय है। और इसलिए उनकी चालाक़ चालबाजी को परास्त करने के लिए अपने को दुगुनी चालबाजी को अपनाना होगा। साँप भी मरे और लकडी भी न टूटे। "





" यानी...मैं कुछ समझ नहीं सका।"

" इसका मतलब यह कि ये लड़कियाँ हम लोगों के पास से जो चाहती हैं, उसे हम उन्हें न दें। और वे जो हमें देना नहीं चाहती उसे जैसे तैसे ले लें।"

" लड़कियाँ, वह क्या नहीं देना चाहती ?"

" वैसे भाई, देने-लेने की बातें हर एक लड़की पर अवलम्बित होती है। अक्सर किसी खास सीमातक लड़कियाँ तुम्हें भुलावा दे कर ले जाती हैं और वहीं झुलाती रहती हैं। उँगली मिलेगी, कलाई भी पकड़ने को मिलेगी और इसी ठिकाने पर झुलाती रखेगी। तुम चाहते हो कि कलाई से कुछ अधिक मिले लेकिन घाट घाट के पानीकी खबरवाली वह लड़कियाँ आगे बढ़ने के लिए इज़ाज़त नहीं देती है। *Then it becomes a war of nerves;* आदमी अपने काबू को गँवा बैठता हैं और पागल बन कर वे जो कुछ चाहती हैं उसे अपने आप देता जाता है। यह खयाल भूल ही जाता है कि हमें कुछ पाना था।"

" वे क्या चाहती हैं ?" मैं ने कौतुहल से पूछा।

" यह उस लड़की की प्रवृत्ति विशेष पर अवलम्बित है। कोई सिर्फ़ ऐश और चैन, तो कोई चीजों की तेज़ खपत, और कई लडकियाँ तो शादी! शादी वाली ये उम्मीदवार न बडी सिरपच्ची करती हैं। शादी करने पर भी जिसको पाना कोई अनोखी बात नहीं उसे वे शादी के दाम में बेचना चाहती है। और मेरे जैसे लोग चाहते हैं शादी का मजा, शादी के भारी दाम को दिये बगैर।"

" तो, यह बात है।"

" इसे कहते हैं, साहब सेल्स गर्ल्स महात्म्य। फिलहाल, ऐसी लडकियाँ ही ज्यादह पैमाने पर घूम रही है।"

" उनके घरवालों को, क्या, यह पसन्द आता है ?"

" घरवाले ? वह तो घरपर रहें। वे गिनते हैं सिर्फ जेब में भरे जानेवाले नोट! कभी कभी ये आदमी बडे चालाक-फरेबी मालूम होते हैं, तो कभी-कभी बडे मासूम और गरज़ के शिकार होते हैं। सीधे माता-पिता की सहायता से इन लडकियों ने कुछेकों को फँसाया हैं, जिनके कई किस्से तुम्हें सुना सकता हूँ।"

बॅनर्जी ने थोडी देर विश्राम लिया। बीअर की नई बोतल खोली और पक्के पियक्कड की अदासे अन्दर के छोर पर से ग्लास में डालना शुरू की और कहता गया,

" *Talking of sales girls* मुझे एक अनोखी लडकी की याद आती है। वह है साँवली लेकिन है बडी खूबसूरत। उसके बाल हमारी बंगाल की लडकियों को भी लजाएँगे, इतने लम्बे और मुलायम हैं। आँखें? पूरे बँगाल में भी कहीं पाई नहीं जाएँगी, इतनी मोटी-मोटी ओर घनी काली गहराई को उँडेलनेवाली हैं; *and what a stately supple figure too! Oh boy, she is a peach.* जरा नाक में नाटी मालूम होती है; लेकिन सच कहना हो तो उसकी उस कमी ने खूबसूरती को और भी बढ़ाया है, एक अजीब मिठास है वह शैतान! *Terrible sex appeal. Devasting!* "

उसका यह वर्णन सुन कर मेरा सीना पता नहीं क्यों एक कसक से सिहर गया। कराह को छिपाकर मैंने पूछा—

" क्यों मन्मय भाई, इस लडकी से तुम कभी मिले थे ? कहाँ मुलाकात हुई थी उससे ? और अगर कहीं सचमुच में मिले हो तो, वह लडकी पूरी मिटियामेट हुई होगी–यह कहें!"

" नहीं दोस्त! न मिटियामेट कर सका, न मैं कुछ सुख भी पा सका! इज्जत को खो देना पडा; इसे हम बेइज्जती भी कहें, तो भी चलेगा। उस लडकी को मैं अपनी जिन्दगी का *Waterloo* मानता हूँ। उसके बारे में मेरे सारे नीति नियम और नक्शे बिलकुल ही झूठ साबित हुए। एक बार साबू व क्रीम वगैरह चीजें बेचने के लिए अपने कमरे पर आयी। उसने अपनी चीजों की अच्छाई साबित करने की कोशिश की और मैंने उस से बढ कर उसकी खूबसूरती की तारीफ़ की। उसने उन चीजों को दिखाना शुरू किया, और चीजों के बनिस्बत मैंने उसको गौर से परख ले लिया। सच कहूँ तो वे सारी चीजें उसी के खातिर खरीदी। मन में सोचा, यह तो है मामूली 'सेल्स गर्ल;' थोडे ही कोई सीता–सावित्री आई है? इसीलिए पचास रुपये के नोट उसके हाथों में देने के बहाने मैं ने कलाई को जोर से पकड कर अपनी ओर खींचा। खींचा और उसे कसकर लिया और उसे *Kiss* किया। ओह, बापरे बाप! उसने नाखूनोंसे मुझे इस तरह से नोंच लिया और नागिन की तरह ऐसी कुछ फुफकार ने लगी कि पूछो मत! मुझे डाँटने लगी! तब मैंने उससे कहा देखो, यह कमरा मेरा है। मैं थोड़े तुम्हारे कमरे में हूँ? क्या तुम यह समझती हो कि तुम लोगों की नियत लोगों को मालूम नहीं? मान न मान मेहमान वाली नियत का फँदा डाल कर तुम मुझे चूसने निकली हो, इसे मैं साफसाफ बतलाऊँगा। और तुम्हें मालूम है कि सारी बातें बिल्कुल पलट जाएँगी!

भाषा की यह व्यंजना वह भलीभाँति समझ गई। बादमें गुस्से के मारे छटपटाते वह लौट चली गयी। रास्ते में आज भी कभी कभी वह दिखाई देती है और ज्यों ही वह मुझे देखती हैं त्यों ही वह आगबबूला बनी दिखती है।"

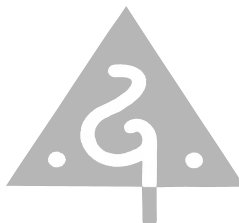
" तो इस लडकी के मामले में तुम्हारा दाँव नाकामयाब हुआ, यही न ?"

" सो तो मानना होगा। कुछ लडकियाँ सिर्फ तारीफ़से काबू में आ सकती हैं, तो कुछ लडकियाँ धुत्कारनेवाले बर्ताव को ही मन ही मन चाहती है। यों भी कहे कि कुछ दुलार लेना मन से चाहती हैं, तो कुछ एक तमाचा खाने से मुहब्बत करती हैं। इस लडकी के बारे में मैं ने जरा जल्दबाजी की। मैं अपनी ही धुन में था। आमफ़हम ऐरी-गैरी लडकियों की भाँति वह लडकी नहीं थी। लेकिन तब तक तो वह मेरा दायरा छोड़ कर काफ़ी दूर चली गई थी। हाँ, एक बात है, अगर तुम्हें कभी मौक़ा मिलता है तो यों ही मत गँवाना। जरा खयाल रखना।"

" भला, क्या तुम उसका नाम जानते हो ?"

" क्यों नहीं? उसे 'सुरंगा शिरोडकर'; कहते हैं। अपने '*Who is who*' की डायरी में उसकी नाम दर्जगी नहीं होगी, यह भी कहीं होगा ?"





"क्या वह ब्राह्मण है?"

"ब्राह्मण?" जोर का ठहाका लगाते हुए बॅनर्जी छटी आवाज़ में और उछलते ढँग से कहता गया,—

"हाँ, हाँ, सचमुच। बिल्कुल पुजारी, प्रासादिक पवित्र ब्राह्मण? है वह! उसका सीधे देवता से सम्बन्ध होता है।"

"याने? मैं मतलब नहीं समझा।"

"अरे क्या खाक समझोगे? वैसे उस में खून है ब्राह्मण का लेकिन बिरादरी से नहीं। जरा थोडी कमी है उसके ब्राह्मणपने में।"

"और तब भी..."

"और तब भी उसका शऊर तो देखो। दरअसल यह ज़माना ही कुछ और मिज़ाज़ का है। आजकल पता नहीं किस कदर अकुलीन औरतें शादी के लिए पूरी ताक़त से कोशिश कर रही हैं और कुलीन औरतें अपने बसे हुए शादीशुदा घरों को तबाह करने पर उतारू बन रही हैं। अब यही मान लो कि अगर इस लड़की के बदले कोई दूसरी कुलीन सेल्सगर्ल होती तो कलाई की घसीटबाजी करने पर भी वह इस तमाशे को बिलकुल न रचती। लेकिन इन अकुलीन छोरियों को अपनी नेकनियत को किसी भी तरह साबित करना ही होता है, न? देखो तो उन के यह नाजायज़ नाज़ नखरे!"

"नखरे?"

"और नहीं तो क्या! अब इस के घर में कोई भी 'उस' पेशे में नहीं होगा, लेकिन उसकी एक बहन सिनेमा में 'एक्स्ट्रा' के तौर पर काम करती सुनी है। यह सेल्सगर्ल। यानी जोड़ लगाने पर एक ही गिनती है।"— गोपाल, बडा अच्छा हुआ, बॅनर्जी से मुलाकात हुई। उसकी बातें सुन कर मन अनमना बना था और सकपककर काफ़ी होश में भी आया। अब सारी बातें बिल्कुल खुली हैं। नहीं चाहता हूँ कि जो कुछ हो रहा है उसके बारे में गम्भीरता से अधिक सोचूँ। *Now I know my ground better.*

गोपाल क्या तुम मेरे यह सारे खत सम्हाल के रखनेवाले हो? चाहिए वह करो। किसी रोचक उपन्यास को शोभायमान करें ऐसी कोई चीज़ तैयार हो रही है, ऐसा मुझे भी लगता है। चाहिए वह छोटी मोटी जानकारियाँ मैं लिख के भेजूँगा। लेकिन कभी कभी लिखते लिखते जी ऊब जाता है। मोटी मोटी बातों को लिख सकता लेकिन मन की एक दूसरेसे टकराने वाली अनगिनत अजीब भावों की हलचल बयान करना जरा मुश्किल लगता है। भावनाओं का आपस में जो विलोल नर्तन होता है उसकी सूक्ष्मता शब्दों में आँकना असम्भवसा प्रतीत होता है। विषमता में समता और अनेकता में एकता ढूँढना यह तुम्हारा काम। हमारा क्षेत्र शरीर का है तो तुम्हारा मन का।

— मधु

पुनश्चः कैसी अचंभे की बात है कि अनजानेमें मैं मन्मथ बॅनर्जी से नफ़रत कर रहा हूँ। किसी अजनबी मुल्क से हौले से कसक की हिलोर उठती है ओर अजीब दर्द कर जाती है। सुरंगा को उसने चूमा था, मुझे भला इस बात का खलल क्यों; मैं थोडे ही उससे ब्याह करूँगा? वरना लगभग ब्याही औरत बनी उस कामना को क्या मै ने हजारों बार नहीं चूमा था?

— मधु

१२

विन्सेण्ट रोड, दादर
२८ अक्तूबर १९३७

प्रिय गोपाल,

तुम्हारा पत्र मिला। आलूजंग, बुमनराय इनके भी पत्र यथासमय मिलें। उन सबको मैंने लिखा है। तुम्हारी बारी आखिर की है आर अब खत लिखने बैठा हूँ। इसकी वजह यह है कि दूसरे लोगोंके जैसे खत तुम्हें भेज नहीं सकता हूँ।

अब जरा 'खबर' सुनिए। सुरंगा आन की बान का मान करते हुए पिछले हफ्ते में भूल के भी यहाँ नहीं आयी। उसके बाद एकदम तीनों दिन लगातार आती रही। मुझे शक है, उसने पिछले हफ्ते में कुछ अपने पेशे-वेशे की बात सोची थी या नहीं। क्यों कि जब पहले दिन आयी तब अपने हाथों से बना हुआ पुलओव्हर और सॉक्स, वह भेंट के रूप में लायी थी। ऐसा भी खयाल करें कि उसने इन चीजों को खरीदा और अपनी बुनाई के नाम पर खपाया। लेकिन अगर मान लें कि इन चीजों को उसने सचमुच मेरे खातिर बनाया हो तो कमसे कम एकाध हफ्ता दिनरात

की मेहनत का वह सख्त काम था ! हालाँकि *Entertainment* के तौरपर कोई भी आदमी चाहे वह कड़ी मेहनत करता है।

तुम्हें मालूम नहीं कि कामना को खुश करने के लिए और भेंटें देने के लिए मैं कैसी बेरहम मेहनत उठाता था; मेरा जी उस ग़म को अब भी ठीक तरह से जानता है। पुलओव्हर की ओट में छिपकर किसी के दिल पर हमला करना और धावा बोलने की इश्क की नगरी यह नई चाल अबतक तो बिल्कुल नयी है। मुझे याद है कामना ने भी कब्जा करने की अपनी सवारी की शुरुआत पुलओव्हर से ही की थी; इससे कहे कि इतिहास फिरसे जाग रहा है। लेकिन मैं तो इसे 'होशियार' का इशारा समझता हूँ। जब वह परिश्रम, समय, पैसा अथवा इन तीनों की एक साथ बाजी लगाकर इस अखाड़े में उतर रही है, तब अपने संरक्षण की भरपूर तैयारी की तत्पर सिद्धता भी मुझे रखनी होगी। क्यों कि पुलओव्हर, सॉक्स आदि पैरोंसे अपना अड्डा जमानेवाले लोग आखिर में किसी भी तरह की भूल न करते हुए विवाह के गठबंधन और गले में फूलोंका हार डालने की तैयारी से ही आगे बढ़ते हैं। इसीलिए जब वह पुलओव्हर ले कर आगे आई तब ही मैंने तय किया कि इसकी इस चालाकी को जरा पलटा के देख लें। 'महामुनि' मन्मथ का महा सिद्धान्त गूँजता था – लड़कियाँ हमसे जो चाहती हैं, उन्हें हम इन्कार दें, और वे जो देना नहीं चाहती उसे हम छीन लें।

" अजी, आपने देखा है, मैं क्या लायी हूँ ? " चेहरे पर अनुराग छलछलाता था। "

" देखा जो। इस चीज को संसार के लोग पुलओव्हर कहते हैं। "

" कैसा है ? "

" इसका रंग नीला है। "

" मैं वह नहीं पूछती हूँ। "

" तो फिर क्या ? "

" मैं पूछती हूँ, यह कैसा लगा, अच्छा या और कुछ ? "

" मुझे सारे तमाम पुलओव्हर मनहूस लगते हैं। "

उसका रंग बिगड़ गया। वह अपनी कोशिश का ब्यौरा बतलाती गयी, " पिछले हफ्ते की हर रात को मैं ने दिन बनाया था। "

" तो फिर दिन दहाडे क्या करती थी ? "

" दिन का भी प्रति पल मैं इन्हीं चीजों के लिए मिटाती रही। "

" तो फिर अपना काम धंधा कब किया ?

" मान लीजिए, वैसे कुछ भी नहीं। यही जो धन्धा था। "

" क्या यह भी कहीं धन्धा हो सकता है ? "

" क्यों नहीं ? मैं जो सच कहती हूँ।

The irony of it गोपाल ! सचमुच उसकी जबान में कितनी सचाई भरी थी !

" इस का मतलब यह कि आपने पिछले हफ्ते में नुकसानबाज़ी का धन्धा पसंद किया था। ऊनी के लिए पैसे गँवाएँ, समय को बेकार में बिगाड़ा। पैसे को भी बरबाद किया। "

" मुझे पैसे की फिक्र नहीं है। "

" अगर फिक्र नहीं, तो फिर मस्तानी प्रॉडक्टस् के लिए दौड़ धूप में मारीमारी चक्कर काटती है, क्या किसी पर एहसान करने के लिए ? क्यों कर यह सेवा ? "

उसका रंग उड़ हवा बना था। मैं ने देखा है कि जो पैसे की फिक्र में होते हैं, वही अक्सर हम पैसे नाचीज़ मानते हैं इसका दिखावा करते हैं। और जिन को पैसे की चिंता खाए जाती है वे ही इस शान को बघारते हैं कि चाहिए उतना पैसा उनके पास हाजिर है। उसने अपनी बात जारी रखी और आगे कहा–

" आप अनापशनाप बकते हैं। सच बतलाइए, क्या आपको वह पुलओव्हर पसन्द नहीं आया ? मैं आप ही के लिए तैयार कर के लायी हूँ। "

" मैं उसे नहीं चाहता। "

" लेकिन क्यों ? उसकी बड़ी बड़ी आँखें पानी से तर हुई, आँसू छलछलाने लगे और मिन्नत से वह कहने लगी,

" आप इसे अपना समझकर जरूर ले लेंगे इसी भावना से इसका हर टाँका बुनाया गया है। "

" लेकिन मैं कहता हूँ, जो दगाबाज़ है, बेईमान है, और कमीना है उस के लिए आपने किस कदर यह बोझ उठाया ? "

" छीः, छीः, किसने कहा आपको बेईमान, दगाबाज...''

" हूँ, जाने ऐसा कभी कहने की जरूरत भी होती है ? आपका दिल जानता है ! "

" नहीं... नहीं... ऐसा कभी नहीं ... ! "

" नहीं ? तो फिर उसे साबित करें ! "

" साबित करनेपर, आप लेंगे न इस पुलओव्हर को ? "

" पुलओव्हर देते समय ही आपको वह दिखाना होगा ! "

" याने क्या होगा ? मुझे क्या करना चाहिए ? मैं नहीं जानती ! "

" मैं बतलाऊँ समझा के ? पुलओव्हर देने की भी कुछ अदाएँ हैं ! "

" याने ! नन्हे बच्चे को जैसे पहनाया जाता है, क्या उस ढंग से आप को पहनाऊँ ? "

" बिल्कुल सही ! तब ही मुझे भरोसा होगा कि इस पुलओव्हर को आपने मेरे लिए तैयार किया है। "

" वाह् ! जी वाह् ! मैं थोडी ही वैसे करूँगी ? "

" वही मैं कहता हूँ। आप मुझ पर भरोसा कहाँ करती है ? "

गोपी ! 'आप मुझपर भरोसा नहीं करते' इस वाक्य में नानों कामना ही थी। वह भी उत्ताप से आँखों को डबडबा कर इस वाक्य को घाव बनाने के लिए ऊपर उठाती। बिल्कुल आखिरी दम तक, शादी से पहले दो दिन उसने मुझे से कहा था 'आप मुझ पर भरोसा नहीं करते।'

" मैं आप का भरोसा करती हूँ। "

" आप मुझे भरोसापात्र नहीं मानती। मुझे नहीं चाहिए वह पुलओव्हर; पुलओव्हर आपने मेरे लिए कब बनाया ? बनाया होगा उस सेठिया के लिए। "

'यह बच्चा मेरा नहीं है, होगा और किसीका' के ढंग पर मैंने गुस्से का अभिनय किया। लेकिन इस वाक्य का असर बड़ा मार्के का बना। वह पीली पड़ गयी। बाद में अनुराग की लाली दौड आई; और थर्राती हुई आवाज़ से वह हार कर कहती रही, " कर लीजिए अपनी जिद पूरी। "

उसने पुलओव्हर को उठाया। छलछलाती आँखों की वह मूर्ति लड़खड़ाती आगे बढने लगी; बिल्कुल मेरे पास आई ...।

इस के बाद क्या हुआ होगा इसको कहना फिजूल है; जबकि मैं भली भाँति जानता हूँ कि तुम एक लेखक हो — कल्पना पुत्र।

पुलओव्हर चढाने के लिये उसके हाथ ऊपर उठे और मेरे गले में बाँहें बाँधकर ठिटक कर अटक कर अटक रहें। और उस दिन मैं जो नहीं पा सका था, वह आज न माँगते मेरे भाग में खडी तैनात दे रहा था। मैंने उसे बिल्कुल कसके जकड लिया और ......

पहले पहल वह किसी बूत के जैसे खडी थी। पलभर के बाद वह थिरक कर काँपने लगी। उसने अपने हाथ गले से लपेटे और मसोसती कराह से बोल उठी, "क्यों यह करवाया...... ?"

होंठ उसके होंठों से सोयी तमन्ना के तराने हौलेसे और बाद में आवेग से वही मिन्नत कहने लगे। आँखों का पानी एकसा बहता था। अनहोनी तक़दीर की कोई बूरी करतूत उसे डरा रही थी; पता नही क्यों, इस कदर वह अपने आप फूट फूटकर रोती थी, तड़प तड़प कर......।

कुछ क्षण, और कुछ क्षण; मैं अपने को भूल गया। उसकी स्पर्श में, उसके शरीर की गन्ध में कुछ मतवालापन, तीव्र आकर्षण, और जबरदस्त खींचाव था। मन मतवाला बन झूमता जाता है। अब तक स्त्री शरीर की गंध के बारे में संस्कृत साहित्य में पाए जानेवाले वर्णन मुझे बिल्कुल काल्पनिक जगत् की बातें लगती थीं। कामना के कोई गंध नहीं थी या अगर हो तो उसका पता मुझे नहीं था। लेकिन इस लडकी की बात कुछ निराली ही मालूम होती है। केवल भीनी महकती महक किसीपर जादू कर जनम-भर का गुलाम बना सकती है इस पर मैं अब यकीन कर सकता हूँ। उसी जादूभरी खुशबू से, थर्राने वाली उस मधुरिमा के कारण मैं यदि अपनेको खो बैठा हूँगा, तो कोई अचरज नहीं। नाटक देखते समय आदमी अपने अस्तित्व को पूर्णतः भूल जाता है; इसी को कला कहते है न? लेकिन जाने क्यों उस मस्ती भरी हालत में मुझे मन्मथ बॅनर्जी का इशारा सुनाई दिया और उस नशैल हालत से मैं धरती पर खिसक गया। होश जागा था। मैं जिस ढँग से खड़ा रहा था, उसका हावभाव, उसकी रुलाई से भरी रोनी बानी, उसका सहमते हुए थिरकना और यह सब रोमानी किस्सा मेरे लिए झूठ, फरेब, हँसने लायक नज़ारा बना। अंग्रेजी फिल्मों में हरदम पाए जानेवाले वह दृश्य, '*I love you, oh how I love you !*' यह नायक नायिका का आर्त स्वर में सुनाई देनेवाली संवाद और उपरान्त 'चक्' की आवाज़ सुनने पर, मैं खिलखिलाकर हँस पडता। सिनेमा में के दीर्घ चुम्बन के वह सारे योरोपी प्रसंग मेरी आँखों के सामने खडे रहे और मैं सकपकाकर अपनी मौजूदा हालत को ग़ौर करने लगा। मैं एक खतरनाक मोड़ पर आ पहुँचा था। उसने कलाई मेरे हाथ में सौंपी थी और इसी बूतेपर वह मुझे पूरी तरह से निगल डालना चाहती थी। मैं समझ गया कि उसका इशारा था कि देखते देखते मैं इसके गले में ब्याह की जंजीर बाँधूँगी। उसके आँसू, शब्दों की वह कलेजे की चीरनेवाली करुण चीत्कार, इस से पैरोंतले की धरती मानों खिसक गयी थी।

सवाल यह है कि कौन स्त्री है, जो कभी रोती नहीं? कौन वह स्त्री है जो कलेजे को चीरनेवाली आवाज़ में कभी कुछ कहती नहीं? स्त्री जगत् के यह बडे सख्त कानून हैं। कामना ने इस स्ट्रॅटेजी का उपयोग कई बार किया था। मैं कई बार उसका गुलाम बना था। कैदी बनकर मैंने उस दुनिया में कड़ी सजा भी पायी थी। फिर भी इसमें से सच्ची आहें कौनसी और झूठी मसोसें कौनसी? विकल्प का सिद्धान्त वैसे फँसावट से भरा है। हर कोई कहता है कि मैं जिस से मिला, हूँ वही केवल देवता है और इसी लिए वह भरोसापात्र है। अगर अब नहीं तो कभी न कभी उसके देवता होंगी यह भी विचार मन में छिपा होता है। मन चंचल बना था। सचाई और फरेबी आपस में घुलमिल गई थी। त्यों ही विचार संभ्रम के कुहरे को हटाते हुए मन्मथ के सिद्धान्त की प्रकाश-किरनें मुझे आदेश देने लगी: 'कुछ...दुलार लेना पसन्द करती है — लेकिन अपनी भलाई को दृष्टिसे हर लडकी को शक की निगाह से देखना अक्सर भला होता है।'

मन्मथ......मन्मथ!!

मैं ने हाथों से उसे ढकेल दिया। सिर्फ कंधों को पकड़ा और उसकी आँखों की गहराई नापते हुए मैंने पूछा,

"जो कुछ हो चुका है, क्या सचमुच उसे तुम नहीं चाहती थी? बतलाओ, दिल खोल के बतलाओ?"

वह लाजवाब बनी। पलकें झुक गई। मैं ने फिर से फटकार लगायी—

"सच बतलाओ, इस से पहले कभी ऐसा हुआ था या नहीं?"

"कभी नहीं" कड़ककर वह बोल उठी।

"क्या, सच कहती हो?"

"सौंगध खाती हूँ, बिल्कुल सच।"

वह सरासर झूठ बोलती थी और जो कुछ बोलती थी वह भी पूरा दिल लगाकर। स्त्रियाँ जब कभी बोलती हैं तब वे अक्सर सचाई

के आवेग से ही झूठ बोलती हैं। मज़ेकी बात यह है कि उनका यह अभिनिवेश इतना असली होता है कि सुननेवाले को यों लगे कि हम ही केवल सत्य के हिमायती हैं। पलभर मुझे लगा कि मन्मथ ने कुछ कहा ही नहीं था। मन्मथ की याद आते ही मेरा सीना तपने लगा और नसें तूफान बनीं। तेजी से पुलओव्हर को निकालने के लिए बाँहों ने अपना रुख ले लिया। त्यों ही,

"जरा रहने तो दीजिए, पुलओव्हर" उसने कहा।

"छीः छीः, कैसी सख्त गर्मी है।"

"मानिए तो, जबतक मैं हूँ तबतक तो"

"वाह् रे वाह्! यानी हम खत्म हो चुके।" इस वाक्य को मैं ऐसी रोमानी आबो हवा में किस कदर फेंकता गया इसको केवल वह रोमानी हालत ही जाने। चाहिए था कि मैं ऐसा कुछ न करूँ खास कर जब कि अभी अभी आकाश को बरसाने से बचाया था। नतीजा जो आनेवाला था वही आँखों का पानी बनकर आ गया। अधिकांश स्त्रियोंको वरुणास्त्र की आकाश विद्याकी अच्छी जानकारी होती है। कुछेक तो इसमें विज्ञ होती हैं। पुरुष बेचारा या तो ग्रीष्मकी लू में बहता जाता है या बारिश की झडीसे तर्र बन जाता है। उसने आगे कहा,

"बकरी के पड़ जाते हैं जान के लाले और चबानेवाला कहता है खाल में है छाले।"

"अरी सुरंगा, तुम यह तो समझो कि जब बकरी के जान के लाले पड़ेंगे तो बकरा भी छटपटाने लगेगा न?"

और यकायक वह प्रसन्न हो उठी। अनजाने में मैं ने उसके नाम को एक वचन में कहा था। हो सकता है कि मेरी वाक्यरचना की मामूली भूल से उसकी तबाह तबीयत फिर से खुश दिखाई देने लगी और उसी हालत में वह घर लौटी।

और उसके बाद वह बारबार आती रही। हरबार वह मेरे लिए किसी न किसी चीज़को ज़रूर ले आती है। बातचीत में मैं अपनी पसन्दगी ना पसन्दगी के बारे में जो कुछ बतलाता हूँ, उसको वह बड़ी चालाकी से लेकिन ध्यान दे कर समझ लेती है। एकदिन वह मेरे लिए बकुल फूलों की माला ले आई। दूसरी मर्तबा चंपा के महकते फूलको ले आयी—कपडों के बस्ते में मैं किस फूल को रखता हूँ यह भी उस की समझदार नज़र भूली नहीं। एक दफ़ा वह फ्राय की हुई मच्छी ले आयी।

गोपी, यह जो विचित्र भेंट थी; उसको फूलों की तुलना में केवल गाय की रुखाई प्राप्त होती है तथापि उपयोगितावाद की दृष्टि से इसके पक्ष में कई सबूत खडे किए जा सकते हैं। इसके सिवा ब्याह से पहले जो प्यार फलों व फूलोंपर पलता बढता है, वही ब्याह के बाद आटे दाल को चबाना शुरू करता है। कभी कभी आटा और दाल बिगडने के बाद चिल्लाता भी है। मच्छी को देखने के बाद मैं ने कहा, "तुम मेरे लिए लायी?"

"लीजिए तो, मैं ने घर पर पकाया है। आप जिस होटल में खाते हैं, उसकी अपेक्षा ये कई गुना अच्छे हैं।"

"लेकिन तुम ब्राह्मण हो न?"

"ब्राह्मण अब चाहे उन सारी चीजों को खाते हैं, समझे आप? और हम तो हैं सारस्वत-ब्राह्मण।"

और वह हँसी! उसका हँसना कुछ विचित्रता से भरा था। उस में विषाद समेटा था। सारस्वत ब्राह्मण—? *Indeed* सारस्वत ब्राह्मण—!

मेरे स्वर्ग को अब वह सकुचाती नहीं है। सहमना ढीला पड़ा है! मैंने उसे अपने हाथों से मच्छी खिलाई, जिसे उसने बिना किसी एतराज के खा लिया! इतना ही नहीं उसने भी मुझे अपने हाथों से खिलाया। उसके हाथोंसे खाना बडा आनन्द देता है; अजीब गुदगुदी होती थी।—उसकी उँगलियाँ छरहरी नरम और मुलायम हैं—ब्याह का मोल अदा न करते हुए मैं ब्याह का मज़ा चख रहा था! एकसाथ प्रवास करनेवाली, वाहनों में एक दूसरे से सट कर बैठी हुई तथा एक साथ जीमनेवाली जोडियों की सूरतें मुझे बडा मोह करती आई हैं! हम भी ब्याह करें, जवानी से मतवाली किसी खूबसूरत औरत को ले कर जरा घूमें, ये बातें मेरे मन में उमर की चौदहवीं–पंद्रहवीं सालसे मँडराती हैं। फिलहाल तो ब्याह कोई प्रश्न है ही नहीं! लेकिन शेष कामनाएँ जरूर पूरी कर लूँगा। हालाँ कि इसमें मुझे कोई खास कीमत भी अदा नहीं करनी होगी। भाई, अब पूरा करता हूँ इस 'मत्स्यपुराण' को! सुनो अगला अध्याय,

"पसन्द आए आप को...?" वह मेरी राय चाहती है।

"मीनाक्षी मछलियाँ लाए और हम इन्कार करें?"

मैं ने चिरपुरातन परिहास की बात को कहा, जो अक्सर घटिया उपन्यासों में पायी जाती है, लेकिन सुरंगा के लिए पर्याप्त थी; वह दिल खोलकर हँसने लगी। मेरी राय है कि ऊँचे दर्जे की हास्य की बातें स्त्रियों को गम्भीर बनाती हैं या खफ़ा करती हैं। कारण यह है कि वैसी हास्य की बातें वे समझ ही नहीं सकती हैं। और बचपना भरी हास्य कथाएँ बतलाने के बाद उनका बाल मन खिलखिलाकर हँस पड़ता है। मैं इसे अनुभव के आधार पर लिखता हूँ।

"अच्छा है! अगली बार मैं फिर से लेती आऊँगी। जरा दूसरे प्रकार के।"

"क्यों, दौलत पानी बनकर बहने लगी?" मैं ने पूछा!

"आपको क्या करना है जी? काफ़ी है।"

हमें पैसे की कमी नहीं है। पैसे के हिसाब से दूसरी लडकियाँ मुझसे ऊँचे दर्जे की नहीं हैं, इस बात को बतलाने की उसकी कोशिश मैं ठीक तरहसे जानता था। तुम ही खयाल करो इस मामूली लडकी को मेरी खातिरदारी के लिए न जाने किस तरहकी मुसीबतोंको उठाना पडता होगा। यों कहे के दिन दहाडे पैसा पाने के सारे साधन इसके लिए रात को भी काम में आते हों। इसीलिए एकबार उसने भेंट के रूप में सोनेकी बुँदियाँ मुझे दे दी। मुझे अचंभा हुआ।

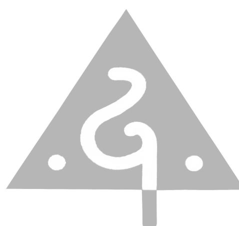
"क्यों लाई इसे?"

"आप ही के लिए।"

"अजी, वह तो हम समझे। लेकिन मैं इस सोने की चीज़ को क्यों लूँ? एक तो मेरे पास बुँदियाँ हैं; दूसरी, ऐसी चीजें खरीदने के लिए पैसे भी हैं।"

"मैं यह जानती हूँ कि आप बडे घर के बेटे हैं। मैं बेचारी





आपकी खतिरदारी कहीं कर सकती हूँ ? " आँखें अँसुवनी वनीं। मैं पिघल गया। मैंने पूछा,

" तो फिर आप इस चीज़ को क्यों देती हैं ?"

" मन कहता है कि मैंने दी हुई कौन सी चीज़ आप के पास सदा यादगार बनकर रहें ?"

" वह पुलओव्हर जो है ? सॉक्स भी हैं।"

" लेकिन आप इनमें से न किसीको पहन लेते हैं। "

" मुझे नागपूर की आबोहवा की आदत है। वम्बई की ऊबानेवाली इस वरसाती मौसम में अगर पुलओव्हर पहनूँ तो सीधे उवलता रहूँगा !"

" इसीलिए तो मैं इस चीज़को लाई हूँ।"

मेरी इजाजत का इन्तजार न करते हुए उसने मेरी पहनी कमीज के वटन्स निकाले ओर वहाँ अपनी बुँदियों को लटकाया।

तात्पर्य यह है कि वह अपनी देहली पर पूरी ताक़त से कामकर रही है। पुलओव्हर का निशान था दिल का सूवा! वटन्स भी वहीं पर निशाना कर रहे हैं। सारी चीजें वहींपर दनादन फेंकी जा रही हैं। मासूम लडकी को इसका भी पता नहीं होगा कि भेंट–मुलाक़ातों के छक्के–पंजों के चप्पे चप्पे हम पूरी तरह जानते हैं। प्रेम दिखाने के यह ढंग भी कितने मन वखौलनेवाले रटवाजी से भरे हैं। वही अश्रु पुराने, आह पुरानी, युग वाहों की चाह पुरानी! वह रोना–धोना, मसोसना, मिलना–जुलना सव पुराना फरेबी नाटक! हाँ! हाँ नाटक, यह सही! सिर्फ आदमी अलग !

सच कहता हूँ, एक दृष्टिसे मैं उलझन में अटका हूँ। कोई भी लडकी मेरे खातिर पैसे खर्च करें इसे मैं वर्दाश्त नहीं कर सकता — मानों, मुझे कोई घटिया समझ रहा है। लेकिन मैं ने जिस रफ्तारी घुड़ दौड़से कामना पर भेंटों की वरसात की थी उसी रफ्तार से अव मैं इन भेंटों की चीजों से व्रसाया जा रहा हूँ। फर्क यही कि हमारी जगहें अलग अलग हैं। जरा उलट–वाँसी मानो! मैं कामना का भूमिका में अभिनेता वना, तो मेरे पुराने पार्ट को फ़िलहाल सुरंगी अदा कर रही है! कामनाने 'मुक्तिकी वेदना के पुरस्कार,' का भागी हमें वनाया, हम भी इसी से को सुरंगाको वना दीक्षित रहे हैं।

चाहे कुछ भी हो, मुझे यह कहना होगा कि यह लड़की जिस क़ीमत की चीजें मुझे दे रही है; उससे अधिक क़ीमती ऐसी चीजें वह मुझे दें। चाहता हूँ कि भेंटें – वेंटें–मुलाकातें इनका लफडा मुझ से छूट जाएँ और वह सीधे अपनी मुलाकात के पैसे हमारे पास से ले लें। क्या ही अच्छा होता वह! लेकिन वह तो नामुमकिन लगता है। और उसके इस तरह के ऋण से मैं ऋणी वन जाऊँ? स्वप्न में भी मैं यह नहीं चाहूँगा! उसकी मेहनत के पैसों से खरीदी भेंटें (चाहे वह मेहनत किसी भी तरह की क्यों न हो!) मन के चाहने के खिलाफ़ क्यों लूँ? ना, वह तो हम से नहीं होगा। मैं ख़याल में भी वर्दाश्त नहीं कर सकता कि कुछ लोग औरतों के जी पर वेशरमी से जीते जाते हैं।

उसकी ये भेंटें दोनों ओर से मुझे उलझन में डाल रही हैं। छः माही परीक्षा सिरपर मण्डराती हुई चक्कर काट रही है। उसके लिए ठीक है कि भेंटें मुलाकाते यह 'जीवन भर का निश्चय' हो; लेकिन वह अपने लिए ऐसी कोई गम्भीरता का विषय नहीं है; दर असल एक दिल वहलाव का खेल। थोडे ही दिनों में मैं अपनी परीक्षा की वात की ओट में छिपकर थोडासा रो – धो लूँगा और मिन्नत करूँगा कि हम जन्म–जुदाई में तड़पें। और गोपी, मैं तुम्हें भी इतने लम्बे ढाले पत्र नहीं लिखूँगा। वम्बई मुझे आहिस्ता आहिस्ता जीत रही है। अभ्यास की वातों में मुझे यहाँ मान्यता मिल रही है। सिर्फ रूपहला झूला झुलानेवाला मैं कोई नागपुरी निरा साँड़ नहीं हूँ। यह वात अव सव समझ गए हैं। हालाँ कि इस वैद्यकीय महाविद्यालय में नागपूर — वरार के विद्यार्थियों का कर्तृत्व सचमुच पहले दर्जे का है। कई सालों से पहले क्रमांक की वपौती उन्होंने कमाई है। सालोंसे पहले वरार — नागपूर के विद्यार्थियों के जो गुट यहाँ आएँ उन्हों ने वड़ी विस्मयकारी कीर्ति यहाँ पैदा कर रखी है। वरार–नागपूर के लोग जव यहाँ आया करते थे तव मानों सिर्फ ऐशोआराम और चैन खुशी में अपने को लथपथाने के लिए? जैसे अँग्लैंड जानेवाले कुछ वडे वापके वेटे वहाँ पर सिर्फ़ मौजवहार के लिए जाते हैं! इसलिए नागपूर का आदमी कहते ही वह वडा रईस, घना गुड़गणेश, और वैसे ही वड़ा वेमुरव्वत हो ही यह कल्पना वडी चलती पहचान है। हिन्दुस्तान में सिर्फ साँप, सँपेरे, शेर और रियासतदार होते हैं, इस लोकप्रिय अँग्रेजी कल्पना के समान नागपूरवालों के वारेमें, पूना वम्बई में ऊपर कही हुई विस्मयकारी कल्पना प्रचारित है। खैर! सभी मित्रों से स्नेह वतलाना! पत्र की कामना है।

तुम्हारा
—मधु

वन्स मोअर–गर्दनें छाँटने का मेरा काम जोरके साथ चालू है। काँटछाँट के इस काम में मुझे दिलचस्पी भी मालूम हो रही है। वैसे डिसेक्शन में मैं सायन्स कॉलेज में भी ऊँचा दर्जा रखता था। गर्दन की काँटछाँट को मुझे अव तेजी से खत्म करना ही चाहिए।

—मधु



१३

विन्सेण्ट रोड, दादर
२७ अगस्त ३७

प्रिय गोपी,

सुरंगा एकवार भी आई नहीं, ऐसा एक भी दिन नहीं हैं। मैं ने उसे कहा कि आठ सितम्वर से मेरी छःमाही परीक्षा शुरू होगी; तुम्हें देखकर ग्रे, हॅलॅवर्टन्, हॉवेल, ऐसे रूखे लोगों को मैं गौर से देख ही नहीं सकता। वह कहती जाती है मैं सिर्फ़ चुपचाप वैठूँगी। कोई तकलीफ़ नहीं दूँगी। मैं ने उससे कहा, " तुम्हारे इस चेहरे को देख कर किताव की सूरत देखने की रुखाई अपने में नहीं है"। दर असल मैं केवल उसके चेहरे से संतोष की साँस नहीं लूँगा। आदमी को चाहिए कि वह तरक्की करें। लेकिन वडी वुरी वात है कि मेरे इस प्रगतिवादी दृष्टिकोण का वह घोर निषेध करती है। देवदर्शन को जाने के जैसे केवल पाँच मिनट भी क्यों न हों, जाएँ चलें, इस आदत को निभाते हुए, वह हर दिन यहाँकी यात्रा करती है।



अनुक्रमणिका



स्त्रियों का यही तो बड़ा षड्यंत्र है कि इसी तरह की नीतिसे पुरुष को भुलावा दे दे, फेर उसे अभिलाषाकांचनमृग के पीछे खूब दौड़ाना और अंततः प्यास की खाई के गड्ढे में गिराकर उसको चकनाचूर करना। कई बार मैं जानबूझकर क्लास की लड़कियाँ और खूबसूरत परिचारिकाओं की उड़ती बातें सुनाता हूँ। तब वह नाराज़ बनती है और बेचैनी से दिनमें कमसे कम एक बार मिल जाने की बात वह बड़े ध्यानसे पूरी करती है। वह अपने इस क्षेत्र में किसी की होड़ बाजी नहीं चाहती है। उसे लगता होगा कि देखते देखते अगर कोई एकाध चालाक नर्स अपने इस बनते काम का गुड़गोबर कर देगी। लेकिन यह पागल लड़की क्या जाने कि परिचारिकाएँ रहीं कोसों दूर, स्टॅथोस्कोप से भी हम हाथ मिला नहीं सकते।

आठ और नौ सितम्बरको हमारी छःमाही परीक्षा होगी। लगभग अधे से अधिक लड़के इस परीक्षा से छुट्टी पाते हैं। परीक्षा के बाद पूरे एक मास की छुट्टी! इस छुट्टी में यहीं पर रहना और अधिक से अधिक समय सुरंगा के लिए दे देना इस, बातको मुझे मान लेना पड़ा; तब कहीं एक सितम्बर के बाद की एक हफ्ते की छुट्टी उसने देना मंजूर किया। दम्पति सुखको अनुभव करने की मेरी कई दिनोंकी छिपी तमन्ना है। मौक़ा हाथ आ रहा है, उसे क्यों गँवाऊँ ? शायद वह समझती होगी कि आधे मास के भीतर इस मामले को मिटाया जाएगा। दर असल मैं भी वही चाहता हूँ लेकिन जरा टेढ़े मतलबसे। आजकल मैं उसे अक्सर खिझाता रहता हूँ कि वह अपने घर मुझे ले चले। उसके घर की बात कहते ही उसका चेहरा सफ़ेद– फ़ीका हो जाता है। अपने घर ले जाने के बारे में वह टालमटौल करती है। कहती है उसके घरवाले नाराज होंगे! जाने कहीं इसके घरवाले सन्यस्त विरागी हैं। चाहे कुछ भी हो, मैं इसके घरके छोरका ओर जाने बगैर नहीं रहूँगा।

तुम मेरे ओर मेरे पडोस ब्लाकस् की जानकारी चाहते हो। ऐसे जल्दबाज़ी क्यों ? मेरा यहाँ का ब्लॉक तीन कमरों का है। *Paurlour bed and bath!* पहले पहले बेडरूम मुझे खाए जाती थी, लेकिन अब उसमें आशाका अनुराग झलक रहा है। बम्बई का दूसरा मंज़िला याने नागपूर का लगभग तीसरा। और यहाँ की मजलों की गिनती जरा अलग है— हम ज़मीन के माले को पहला मंज़िला समझते हैं और पहले को दूसरा गिनते हैं। – पूरब की बाजू में एक जाडा मोटा जोड़ा रहता है जिन्होंने अपनी परम्परा को निभाए रखनेवाली जाडी मोटी आबादी पैदा की है। पश्चिम को एक रूखा लुकड़ा जोड़ा और उनकी लुकडी तादाद! सिरहाने फुलियनी नथूनों की चमकती 'साँवली धौली तामिलनाड़ी छाया और पैरौंतले गिड़गिड़ाहट से भरा लड़खड़ाता कन्नडी 'गड़बड़ घोटाला'— यह हैं मेरे कमरे का भौगोलिक दिग्दर्शन! मेरे सब पडोसी काया प्रवृत्ति विकर्षण पूर्ण है, न उनमें से किसी की सुरंगा से तुलना करें न आसपास के लम्बे फासले के विभाग में।

साथ में सुरंगाकी तस्वीर भेज रहा हूँ। अनजाने में न चाहते हुए भी जी कभी कामना से सुरंगा की तुलना करने को सोचता है। जलता दीप और धधकती आग इसमें जो भेद है वही इन दोनों के रूपों में। सिनेमा की दुनियाँ की भाषा में कहना हो तो न्यू थिएटर्स की जमना और काननवाला इनके रूप और व्यक्तित्व में जो भेद है वही मानों कामना और सुरंगा में है। तुम जानते हो कि जमना की शान्त, गम्भीर और पावनता से भरी प्रतिमा से मैं बड़ा प्यार करता हूँ, कानन जरा धाँदली, लचकती और उछलती बिजली है। उसकी ओर देखते समय स्त्रीत्व के आकर्षण का खींचाव हर पगपग पर होता है लेकिन हमें जमना की ओर एक युवति इस दृष्टि से देखना मना है। एक के सामने सिर नँवता है तो दूसरी की कलाई पकड़ने को जी मचलता है। पत्नी हो कैसी–वह शान्त पावन स्वरूपा जमना। इसीलिए मैं कामना की ओर अपने आप खिसकता गया। कैसा दुर्भाग्य का फेरा है कि शान्त और पावन प्रतिमा की लड़कियाँ शायद ही शान्त और पावन होती हैं। वे बड़ी धीमी गति से व शान्त मन से किसीका गला घोंटें जाती हैं और घनी पावनता से किसी का मन नोंच सकती है। इसके विरोध में लचकती चमकती लड़कियों अपनी नियत से भी सीधी सादी होगी यह कहना जरा मुश्किल है। सुरंगा को छछोर कहना जरा असम्भव है लेकिन तब भी उस के हावभाव छलकती लपकती लपेटें हैं, आँखें मतवाली चमकसे मस्त हैं,शब्दों में चिनगारियाँ हैं...! घुंघराले बालों पर लहरें हिलोरती हैं। वह अक्सर साफ सुथरे पहनावे में होती है। उसकी अदा ही अज़ीब मिठास में पलती है। लेकिन चेहरा याने मन थोड़ा ही है? सचमुच मेरी राय है कि स्त्रियों के चेहरे अनेक होते हैं, लेकिन उनका दिल एक ही मिट्टी का बना होता है।

काश! इसके बाद हम कलेजे को (दिलके कलेजोंको) छुएँगे लेकिन सिर्फ़ काँटने के लिए। कलेजे के और कोई विशेष गुणों की छानबीन करना तुम्हारे बस की बात है। मेरा सम्बन्ध केवल शरीर के साथ है! मन के और दिल के इस पचड़े से मुझे क्या मतलब ! इसे परिहास मत समझो; कोई मन कभी जीवित भी होता है, यह मैं किस बूते पर मानूँ? मन तुम्हारे वकीली पेशे में एक बड़ी बुनियादी दौलत जरूर होगी! तुम वकीलों के धन्धे भी एक ही किस्म के कभी हो सकते हैं ? राजनीति और साहित्य क्षेत्र में भी तुम लोग बीच में मेरा लालभाई वाली नीति को मानते हो। मेरे जैसा डॉक्टर केवल शरीर से मतलब रखता है। शरीर यही उसकी धरोहर है, दौलत है, और संसार है। लेकिन बिल्कुल वैसा भी कहना जरा ठीक नहीं होगा। चेकाव्ह, क्रॉनिन, मॅाम् इनके जैसे नामवर लेखक डॉक्टर ही थे। वे डॉक्टरी स्कॉलपेल की अपेक्षा कलम की कारीगरी को अधिक उपयोग में लाये। और इसीलिए शरीर की अपेक्षा मन के व्यवहारों की जाँच अधिक की। भाई, जाने दो। मतलब यह है कि हमें किसी के दिल से मतलब नहीं है शरीर से है! अब रुकता हूँ।

तुम्हारा

—मधु

फिरसे : एक बात बतलाना भूल गया हूँ पता नहीं कैसे ? गोपाल *It no more only rains, it pours!*

आज और एक अभिनेत्रि का जीवनपट पर – याने हमारे कमरे में – प्रवेश हुआ। इस का नाम है हिरा! सुरंगा के सेठिया के पास जो की–सैन्य है इसकी यह मार्के की सिपार्हादन है! मेरा खयाल है, वह

अनुक्रमणिका





जासूसग़ी करती होगी। क्यों कि सुरंगा का पीछा करते करते वह एकदम सी दरवाजे में आ कर कुर्निसात करने लगी। सुरंगा अब दरवाजे से बाहर जा ही रही थी त्यों ही वे दोनों एक दूसरे से टकराती हुई मिलती हैं, और अचंभा करते हुए कहती हैं,–" अरे तुम यहाँ ? सुरंगा स्याह बनी और हीरा उजली बनी। आँखों में जीत पाने की खुशी लहलहाती थी। सुरंगा के बदौलत हिरा की एकटकी का तीर मुझ पर इशारे का निशान बना था ! गोपाल, मत पूछो कि उसकी आँखों में क्या था ? यह पूछो कि उसकी आँखों में क्या नहीं था ? लडकी गेहुँई, छरहरी और झुकझुक कर झुलने वाली डाली की नाई है। आँखों की भटकती कलंदरी राह गेरुए वस्त्र का सन्यस्त भी जानता है। *Vamp* ! हर जर्रे जर्रे में वह *Vamp* है। दरवाज़े में खड़ी उस नाजुक अन्दाम हसीना को मैं ने बुलावा किया,

" आईए, अन्दर आइए। वहाँ क्यों खडी ?"

सुरंगा का चेहरा अजीब हसीदा ले कर उदास बना। *My man Jeeves* फिर से तश्तरी लेकर आगे बढा। और इस दूसरी लड़की का स्वागत भी अपने समान ही हो, इस हालत को बर्दाश्त न करने की वजह सुरंगा की नाराजी साफ़ साफ़ दिखाई दे रही थी।

" सुरंगा, अरी सेठजी कबसे तेरा— "

वाक्य को अधूरा रखते हुए हिरा ने मेरी ओर देखा तब सुरंगा के चेहरे पर कौनसा भाव जागा होगा इसको कहा नहीं जा सकता। आखिर इस नई तूफान लड़की ने अपने भावदर्शी चेहरे को, भाषा के साथ बदलते हुए कह दिया,

" सेठ जी कब से तुम्हारा इन्तजार करते हैं। "

दोनों लडकियाँ मेरे कमरे में पाँच या दस मिनट तक होंगी। लेकिन इतने में वे एक दूसरी की ओर खिसियानी बिल्लियों की निगाहों से नाखूनों को साफ करती हुई देख रही थीं। सुरंगा डिफेन्सीव चालबाज़ी को चल कर आवाज़ ऑफेन्सीव आदेश को उठाती थी।

" चलें, अब हम चलें."

की प्रार्थना को वह रटती थी। तुम समझ सकते हो कि इस *Vamp* का मेरे कमरे में आना उसे कितना खला होगा ! मैं तो वह जल्दी जाएँ ऐसा कोई भी भाव नहीं दिखता था – *Vamp* रहे या और कोई हो, हमारी अपनीनि यत आवभगती की हो। *Vamp* की आवभगत करना दर असल अधिक सरल सीधा और सरता है। वह छटी हुई लड़की सुरंगा से लापरवाह हो कर टस से मस न होते ज्यों का त्यों बैठी रही। आखिर सुरंगा ने मिटाते हुए मन से कहा,

" देखो मैं चली। चाहो तो तुम बैठो। "

वह भी उठी। उड़ती नज़र से उसने पलकों को झेंपकियाँ दे दीं और वह जाने को हुई। लेकिन कहानी यहीं पर समाप्त नहीं होती। उन दोनों को दरवाज़े तक पहुँचा कर – और कभी आती रहिएगा ऐसा, आवभगती का निमंत्रण देते हुए – मैं दरवाजा बंद करने वाला ही था त्यों ही सिढ़ियों के मोड़ पर रणभेरी बजने लगी और उम्मीद करता था कि नगाड़े भी पीटे जाएँगे। मैं सिमटाए बदन से सीढी के मुँहाने जा के चोरी चोरी खड़ा रहा। देखा, सुरंगा नीचे झुककर थैली में से ज़मीन पर बिखरी हुई चीज़ों को जुटाने में लगी थी।

" किसने तुम्हें यहाँ आनेका न्यौता दिया था ? – "

" हम लोगों को क्या किसी के न्यौते की ज़रूरत होती है ? मुझे सेठजी ने कहा था, देखें तुम किस घोंसले को अपना रही हो। "

" मैं चाहूँ वहाँ जाऊँगी। क्या जरूरत है कि कोई इससे ताल्लुक रखें ? "

" वाह री पागल ! दफ्तर में अगर आई नहीं तुम, तो क्या तुम्हारी पूछताछ भी न करें ? बेखबर हो कर घण्टों तक यहीं बैठती हो ? "

" मैं चाहे घण्टों तक बैठूँ या दिनरात रहूँ, उस से तुम्हारा क्या मतलब ? "

" दिनरात ! " ठहाका लगाकर और बाद में दबी आवाज़ में हँसती हुई कंकड़ी आवाज में हिरा कहने लगी, " ओह् ! तो तुमने यहाँ तक आगाड़ी लगाई है। बड़ी खुशनसीब हो, एक पर सवाई भारी भरकम रईसजादे तुम हेर लेती हो। लेकिन सचमुच, सुरंगा फूँकफूँक के कदम बढ़ाना। इससे पहले एक कॉलेज के लड़के के लिए पागल बनी थी। ब्याह ब्याह तक की बातें सुनी थीं हमने, और आखिर तुम्हें हाथ मलते रहना पड़ा। यही किस्सा उस बंगाली का भी...। "

" हिरा— । "

दबी खफ़ाई की सुरंगा की आवाज़ ने जाहिर किया।

" चाहो तो सुनो – नानी के आगे ननिहाल की बातें कौन करें ? लेकिन अपनी एक सच्ची कहती हूँ –

अहंभावी गम्भीर स्वर में हिरा ने वह वार किया और चीज़ों को बटोर ने वाली गुस्से से आमदा सुरंगा को छोड़कर वह आगे बढ़ी। सुरंगा नाराजी से सीढियाँ तेज रफ्तार से उतर कर अपने रास्ते को नापने लगी। वार कामयाब था; उसने मेरे बोझ को बड़ा ही हल्का किया था। *So that is that Gopal !*

— मधु

पुनश्चः कमरे से बाहर जाते समय हिरा की नज़र मुझे और संदेशा बोलती थी कि — 'जबरदस्ती से अब जा रही हूँ लेकिन अब फिर से लौट आना भूलूँगी नहीं।' हिरा ने समयको ठीक चुन लिया है। एक पूरा हफ्ता है उसके जिम्मे !

— मधु

१४

दादर,
३१ अगस्त ३७
रात्रि — ११॥

गोपाल भैया,

आखिर हिरा आज आ के ही रही। आने के लिए कौनसा समय उसने ढूँढा होगा मालूम है ? रात के ९॥ बजे का। मेरे यहाँ आने के लिए उसने जिस समय को चुना उसी से मैं समझ चुका कि *She is a sporting girl !* सुरंगा के पास जाने को सुरंगा दूसरों को तकलीफ़ में डालती है। इस बेचारी का इसके बारे में जरा विशाल दृष्टिकोन मालूम होता है। वह अन्दर आई तो सीधे कोच में मुझ से सटकर बैठने के लिए। मैं भी किस क़दर शर्माऊँ ? अँग्रेजी साहब जिस तरह चुम्बन को मुख शुद्धि की अपेक्षा अधिक महत्त्व नहीं देते हैं, लगभग उसी प्रकार का स्वतंत्र विचार इस का भी है। ऐसे आक्षेपार्ह बर्तावों के बारे में ! अल्पसंतोषी है प्रवृत्ति उसकी ! चाहते है, कि अगर साथ हो तो इस तरह की लड़की का। जिससे ना हम उस लडकी को तकलीफ़ में डालते हैं, ना खुद तकलीफ़ में फँसते हैं।

बतलाने की ज़रूरत नहीं कि सुरंगा के सिलसिले में बातचीत हुई। वह भी कुछ बतलाना चाहती थी और मुझे भी सुनने से इन्कार नहीं करना था।

" सुरंगा बड़ी भोली है ! " मैने बातचीत शुरू की।

" हाँ हाँ। बड़ी भोली है बेचारी ! " छटी आवाज़ में उस छटैल लड़की ने कह दिया और अपने हेतु का विवरण करते हुए आगे कहा, —

" इतनी भोली है कि चाहने पर भी वह किसी को भी जाल में अटका नहीं सकेगी ! "

" याने ? क्या कहती हैं आप ? जाल में अटकाना, कोशिश करने के बाद भी वह कर भी नहीं सकती ? "

" चाहिए वह समझिए ! ब्याह तय करने के कई प्रयत्न उसने किए, लेकिन वह बेचारी बुरी तरह से हार गई। "

" ब्याह तय करने की कोशिश ? " मैं ने पूछा। मुझे आश्चर्य हुआ था।

" याने ? " उसने अचम्भे का बहाना किया और आगे कहा " कैसी अजीब बात है उसने अपने पुराने 'अफेअर्स' आप से नहीं कहे ? मैं व्यर्थ में बोली। "

"अब बतलाना शुरू किया है तो बतलाइए। तो क्या माज़रा है।"

"छिः, छिः, मैं ज़्यादह कहनेवाली कौन? मैंने इस बात को इसलिए छेड़ा कि मैं समझती थी कि उसने इन बातों को आप से जरूर कहा होगा। वैसे तो कुछ हुआ नहीं, देशमुख नाम के लड़के से उसका घना मेलजोल था। जोशी नाम का और कोई एक लडका था। किसी बंगाली बाबू से भी उसकी कुछ छेड़छाड़ थी......"

"भला इस देशमुख, जोशी इनके घर जा कर वह करती थी क्या?"

"मैं क्या जानूँ?" उसकी चुभनेवाली हँसी बाहर फूँट के आयी। उसने आगे कहा—"वह अपनी शादी तय करने की धुन में बावली बनी है।"

"लेकिन उसका ब्याह के लिए इतना हठ ही क्या?"

"सच कहूँ? वह अपनी जात — बिरादरी से रिहा होना चाहती है। वह कुलीन बनने की चाह रखती है।"

"घर — बिरादरी ठुकराने की चाह?"

"जी हुजूर।"

"वह अपनी ब्राह्मण जाति को कैसे छोड़ेगी और क्यों?"

"अरी, याने अपने ब्राह्मण होने की बात उसने कही आपसे?" हिरा की आँखें अचम्भे को दिखाने के लिए बड़ी बनी; उसने होटों को दबाया और 'ना' के इशारे में चेहरा हिलाते हुए कहा— "छिः, छिः, मैं बड़ी भारी भूल कर बैठी। मैं अनापशनाप बक गई।"

"आगे क्या हुआ?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं कहूँगी मैं।"

'सौगंध है मेरी, आगे कहिए!"

उलझन से हिरा का चेहरा भारी बन जाता है और वह अपनी सफाई कहती जाती है,

"क्या कहूँ? हाय री बलैया! अपनी जात — बिरोदरी से किसी को शर्म क्यों लगे? वह थोड़े अपने बस की बात है! लेकिन सुरंगा की यह बात हर मौसम में अपना वही खेल रचती है। जात — पाँत का सवाल पैदा होते ही मानों उसके बदन पर रोंगटे खडे होते हैं। मानो नोंचती है उसकी अपनी जात।"

"लेकिन मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि कुछ शर्म मालूम हो, ऐसी है कौन सी बात?"

"जरा जाइए तो उसके घर। मालूम होगा कि दादर पर है या कांदेवाडी के रंडी बाज़ार में है? हाथ कंगन को तब आरसी क्यों! कांदेवाड़ी में जिसकी चहचाह की जाएगी वह इस ढंग से वह अपने को मरोड़ देती है कि पूछो मत!"

"और आप किस जात की है?" मैंने हिरा से सवाल पूछा।

"सुरंगा की जो जात-पाँत है वही मेरी भी। अगर वह ब्राह्मणी है तो मैं सौ ब्राह्मणी हूँ।"

"तो फिर आप क्यों नहीं चाहती कि, एकाध बड़े अच्छे और प्रतिष्ठित घरमें अपना ब्याह हो?"

"ना, ना, मैं वैसा कुछ नहीं चाहती! मेरे घर के लोग कहते हैं कि मैं शादी करूँ, लेकिन मैं नहीं चाहती, शादी। सुरंगा चाहती है कि उसका ब्याह हो। लेकिन उसके घरवाले चाहते हैं कुछ अलग।"

"क्या चाहते हैं वे?"

"चाहते हैं कि सुरंगा अपने पेशे में लगे।"

"कौनसा पेशा?"

"वे चाहते हैं कि वह सिनेमा में जाएँ। उसकी एक बहन भी है इस सिनेमा के पेशेमें। अगर वह सिनेमा में जाना नापसन्द करती है तो उसे अपने घर का 'घरेलू' धन्धा आगे चलाना होगा। इसी में सयानापन है और घरकी इज्जत है, यह भी वे बार बार कहते हैं। लेकिन ब्याह न करें।"

"मान लीजिए, अगर सुरंगा ब्याह करें तो उस में घरका क्या नुकसान?"

"वाह्, जी वाह्! आप भी ऐसा कहने लगे?" दरअसल वह जितना हो सके उतना समय और पूरी कोशिश अपने माता पिता की सहायता में लगाएँ। अगर वह इस से इन्कार करें तो घर में काम करेगा और कौन? सच कहती हूँ, सुरंगा अपने माँ बाप से रिश्ता तोड़ ही देना चाहती है। और इसीलिए तो उसकी यह सारी कोशिश चालू है। चाहती है कि ब्याह हो। 'ब्याह' हो, चाहे किसी कदर!"

"चाहे किसी कदर? फँसाएगी? झूट बोलेगी?"

"भला, यह मैं क्यों कहूं? लेकिन चाहे वह करेगी, ध्यान में रखिए!"

"लेकिन, आप तो किसी कदर ब्याह नहीं चाहती है न?"

"छिः, छिः! कौन चाहेगा ब्याह? जनम भर एक ही पुरुष की खातिरदारी करते रहना? हम नहीं...."

"बेहतर है एक की अपेक्षा अनेक पुरुषों की खातिरदारी करें! और अनेकों की खातिरदारी याने किसी भी खातिरदारी नहीं? सच कहता हूँ न मैं?"

मैं ने यह सब पूछा, तिसपर भी वह समुदारचित्तानायिका थोडा भी गुस्सा न कर सकी! "जाने कैसा मजाक उडाते हैं?" सो कहकर उसने मेरे कन्धे से गाल को सिल्हाया! क्यों है न वह *Sport*—? खयाल रखो यह सब प्रगति केवल दूसरी बैठक में!

कोई हिरा माने या कोई सुरंगा चाहे, शरीर भले अलग हो लेकिन एक ही जाति के। हमारा ताल्लुक सिर्फ़ स्पोर्ट के मतलब से है। सुरंगा के देशमुख–जोशी वाले लफड़े की आज नये सिरे से कुछ जानकारी मिली है और इसके बाद जो कुछ सुनता जाऊँगा उसकी कल्पना मात्र से मन चकित होता है। वह दाँवपेंच चलाती है और उसकी चाहत की बाजी आखिर क्या कहनेवाली है, इसका आज पूरा पता चला। हिरा चाहती है कि सुरंगा मेरी ओर बिल्कुल न आएँ। लेकिन हम महाशय चाहते हैं कि दोनों आएँ। भाई साहब, कोई कहता है न कि एकसे दो भले! नमस्ते!

तुम्हारा
—मधु

अनुक्रमणिका

पुनश्चः अब अगले हफ्ते में तुम्हारे पत्रों के लिए जरा आराम देता हूँ। सुरंगा तो आएगी नहीं और हिरा तो आए बगैर रहेगी नहीं।



१५

दादर,
११ सितम्बर ३७

प्रिय गोपी,

छँः माही परीक्षा से मुक्त हुआ। अँग्लो हिंदी जबान में कहना हो तो "अच्छा किया;' सच कहें तो इस परीक्षा का कोई महत्त्व नहीं। इतना ही नहीं तो अप्रैल में होनेवाली वार्षिक परीक्षा को भी कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। सारे विद्यार्थियों को 'सेकंड ईयर' में भेजा जाता है। यह तो मेरा पहला साल है। तिसपर दो लडकियों का मुकाबला करते हुए मैं क्या कर सकता हूँ यह भी मुझे देखना है— तुम भी देखनेवाले हो।

अब तो उन दोनों लडकियों में क्रॉस फायर का बारूदी काम जोर-शोर से भड़क उठा हैं। *Things are moving fast!* हरदिन कुछ नई बात ले कर जागता है, हर रात कुछ नई बात का मजा दिलाकर सोती है। बीच में सुरंगा नहीं आती थी (और इसीलिये) दरम्यान हिरा ने दो चार बार आ कर अपना वादा भरसक पूरा किया। कहने की जरूरत नहीं कि सुरंगा को इस बात का पता चला। (मेराअनुमान है कि उस छटी छक्की हिरा ने इस बात को नमकमिर्च लगा कर सुरंगा से कहा होगा।) अभी अभी परीक्षासे मुक्त ही हो रहा था त्यों ही सुरंगा आयी और मसोस ने लगी। यकायक पूछने लगी,——

"हिरा, यहाँ आती थी न ?"

"क्यों नहीं, आती थी जो!"

"अपने उसे यहाँ क्यों आने दिया ?"

"यह भी कोई सवाल है! में उसे क्यों ना कहूँ ? और मान लें वैसा करना है, तो क्या मुझे शराफ़त से हाथ नहीं धो लेना पड़ेगा ? मैं ने तुम्हें कभी आने से ना कहा है ?"

"आप उसे और मुझे एक ही लकड़ी से नाप रहे हैं ?" उसने यह कहने के बाद, मतलब समझने के कारण होंठों को दबाया और आगे पूछने लगी,—

"सुना है कि वह एक बार रात को भी आयी थी ?"

"जरूर आयी थी।"

"क्यों ?"

"हो सकता है, वह मुझपर भरोसा करती हो! शायद तुम से भी ज्यादह विश्वास होगा उसे!"

"मैंने कब विश्वास नहीं किया आपका ?" पलकें बोझ से थर्राने लगीं। स्वर व्यथासक्त बना और वेदना से भरे उसके वाक्य सुनाई पडे—,

"जो करना नामुमकिन था, वह मैं ने कर के दिखाया है। आप चाहते भी है क्या मुझसे ?"

"इसे तुम बड़ी अच्छी तरह से जानती हो!" मैं ने उसे नज़दीक खींचा।

"ना, मैं क्या जानूँ ?"

"तुम जानती हो!"

मैं ने उसे और नज़दीक खींचा; आँखों से आँखें टकराई; उसकी पलकें नीचे झुकीं और डर से सकपकी आवाज़ में वह चीख पडी—,

"ना ... नहीं ... नहीं!"

"यही तो मैं कहता हूँ!" मैंने कहा, "एक तो, तुम्हें मेरे बारे में विश्वास नहीं; दूसरा, हिरा के आने के बारे में भी तुम्हारे दिल में कुछ शक पैदा हुआ है!"

"हाँ, मैं उसका भरोसा नहीं कर सकती! वह नेकचाल की लडकी नहीं है। मैं समझ नहीं सकती कि ऐसी लडकी का यहाँ आना आपको नापसन्द क्यों नहीं ?"

"क्यों, नापसन्द करूँ ?"

"मैं जानती हूँ, अच्छीतरह आपको! आपके विचार पुराने ढँग के हैं!

"तो फिर उस पुराने ढंग के मुताबिक तुम्हारा यहाँ आना जाना भी नहीं माना जायगा। तुम्हारा गली गली में धूल छानते घूमना भी नहीं माना जाएगा। वैसे ही और कई अगनगिनत बातें हैं जो नहीं चल सकेंगी।"

"मुझे और हिरा को एक ही मिट्टी की मानते हैं आप!"

आँखों से आँसू झरने लगे।

"सच मानिए, मैं उसके जैसी नहीं हूँ। सच्ची कहती हूँ।"

मसोसे, सिसकियाँ जमघट बन कर इकट्ठा हुई था।

मैंने आगे क्या किया होगा इसका ब्यौरा देने की कोई ज़रूरत नहीं हैं। मुँह तोड़ जवाब देने लायक वे वाक्य कइएकों को कण्ठस्थ हैं।

लेकिन मुखौल बातों से कबतक संतोष मानता जाऊँ ? मेरी प्रगतिवादी प्रवृत्ति का सुरंगा को कोई प्यार नहीं। इसलिये मैं भी इन एक सी बातों से ऊब गया हूँ।

दस अक्तूबर तक हमारी छुट्टियाँ चलती रहेंगी। चिमणाजी अप्पा (पोर्तुगीज़ों के खिलाफ़ लगातार ४० खेलनेवाला अठारवीं शतीका एक मराठा वीर) के जैसा सिर हथेलीपर लिए जान को कुर्बान करते हुए मन की चाह को पूरा करनेका विचार है।

तुम्हारा
—मधु



१६

विन्सेण्ट रोड, दादर,
१४ सितम्बर '३७.

प्रिय गोपी,

छुट्टी के इन दिनों का मेरा कार्यक्रम बिल्कुल तय बन बैठा है। सुरंगा और हिरा ने अब सिर्फ़ मेरी काँटछाँट करना शेष रखा है। एक दूसरे को चकमा दे कर वह आती है लेकिन मेरे कमरे में ही उनकी

अनुक्रमणिका





मुलाक़ात होने की टेढ़ी घटना हो ही जाती है। हिरा के चेहरे पर 'पाने की हँसी' लम्बी कदम से बढ़ती है तो सुरंगा की सूरत 'खोने के गम से' दिन-ब-दिन रोनी बनती जा रही है। ज्यों ही सुरंगा हिरा के बारे में कुछ कहती है त्यों ही मैं नये युग की नयी कल्पना का सहारा पाता हूँ और कहता हूँ कि–दो युवक युवतियाँ प्रयोजन हीन हेतु से क्या मिल नहीं सकते? (दर असलवे उस तरह मिल नहीं सकते हैं यह हमें अच्छी तरह से मालूम हैं।) तुम काले रंगों की ओछी ऐनक से हिरा की ओर देखती क्यों हो? मान लो, एकाध दुष्टचरित्र का लड़का मेरे पास बारबार आया, तो तुम्हें उसके बारे में कुछ भी खलल नहीं होगा; तो फिर हिरा के बारे में तुम इतनी सख्त शक्की क्यों? लड़का और लड़की एक साथ दिखने पर उनकी ओर लैंगिक दृष्टि से देखना यह तंगदिली का सबूत है...आदि नीतिवादी पत्रपत्रिकाओं में प्राप्त होनेवाले वाक्य मैं उसके सामने अटूट रफ्तार से फेंकता हूँ। बेचारी डर के मारे और भी सहम जाती है।

सच कहता हो तो जिनका रिश्ता बिल्कुल पास का नहीं ऐसे स्त्रीपुरुष एक दूसरे से मिलने पर उनमें यौन विषयक भावनाएँ आँखें खोल कर जाग उठती हैं। यह जहाँ तहाँ दिखाई देता है। कम से कम वे सो तो नहीं जाती। फ्राईड साहब के अनुसार माता के प्रेम तक इस यौन विषयक आकर्षण का ताँत बँधा होता है। इसीलिए अपने पुरखों ने नज़दीक के नाते में आनेवाली स्त्री के साथ भी अकेले बैठने से अपना बुलँद इन्कार जाहिर किया है। लेकिन हिरा या सुरंगा के साथ कमरे में लगातार कई घण्टोंतक अकेले बैठनेवाले मेरे बारे में अगर कोई ऐसा शक उठाएगा तो जानते हो मैं क्या कहूँगा? मैं कहूँगा तुम्हारी दृष्टि तंग और ओछी है। 'काम'की भावना को छोड़ कर युवक युवतियों में केवल शुद्ध स्नेह निर्माण नहीं हो सकेगा। पुरानकी कथाएँ बतलाती हैं कि विश्वामित्र के जैसे थोर तपस्वी भी इस सिलसिले में भरोसापात्र नहीं थे। निर्विकार स्त्री पुरुष संबंध के बारे में देखें तो कोई भी कॉलेज युवक शुक अथवा भीष्म की योग्यता पा चुका है। जैसे दो लड़कों में शुद्ध स्नेह बंधन हो सकेगा वैसा स्नेहबंधन भी लड़के व लड़की में हो सकेगा। युवक व युवति इनकी ओर अब हमें समानता की दृष्टि से देखना होगा इत्यादि!...दरअसल लडका और लड़की समान कैसे हों। उनकी और समानता की दृष्टि से हरी का लाल कौन देख सकेगा, लेकिन अपना उस से कुछ मतलब नहीं। विकासवाद की यही बडी सुविधा हैं कि विकास चाहनेवाले को कुछ समय काफ़ी सुविधाएँ और सहूलियतें दी जाती हैं। चले, हम भी विकासवादी बनें।

कई बार जब कभी सुरंगा ईर्ष्या से धधक उठती हैं तब मैं उसको ठंडा बनाने के लिए उसका घर–घर छानने का धंधा कह डालता हूँ। उसकी सारी इमारत नीचे ढह जाती है। मैं अपनी बात जारी रखता हूँ और कहता हूँ —

"भला सुरंगा, किसी और को भला बुरा कहने का तुम्हें क्या अधिकार है? अगर तुम हिरा को बुरी मानती हो, तो जैसे वह अनजाने आदमियों के घर जाती है वैसे तुम भी जाती हो। जैसे तुम यहाँ लगातार घण्टोंतक बैठती हो वैसे वह भी कहीं बैठती होगी; वैसे यहीं भी! तुम नियत से खराब हो यह वह कहती है। वैसे तुम भी उसके बारेमें। वैसे ही तुम नेकदारीसे काम नहीं चलाती ऐसी शिकायत वह करेगी और तुम भी उसके बारे में वही कहा करोगी। मान लें कि ऊपर – ऊपर से ये सारी बातें एक सी दिखती हो, लेकिन अंदर से तुम उससे कुछ अलग होगी भी; लेकिन इसको कौन और कैसे दिखा दें? पराया किस तरह तुम्हारे कहने पर यकीन करेगा?"

सुरंगा इसपर जवाब देती है—

"संसार की सारी बातें थोडे सिद्ध की जा सकती है?"

उसकी राय है कि कुछ बातें अपने आप समझती है और उन बातों को किसी बूत के आधार से सिद्ध करना मुश्किल होता है। मैं कहता हूँ कि जो सिद्ध नहीं किया जा सकता उसे मान बैठना यह अनुदार वृत्तिका लक्षण है। यह उसके लिए मुँहतोड जवाब है। लेकिन तब भी हिराके आने के बारे में वह दिन-ब-दिन ज्यादह परेशान हो रही है। कल ही उसने हिरा के बारेमें मुझे खरी खोटी सुनायी। शादी से पहले अगर औरतें इतनी परेशान करती होंगी तो शादी के बाद क्या गुजरती होगी इसके ख्याल से मनपर रोंगटे खड़े होते हैं। मैंने फिर से उसके धंधे का जिक्र किया सूरत रुलाई से डबडबाई बनाकर उसने कहा,

"आप मेरे पेशे का बारबार जिक्र करते हैं मालूम हैं कि आप उससे नफ़रत है। लेकिन मैं जब आप के पास आती हूँ तब आप को मुझ से नफ़रत नहीं होती?"

"मुझे क्यों नफ़रत हो? लेकिन मैं यह नहीं समझ सकता कि तुम इस पेशे को क्यों निभाती हो?"

"मुझे पैसे मिलते हैं।"

"याने तुम पैसे के लिए इस धन्धे में अटकी हो?"

"सारा संसार पैसे की कमाई के पीछे पड़ा है।"

"तुम दूसरा पेशा क्यों नहीं करती?"

"मैं भला, कौनसा दूसरा पेशा कर सकती हूँ? और इतने पैसे दूसरे पेशे में थोड़े ही मिलेंगे?"

"आखिर तुम्हें इतने पैसों की जरूरत किसलिए? मौज – धाज के लिए अच्छे कपड़े पहनने के लिए?"

"अच्छे कपड़े पहनकर ही हम अपने काम के लिए निकले, यह तो हमारे सेठजी का हुक्म है। सजने – धजने की मुझे कोई खास हवस नहीं।"

"तो फिर इन पैसों का हिसाब?"

"घरपर देती हूँ।"

"घरपर? यह क्यों?"

"क्यों पूछते हैं, यह सब?"

आवाज घूँटती थी। सदमे को गूँथकर वह कहने लगी,

"यह सब एक जाल है। मैं उसको बयान नहीं कर सकती। यह भी सही है कि घर पर तो पैसे देने चाहिए ही जिसके लिए मुझे कुछ न कुछ करना चाहिए, और इसीलिए अगर मैं इस धंधे को न करूँ तो......तो......; कुछ मत पूछिए मुझे।"

(शेष भाग पृष्ठ १४१ पर देखिए)

मराठी साहित्य की आधुनिक कविता के अग्रदूत

श्री केशवसुत, नव चित्रकार और आप



शाम हो रही है। कबीर ने वाणी को मुखरित करते हुए अपने शिष्य से कहा: "रे साधो, मैं तुम्हें हरी घास खानेवाले सिंहको दिखानेवाला हूँ। उसी समय नावों में से बहनेवाली नदियाँ दिखानेवाला हूँ!"

शिष्य कबीर की वाणी का मतलब समझ नहीं सका। तथापि कबीर का शिष्य होने के कारण वह इस तथ्य को ठीक तरह से ग्रहण कर सका कि: कबीर ने जो कुछ कहा है वह ठीक तरहसे समझ लेने के लिए मुझे अपनी परख करनी होगी। तब ही कहीं सम्भव हो सकेगा कि उस अविशिष्ट अनुभूति के पीछे काम करने वाला तर्क प्रवाह मैं ठीक तरह से नाप सकूँगा। कबीर जिस जीवन-दर्शन का परिचय करा देना चाहता है वह तब कहीं मैं समझूँगा।

कबीर की अनुभूति समझ लेने के लिए उस शिष्य ने यह आवश्यक माना कि मैं अन्तर्मुखी बन जाऊँ।

नवचित्रकारों (Modern Artist) के कुछ चित्र दीपावली के इस अंक में कहीं अन्यत्र (पृ. १३०-१३१) संकलित किए गए हैं। इन चित्रों को देखते समय सामान्य पाठकों व रसिकों कुछ प्रमाण में भ्रान्ति हो जाएगी। इस प्रकार के चित्र आजकल काफी प्रमाण में पाए जा रहे हैं। इनके लिए 'मॉडर्न आर्ट' संज्ञा का प्रयोग किया जाता है।

कबीर की उस उलटबाँसी का मतलब सीधे समझना दुश्वार बनता है। मन भ्रमित होता है। उलझन से मन मूढ़ बनता है। लगभग इसी प्रकार की स्थिति नवचित्रकारों की कलाकृतियों के बारे में होती है। लेकिन कबीर की साधना के बारे में किसी के मन में संदेह न न होने के कारण - कबीर की उलट बाँसियाँ सहानुभूति के साथ परखी जाती है, उनको समझ लिया जाता है। तथापि नवचित्रकारों की कलाकृतियाँ अवहेला की पात्र बनी हैं। यह कलाकृतियाँ कोई बेतुकापन, बेहुदापन है, इस प्रकार की रायों के लेबुल फौरन इन पर चिपकाएँ जाते हैं। दर असल यह प्रवृत्ति बड़ी दुःखकारी है।

लेकिन जमाना हमें कुछ अलग ही हिदायत देता है, जिसके मुताबिक इन नव चित्रकारों की चित्रकला की पार्श्वभूमि में काम करनेवाली अनुभूति को समवेदना सहित समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। क्यों कि नवचित्रकला यहाँ पर अपनी बुनियाद ठोस बनाती जा रही है।

कबीर के शिष्य की वह बात इसलिए प्रारम्भ में छेड़ी है कि, हमें अन्तर्मुखी हो कर चित्रकला के बारे में विचार करना होगा। और हमें विश्वास हैं कि ज्यों ही वैचारिक सहानुभूति के साथ इन चित्रकारों की नवचित्रकला के बारे में रसिक-गण विचार करना शुरू करेंगे त्यों ही, पागलपना, विचित्रता, बचपनां इनसे परा ऐसे अभिनव प्रयास का दर्शन रसिकों को अवश्य होगा।

नवचित्रकला का तात्पर्य है, चित्रकला क्षेत्र का एक नया-पन्थ, नई राह। चित्रकला का तात्पर्य है, चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त कला और कला का तात्पर्य जीवनाभिव्यक्ति से है। अभिव्यक्ति के अन्तर्गत जीवन के प्रतिपल पर संवेदित होनेवाली अनुभूतियों के अनगिनत सामञ्जस्यपूर्ण अथवा विरोधपूर्ण घटनाओं को गिनाया जाता है।

चूँकि चित्रकला मूलतः कला है इसलिए कला के अन्तर्गत जीवन में पाई जानेवाली अनन्त व अन्यान्य अनुभूतियाँ चित्रों के माध्यम के द्वारा अभिव्यक्त होंगी।

नव चित्रकारों की राय है कि: हमारी कला कृतियों के अन्तर्गत जीवन की यही अनन्त घटनाएँ अंकित की जाती हैं।

तथापि प्रश्न यह है कि यदि इनकी कला के द्वारा जीवन की अनुभूतियाँ ही बतलायी जा रही हैं, तो फिर वे ज्ञेय क्यों नहीं?

रसिकों का और साधारण जनमात्र का कहना है कि, इनकी कला के अन्तर्गत कुछ अपरिचित, तिलस्माती, मनुष्य लोक का नहीं परंतु किसी और लोक का अनदेखा, अनजाना और अरोचक रूप पाया जाता है। कला के प्रतिक भलें अपरिचित हों, परंतु यह अरोचकता क्यों? क्या यह वास्तविक परिस्थिति नहीं है?

नवचित्रकारों की राय है कि जिसे हमारे रसिक, अपरिचित, अज्ञेय व अरोचक कहते हैं, वह सरासर सर्व सामान्य भ्रान्ति है। हमारी कला जिन प्रतीकों को लेकर अपने को दर्शाती जा रही है उसे अवलोकित करने के लिए विशिष्ट प्रकार के दृष्टिकोन को 'बनाना' चाहिए। अथवा यों कहें कि, अब तक जिस प्रकार के 'रूप परिमाणों'

को आँखों में ढालकर हम सामने दिखाई देने वाले चित्रों की देखते थे, वह 'रूप परिमाण' बदलने होंगे।

यह 'परिमाण' किस प्रकार अपनाया जा सकेगा?

संसार की प्रत्येक वस्तुमात्र के दो रूप होते हैं। एक बाह्य अथवा शारीरिक अथवा जड़, पार्थिव रूप, और दूसरा आन्तरिक, अशरीरिणी, चेतन, अपार्थिव रूप।

जड़ रूप को हम देखते हैं, परन्तु, जड़ रूप 'किसी विशिष्ट प्रकार की भावभूमि' को ले कर देखनेवाले के मन में अपनी अलग प्रतिमा बनाता है। वस्तु का भावभूमि सहित प्रतिलिखित रूप ही 'चेतन, अपार्थिव, अशरीरिणी' इन शब्दों में बतलाया गया है। हम वस्तु के इस 'चेतन, अपार्थिव, अशरीरिणी,' रूप का संचय करना, इसको ही दूसरा नामकरण है, हम अपनी अनुभूतियाँ एकत्र करते जा रहे हैं। हमारे अथाह ज्ञान प्रवाह का प्रारम्भ यहीं से होता है। इस प्रकार अब यह सुस्पष्ट होता है कि वस्तु के दिखाई देनेवाले नहीं परन्तु 'परिणाम अंकित करनेवाले' 'आन्तरिक' रूप का अनुभूति के साथ माता-पुत्र सा सम्बन्ध होता है। अब जड़ रूप की जड़ स्थिति को यहाँ कोई 'विशेष' स्थान नहीं रहा।

यह अशरीरिकी रूप है इसे हम वस्तुका गुणात्मक रूप — 'Connotative Impression' मानते हैं। वस्तु के इस गुणात्मक रूप के अपने अपने विभिन्न प्रतीक होते हैं जो संस्कारोंपर अवलम्बित होते है।

हमने देखा है कि कला जीवन की अभिव्यक्ति है। अतः कला के अन्तर्गत जीवन की जो कोई अभिव्यक्ति होगी, इस का ही तात्पर्य यह कि — उस में प्रत्येक वस्तु मात्र के इन 'गुणात्मक रूपों का' ही संकलन अथवा संचय होगा।

नवचित्रकारों के द्वारा प्रस्तुत कला के अन्तर्गत जो प्रतीक दिखाई दे रहे हैं, वे सारे इसी वस्तुगत् के प्रतीकों के 'गुणात्मक रूप' मात्र हैं। 'गुणात्मक रूपों में सें' कौनसा गुण कलाकार को अधिक प्रभावित करेगा इस के बारे में निश्चित रूपसे कुछ भी कहा नहीं जाता है। वस्तु की शक्ति, आकार अथवा पार्श्वभूमि और विस्तार

अनुक्रमणिका





म्हैसूर की और अेक असामान्य कलाकृति

MK

और अन्य लेथ निर्मिति :

(१) "बॉम्बे" लेथ
(२) "कोल्हापूर" नं. १ व २ लेथ्स्
(३) "हरिहर" नं. १ व २ लेथ्स्
(४) "शिमोगा" व "भद्रावती" NR टाईप नं. १, २ व ३
(५) "पूना" नं. १ व २ लेथ्स्
(६) "हुबळी" नं. १ व २ लेथ्स्

किर्लोस्कर

टाईप RL लेथ १,२ व ३

दी म्हैसूर किर्लोस्कर लिमिटेड. हरिहर (भारत)

TOM & BAY

अनुक्रमणिका

इनमें से कोई एक अथवा सर्व एक साथ प्रभाव जमा सकेंगे, जो सर्वथैव कलाकार की, उस वस्तु के अवलोकन के अवसरपर की मानसिक स्थिति पर अवलम्बित होगा। मन के अनगिनत असंख्य तथा गहरे व सूक्ष्म व्यापार कभी प्रामाणिकता से आँके नहीं जाएँगे इसलिये कलाकार के इन प्रतीकों का कोई प्रमाणित शब्दकोश तैयार नहीं किया जा सकता। और अब मालूम होगा कि: चूँकि 'गुणात्मक रूप' को समझने की भाषा संपूर्णतः वैयक्तिक होने से उसको समझ लेना प्रारम्भ से ही एक जटिल बात बनती है। वस्तु के बाह्य स्वरूप का परिचय (Physical properties) लोकप्रिय रूप में परिचित होने से केवल जड़ रूपों को उनके अपने जड़ भावों के स्थान अंकित करने वाले चित्र देखने वालों की समझ में बड़ी जल्दी से आते हैं। परंतु 'गुणात्मक रूप' की कोई सर्वमान्य भाषा न होने से उसको समझ लेना मूलतः टेढ़ा बनता है।

नवचित्रकारों पर जो आरोप लगाए जाते हैं, उनमें 'दुर्बोधता' का भी आरोप है, और इसीलिए अबतक के विवेचन के आधार से कहा जा सकता है कि जिसे हम 'दुर्बोधता' कहते हैं, उसका कारण क्या है।

मूलतः कला के अन्तर्गत केवल जीवनानुभूति होने से प्रतीक चाहे अनेक, असंख्य क्यों न हों, परन्तु अनुभूतियों की संवेदनाएँ अधिकांशतः सार्वभौमिक होने से उनको यदि हम समझने का प्रयास करते हैं, तो वे समझ में आ सकती हैं। कला क्षेत्र का इतिहास इसका साक्षी है। यदि ऐसा न होता न भारतीय कलाओं का स्वागत विश्व के अन्य देश करते न विदेशी चेतना को हम भारतीय समझ सकते। हमारे समझ लेने के प्रवाह का माध्यम कोई न कोई प्रतीक होता है। नव चित्रकला के सारे प्रतीक वैयक्तिक होने से और देखने वाला अपने व्यक्तित्व को न भूलते हुए इन चित्रों को देखता जाता है, इसलिए नव-चित्रकारों को चित्रकला – अज्ञेय, दुर्बोध, तिलस्मात्ती, विचित्र और इसीलिये– सम्भ्रम पैदा करती है।

इस संभ्रम को मिटाने का एक मात्र मार्ग है कि देखनेवाला रसिक कबीर के शिष्य की भाँति अपने को परखे, याने अंतर्मुखी बनकर अनुभूतियों के प्रतीकों की खोज करना शुरू करें। मनुष्य मात्र जन्म जात कलाकार है क्यों कि उसका संपूर्ण जीवन मात्र अभिव्यक्ति का अविरत प्रवाह है, और इसीलिए यदि वह अपने 'रूपमानों' के परिमाणों को समझ लेने का प्रयास करेगा – व्यक्तित्व कि संकुचित परीधि को त्याग कर दूसरों के व्यक्तित्व को समझने का प्रयास करेगा – तो नवचित्रकारों की चित्रकला के प्रतीक प्रत्येक रसिक के लिए ज्ञेय, सरल, सुगम व बोध्य बनेंगे। परन्तु मूलतः रसिकों को अपने को समझ लेने का कार्य करना होगा, यह सही।

सर्व सामान्य रसिकों की दृष्टि से नवचित्रकारों की कला का रस ग्रहण करना और भी अधिक सुगम बनें, इसलिए हम ने मराठी साहित्यकी नवीन कविता के अग्रदूत श्री केशवसुत जी–जिन्होंने पिछले ५० सालों की आधुनिक व्यक्तिवादी कविता की धारा को जन्म दिया है – की **'कवि'** नामक कविता चुनी और नवचित्र कला क्षेत्र के अग्रिम श्रेणी के पाँच प्रमुख कलाकारों को दी और उनसे विनन्ति की कि वे अपनी 'भाषा' में इस कविता को अंकित करें। 'दीपावली–१९५५ में संकलित किए हुए नव चित्र (पृ. १३१ – १३२) इसी विशिष्ट हेतु को ले कर रसिकों के सम्मुख प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

इन चित्रों के साथ नवचित्रकारों ने चित्र व कविता सम्बन्धि अपने मन्तव्य को अभिव्यक्त किया है, उसे भी देखे :

श्री एस्. ए. गाडे

"श्री केशव सुत जी की कविता के 'प्रतिचित्र रूप' में मैं ने अपना चित्र तैयार नहीं किया है। तथापि, सामान्य विषय वस्तु में भी मार्मिक आशय ढूँढने के कार्य में मग्न तथा उस में से ही मौलिक सौंदर्यानुभूति लेने की गुंजाइश रखने की कामना में व्यग्र और अपने इस प्रयास को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्तीकरण की क्रिया में कार्यव्यस्त कलाकार, कवि कहलाया जाता है। कवि की भाँति अपने क्षेत्र में रंग व रेखा इनकी सहायता से चित्रकार भी वही कार्य करता रहता है। कविता में भी इसी आशय को अभिव्यक्त किया है।

"मिट्टी के टेढ़े – मेढ़े और टूटे – फूटे खण्डहर घरों और विराट् और असीम सौन्दर्य से परिपुष्ट निसर्ग के रूपों में से मेरा चित्र निर्माण हुआ है।

"रंग व रेखा इनके पारस्परिक सम्बंध के कारण निर्माण होनेवाली व्याप्ति–सापेक्षता

क वि

(श्री केशव सुत जी की कविता का भावानुवाद)

वह
कल्पना सुमनोंसे जीवनपथ सजाता है!
इससे रमणीय व अद्भुत कृति कहाँ
मिलेगी ?
वह जिस मिट्टीपर पग बढाता है,
वह कनकाभ बनती है;
इसे कोई भ्रान्ति न कहे !

उसकी गम्भीर वाणी में
वसुधा की अनन्त कामनाएँ
झंकृत होती हैं।
उसके केवल दृष्टिपात से
सुर लोक की प्रभा
धरती को प्लावित करती है।
उसके स्वर से,
गंधर्व सुस्वरों की रचना
करते हैं।

स्वकरों में निर्हेतुकता से
लेखनी धारते ही –
संपूर्ण सौंदर्य लोक उसकी
प्रार्थना करता है :
'हमें स्वरूप दो ...
हमें मण्डन – भूषण दो ...
दे दो देवता रूपायन !'

उसका श्वासोच्छ्वास !
आश्चर्य है;
जीवन संहारक वायु को प्राशन
करता है,
जीवन विकासकारी वायु को
बाहर बिखेरता है !
उसके होने से सुर गण
धरा पर आगमन करते हैं !
और
न होने से
स्वर्ग-पृथ्वी उसको पाने को
चौदहों कोने छानते हैं।

◆ ◆





में से (Space relations) कलाकार के उपरोक्त कार्य को अंकित करने का यह सचाई से भरा प्रयत्न है। रसिक जिस प्रतिमा को देख रहे हैं वह मेरी अपनी वैयक्तिक अनुभूति है। आत्मानुभूति यही इस प्रतिमा की नींव है।

"उम्मीद यही है कि रसिकों को मेरी अनुभूति की सचाई छूएँ। यह अनुभूति संवेदना मूलगामी दृष्टि से सौंदर्य दायी होती है, रसिकों को इसी 'Acsthetic Ecstasy' का दर्शन हो जाएँ!"

श्री मोहन सामन्त

"मैं मानता हूँ कि चित्रकला चित्रकार की वैयक्तिक अनुभूति को निवेदित करने के लिए निर्माण हुई है।

"अनुभूतियाँ कई हैं तथापि उन में से कुछेक जीवन चक्र की उलझन से मन को भ्रमित करती है, और कुछेक किञ्चित् काल मात्र की अवधि में इन बुनियादी उलझनों को सुलझाती भी है।

"मेरी राय है कि श्री केशव सुत जी ने 'कलाकार' के नाते अनुभूत की हुई 'सृजनशील' अनुभूति अपनी कविता में शब्दित की है। जीवन में ऐसे क्षण पल भर ही रह सकते हैं, उन में से यहाँ एक का ब्यौरा है।

"जीवन की संश्लिष्ट गुत्थियाँ मुझे बार बार निमंत्रण देती हैं कि उन्हें सुलझाऊँ। मैं कौन हूँ, कैसे हूँ? मेरा यह जीवन क्यों कर है? आदि प्रश्न मुझे मेरी प्राथमिक संवेदना काल

अनुक्रमणिका

से सदा अन्तर्मुखी बना कर विचार करने के लिए बाध्य बनाते आए हैं। इसीलिए चिन्ता की यात्रा प्रारम्भ हुई और मैं ने ऐसे कुछ क्षण अनुभूत किए हैं कि जब मैं अपने आपको भूल गया हूँ। तब अस्थिर भावोंको स्थिरता मिलती है। मन में अपूर्व शान्ति विराजमान होती है। अपना संपूर्ण अस्तित्व मैं भूल गया हूँ। इन क्षणों का वर्णन 'समाधि' अथवा 'मुक्ति' इनके जैसे समानार्थी शब्दों में किया जा सकता है। मैं ने इन्हीं क्षणों को अपने चित्रों का विषय बनाया है।

"इसीलिए मैं चित्रकला को साधना मात्र मानता हूँ, जीवन की संवदेना की, जीवन चेतना की; संपूर्ण जीवन प्रवाह इसकी इसकी परिधि में आबद्ध है। केशव सुत जी ने कलाकार मात्र वर्ग के इसी साधना प्रवास का विवरण अपनी कविता में किया है। मैं इस विवरण से प्रभावित हुआ। और मैं ने अपनी अनुभूति को रंग व व्याप्ति की सहायता से आलेखित किया। बाद में सृजनशील कलाकार का प्रतीक और उसकी कला के कारण लौकिक जीवन में होने वाले फेरफार, इन को मैं ने विभिन्न आकृतियों के माध्यम से दिखाना शुरू किया।

"कोई मुझे यह न पूछे कि विशिष्ट प्रकार के आकार अथवा प्रतीक अथवा रंग ही मैं ने क्यों चुने? प्रश्न को कोई उत्तर नहीं है, क्यों कि वह सब अपने आप सूझता गया है। हो सकता है, कोई मनोवैज्ञानिक इनकी सहायता से कुछ और ही मतलब बतला भी सकेगा; लेकिन कम से कम मैं इन प्रतीकों के मूल के बारे में अज्ञेय हूँ! मुझे नहीं, तो अपने आत्मचरित्र को इसके साथ जोड़ना पडेगा। सच कहे, तो वैसे इतनी गहराई में उतर कर बाल की खाल निकालने की कोई ज़रूरत नहीं है।

"कला–रसिक को चाहिए कि वह अपनी अनुभूतियाँ जगा कर मेरे चित्र को देखे।"



श्री गायतोण्डे

"मैं किसी कहानी अथवा कल्पना का 'प्रतिचित्र' बना कर अपना चित्र नहीं बनाता। मैं चित्रकलामात्र को संपूर्ण स्वायत्त अनुभूति मानता हूँ।

"और इसीलिए मैं ने कविता को पढ कर उसके मतलब को बहुक्रम चित्र में चित्रित नहीं किया है। कला सत्योन्मुखी सौंदर्य है। कविता यह स्वयं Asthetic Experience है, जैसे चित्रकला, व अन्य शेष कलाएँ! चित्र का माध्यम हैं रंग व रेखाएँ। और इसीलिए न कविता को रंगों में ढूँढिए न रंगों को कविता पर लादिए।

"कविता व चित्र इन दोनों में से एक ही प्रकार की सौन्दर्यानुभूति अनुभूत होती हैं, अगर यह किसी की राय हो, तो मैं वह मानूँगा।

"और इसी लिए मेरा चित्र श्री केशवसुत जी कविता का केवल स्पष्टीकरण नहीं हैं।"



श्री शंकर पलशीकर

"चित्रकार किसी विशिष्ट पद्धति से चित्र को अंकित करता है, देशकाल परिस्थिति से अनुस्यूत कलाकार की संवेदना कभी रंग व रेखाओं के माध्यम से निवेदित होती है। इसलिए रंग व रेखाओं का दृश्य रूप विशिष्ट प्रकार का क्यों है, यह खोज़ बेकार है।

"और इसीलिए श्री केशवसुतजी की कविता पढ़ते ही मेरे हाथों में जो कोई साधन थे, उनकी सहायतासे मैं ने चित्रकृति तैयार करना शुरू किया।

"परन्तु चित्रकृति करनेवाली आत्मा का उस कविता की ओर देखने का जो कोई दृष्टिकोण होगा, वह मैं महत्त्वपूर्ण मानता हूँ, और इसीलिए मैं अपना दृष्टिकोण समझाऊँगा:

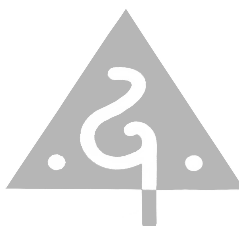
"हे सृष्टि, व्यर्थ में तुम गर्व न करो! तुम्हारा सारा वैभव व सौंदर्य केवल भ्रम है, माया है। तुम बूढी बनी हो। और इसीलिए मुझे बार बार कल्पनाओं के ताबूत बनाकर तुम्हें शोभायमान करना पड़ता है। संसार को जो सौन्दर्य दिखाई देता है, वह दर असल मैं ने निर्माण किया हुआ सौन्दर्य है। इसी सौन्दर्य को देखकर संसार तुम्हें सुषमावती कहता है।

"तुम्हारे सूखे सौन्दर्य को मुझे पानी बरसाकर पनपाना पड़ता है, आकाश लोक का मण्डल निर्माण कर मैं ने तुम्हें सौन्दर्य शालिनी बनाया है! इसी रूप को देखकर भोला भाला इन्सान तुम्हारे लिए गीत गाता भटकता है!

"वृद्धा! तुम्हारे दिलबहलाव के लिए यह विशाल परिधिहीन व्योम अनन्त काल से संगीत को मुखरित करता है। इस व्योम को प्रतिपल नवीन गीतों की सर्जना करते हुए तुम्हारे चैतन्य को बनाए रखना पड़ता है। सूर्य की धधकती धूप अब तुम्हारे लिए असह्य है। इसलिए मेघों की छाया बनाना आवश्यक बना है। तुम्हारी कुरूपता और वृद्धता बार बार रो पड़ती है, और तुम्हें शान्त करने के लिए मुझे कई बार नवीन अलंकारों को तैयार करना पड़ता है। उपरान्तही तुम्हारे चेहरे पर संतोष की स्मित रेखा खिल पडती है। जरठत्व के ये सब चिह्न तब किञ्चित काल में लुप्त बनते हैं। तुम्हारी तरुणाई की यह किञ्चित् झुठी आभा मात्र होती है।

"तुम जिन्दा रहो इसलिए मैं ही श्वासोश्वास करता हूँ। केवल तुम्हारे लिए उपयोगी हो ऐसी उसासें मैं छोड़ता हूँ और





अनुक्रमणिका

इस प्रकार तुम्हारे जीवन की हरियाली को रूप मिलता है।

"तुम्हारे इस रूप वैभव को देख कर प्रत्यक्ष देवता भी तुम पर प्रसन्न हो कर तुम्हारे पीछे यहाँ आये हैं।

"सृष्टि! तुम विश्राम करो! फूल, फल, बन–वल्लरी, नीला आकाश, नीला विशाल महासागर, यह सब केवल तुम्हारे मनोरंजन के लिए हैं। तुम्हारी शोभा बढाने के लिए उनका अस्तित्व है। जलचर मधुर गीत गाकर तुम्हें रिझाएँगी। इन सारे प्रतीकों का एक मात्र अर्थ, मतितार्थ, आशय है: इस दूसरे छोर का पीला भाग तुम्हें संपूर्ण तरुणाई और धौलाई दिलाता जाएगा। वही तुम्हारी निर्मिति के पीछे छिपे मतलब को समझाता है – जो न कवि, न चित्रकार, न कलाकार है लेकिन 'विश्वकर्मा है'।"

◆ ◆

श्री लक्ष्मण पै

"श्री केशव सुत जी ने अपनी कविता में वर्णित किया हुआ कवि इस संज्ञा का तात्पर्य केवल 'शब्द लिपि' लिखने वाला 'कलम-कारीगर' है, इसे मैं नहीं मानना चाहता! चैतन्य के विशाल व प्रबल प्रवाह के रूप में कवि इस प्रतीक का परिचय देना मैं अधिक उचित मानता हूँ। मैं मानता हूँ कि यह नया परिचय अधिक विस्तृत हैं; सच ही है, मैं ने जानबूझ कर यह विस्तृत रूप लिया है क्यों कि इस 'परिचय' के अन्तर्गत संपूर्ण कला जगत् के कलाकार एवं चिन्ता के क्षेत्र के मनीषि चिन्तक स्थान पा सकते हैं। साहित्य क्षेत्र में ऐसे कलाकारों की संख्या बड़ी ही विरला होगी जो अपनी कलाकृतियों के अन्तर्गत संपूर्ण कला विश्व की नब्जों के प्रदर्शित करते हैं।

"कवि, कविता पढ़ने के बाद मैं ने अपनी शैली से इस चित्र को अंकित किया है। इस शैली विशेष को सर्वसामान्य लोग 'मॉडर्न आर्ट' के नाम से पहचानते हैं। और 'मॉडर्न आर्ट' याने समझ में न आनेवाला सिरपच्ची करनेवाला उलझनों का 'झमेला' इस प्रकार की भी 'लोकप्रिय रायें' 'मॉडर्न आर्ट' के बारे में सुनाई देती हैं।

"मैं जो विवेचन प्रस्तुत कर रहा हूँ उस के पीछे भले मॉडर्न आर्ट को समझाने का मक़सद न रहा हो, तो भी मैं ने निकाले हुए चित्र के पीछे काम करने वाले दृष्टिकोन का परिचय देना अवश्य ही है। रसिकों के सम्मुख श्री केशव सुत जी की कविता है, और इसलिए कविता के भावार्थ को देखते हुए, चित्र के प्रति अपने दृष्टिकोन को समझाना आसान बना है।

"मैं ने अपने को कवि माना है। अपने रूप को सुस्पष्ट करने के लिए मैं इस चित्र में 'मेघ' बना हूँ। चैतन्य का अधिक से अधिक सुस्पष्ट रूप निवेदित करने के लिए मुझे 'मेघ' का रूप बड़ा उपयोगी चँचा।

"अभी अभी मेरे एक मित्र ने इस चित्र को देखकर बातचीत के दौरान में मुझ से पूछा कि,

"क्यों भला, बादल का ही रूप चुनने में आप का क्या हेतु है?"

"साहब, मुझे बादल का रूप ठीक जँचा!"

"लेकिन क्यों?"

"इस प्रकार के प्रश्नों को हम चित्रकार लोगों की दुनियाँ में कोई उत्तर नहीं मिलेंगे। हर एक कलाकार के कला–प्रतीक उसके अपने वैयक्तिक सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक संस्कारों पर अवलंबित होते हैं। 'मेघ' के रूप का अन्वेषण करना शुरू करूँ तो मेरी 'चित्रकारी' की लाश गिरेगी और मैं 'मनोवैज्ञानिक' बनूँगा!

मैं ने इस मेघ को श्वेत रंग में चित्रित किया है। श्वेत रंग में कलाकार की भौतिक सृजनशील प्रवृत्ति का चिह्न माना जाए। दरअसल श्री केशवसुत जी ने कलाकार के इसी सृजन सामर्थ्य का परिचय अपनी कविता में दिया है। फूल की कलम से वह अपना सृजन कर रहा है। यह कार्य सहज सरल, निर्हेतुक होता है। आराम से काम चालू है' इसलिए उसने एक हाथ का आधार लिया है 'विश्राम' की स्थिति को वह अनुभव कर रहा है।

चित्र में पाए जाने वाले अन्यान्य प्रतीकों के बारे में जरा सोचें। कवि = कलाकार = चैतन्य का प्रवाह इस रूपक को हमनें पहले ही तय किया है।

चैतन्य की स्थिति का 'निश्चित' कलाकृति की स्थिति तक का प्रवास व स्थित्यंतर कैसे होता है, इसका अनुमान मैं ने चित्र के अन्य शेष प्रतीकों के द्वारा दिखाया है।

"चैतन्य ज्यों ही लौकिक जीवन के साथ अनुबन्धित होता है त्यों ही केवल उसके सम्पर्क मात्र से व्यावहारिक जीवन में उथल पुथल मचना शुरू होती है। आमूलाग्र परिवर्तन शुरू होता है। चैतन्य अखण्ड व अक्षय्यी है। और इसीलिए चैतन्य प्रवाह के केवल सम्पर्क मात्र से बने हुए लौकिक उपादानों के स्वरूप चित्र में अन्यान्य स्थानों पर दिखाए हैं।

"इसी चैतन्य के बदौलत स्वर्ग, तारा, नक्षत्र, आकाश–मण्डल आदि हैं। यद्यपि तारा नक्षत्र लोक चर्मचक्षुओं को ज्ञेय हैं, परन्तु इनके पीछे अज्ञेय जीवन का आशय कार्यरत है। जीवन प्रवाह के उद्देश्य के बारे में विश्व का धर्म व विज्ञान अनादि काल से खोज कर रहा है। उसी के बदौलत ज्ञान–विज्ञान की निर्मिति हुई। फिर भी कलाकार को सन्तोष की साँस मयस्सर नहीं क्यों कि उसकी उलझन अब भी 'मिटी नहीं' है।

"जीवन की स्थायी शांति की खोज करने के लिए अथवा अविरत अशांति का निर्मूलन करने के लिए प्रत्येक सजीव व चेतन मन कार्यरत होता है! इस प्रकार के प्रयत्न के प्रयास में कलाकार को चंद्र, सूर्य, कारण नक्षत्र लोक प्राप्त हुए हैं। ये प्रतीक जड़, अचेतन न हो कर, संपूर्ण जीवन ज्ञेयता के पथ पर प्राप्त हुए प्रारम्भिक पुरस्कार हैं। मूल की ओर शीघ्र गति धारण करनी है।"

◆ ◆

साथी चित्रकार मित्रों के विवेचन और उन के चित्र देखने के बाद चित्रकारों की ओर से **श्री. गाडे** जी ने नव चित्रकला के बारे में विचारों का जो संकलन किया है वह निम्नानुसार हैं :

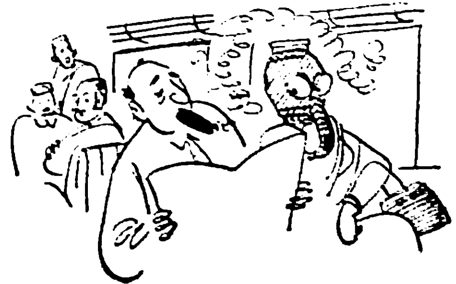
सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य भावना (Aesthetic Emotion) को जगाने वाली (अहं को भूलाने वाली) कलाकृतियों का रसपरिपोष केवल रंग-रेखा-रचना (Design) में से होने की समानता के कारण प्राचीन व अर्वाचीन चित्रों की रस ग्रहण पद्धति एक ही है। तथापि प्राचीन चित्रकला पद्धति में चित्रों की शैली में 'हुबहूँ छबि' अंकित करने की 'प्रति लेखन' पद्धति थी जिस के कारण चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला सौन्दर्यानन्द गौण बना और चित्र की विषय वस्तु की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। इसी के कारण सामान्य रसिक मात्र को चित्र में प्रस्तुत विषय वस्तु किस हद तक वास्तविकता का पालन करती हैं, इसकी छान बीन करने की आदत लगी है। इसी के कारण सौन्दर्यानन्द को निवेदित करने वाले कला के सच्चे मूल्य व उसके साथ सम्बन्धित रसपरिपोष पद्धतियाँ इनको सर्वसामान्य रसिक मात्र लगभग भूल ही गया। मानों कला की परख करने के सच्चे व तर्कनिष्ठ मूल्यों की अवहेला की गयी। नव चित्रकला में पाया जानेवाला 'सौन्दर्यानन्द' पाने के लिए अगर कोई बाधा उपस्थित हुई तो यही कि इन सच्चे मूल्यों को साधारण रसिकमात्र भूल गया है। अब वह अवसर आया है कि 'सौन्दर्यानन्द, को ज्ञेय बनाने के सच्चे मूल्यों की हम खोज करें।

सौंदर्यवादी भावनाओं को प्रेरित करनेवाली रंगरेखाओं की रचनाकृति 'चित्र' इस संज्ञा के द्वारा पहचानी जाती है। इसीलिए हम कहें कि चित्रकला स्वयं एक संपूर्ण मौलिक अनुभूति है। हो सकता है कि रंग-रेखाओं की रचना में अनुबद्ध अनुभूति वास्तविकता को लिए हुए होगी अथवा वास्तविकता हीन होगी। जो अनुभूति चित्र में प्रस्तुत होगी, उसे निर्माण करने के लिए एकाध घटना, अथवा एकाध दृश्य कारण बना होगा। लेकिन यह घटनाएँ अथवा दृश्य महत्त्व के न हो कर इन प्रसंगों के द्वारा अभिप्रेत होने वाला जीवन–दर्शन ही महत्त्व का है। इस प्रकार की 'मार्मिक' अनुभूतियों के कारण ही 'चित्र–निर्मिति' की प्रकिया शुरू होती है। और अन्त में चित्र का सृजन होता है। चित्र में आनेवाले प्रतीकों के साथ वास्तविक जीवन में अवलोकित की हुई वस्तुओं का सम्बन्ध होगा ही यह कहना मुश्किल है। इसीलिए चित्र कला की दृष्टि से परख करते समय उसका शीर्षक और उसकी रचना इनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाएँ। वस्तुतः इनके द्वारा ही चित्रकार की मनोभूमि पर अंकित हुआ चित्र ही अन्त में चित्र–फलक पर अंकित होता है। हो सकता है, खींचे हुए चित्रों में कुछ परिचित रूप हों, परन्तु चित्रकार की भावना का परिचय चित्र की रंग–रेखाएँ देती हैं वास्तविक विषय–वस्तु नहीं! इसीलिए यह आवश्यक है चित्रकला प्रेमियों को इन रंग व रेखाओं के माध्यम में से कला का आनन्द उठाने की प्रेरणा दी जाएँ।

एक ही काव्य कल्पना विभिन्न प्रवृत्तियों व प्रकृतियों के चित्रकारों ने विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियात्मक अनुभूतियाँ निर्माण करेगी। प्रत्येककलाकार की आन्तर्दृष्टि विभिन्नताओं को लिए हुए हुए हैं, इसलिए श्री केशवसुत जी की कविता इन चित्रों के द्वारा सुस्पष्ट बनेगी। चित्रकार साथियों ने अपनी अपनी विचार प्रक्रियाओं को यहाँ पर अंकित किया हैं। मनोभूमि पर अंकित चित्र की प्रतिमाएँ प्रत्येक चित्रकार को नित 'नवीन आकार' अथवा रंग 'रचना' अथवा 'व्याप्ति सापेक्षता' निर्माण करने के लिए उकसाती है। तथापि यदि चित्रकार की बात सोचनी है तो चित्र–रसिक चित्र रूप में प्राप्त होनेवाले अन्तिम रूप के बारे में ही अधिक ध्यान दें! क्यों कि इसी के द्वारा चित्रकार का कल्पित सौन्दर्यानुभव अभिव्यक्त होता है, और रसिक का सम्बन्ध इसी से होता है।

चित्रकार की कलाकृति देखते समय होनेवाली प्रतिक्रियाएँ प्रत्येक रसिक की अपनी वैयक्तिक मानसिक व बौद्धिक योग्यतापर आधारित ग्रहणशक्ति पर ही अवलम्बित होगी।

◆ ◆









'नयनों की चपल
दृष्टि !
स्फुरित अधरों का
वाणीहीन
आह्वान !
अनावृत् देह पर
लगी प्रलुब्ध
आँखें !'
सेनापती —
क्या फँसोगे
इस जाल में ?

लिलामयी रूपसी तन्वी ।

खंजन नयनों की चपल दृष्टि, पीवर वक्ष का संयत असंयम, लास्य चपल ललित गमन भंगिमा, मिस्ट कंठ की हास्य ध्वनि, छद्म–कोप कमनीय भ्रुभंगिमा, पत्थर को भी विचलित कर देती है ।

कठोर हृदय सेनापति विचलित हो गये । अस्पताल की यह नर्स जब नजदीक आती है तो उनके सर्वांग में विद्युत सिहरण वह जाती है । युद्ध में सामान्य आहत हो कर वे अस्पताल में आये थे । युद्ध का घाव तो भर गया, लेकिन अब नये घाव से जर्जरित हैं । संचरमान यह शिखा उनके अन्तर में जो आग जला रही है, उसके उत्ताप से वे पागल जैसे हो रहे हैं ।

कई बहाने वह नजदीक आती हैं, लगता है अब पकड़ में आई, लेकिन सरक जाती है ! स्फुरित अधरां की वाणीहीन दुर्बोध्य आकुति !

अब तो समय नहीं रहा, कल ही अस्पताल से चला जाना होगा । आगामी दो दिनो में सेनापति को शिविर में पहुँचना पड़ेगा । सेनापति ने वातायन से बाहर की ओर देखा । गंभीर रात्रि के घने अंधःकार को विभ्नित करके कहीं कही रोशनी जल रही है । बीच – बीच में आंहत सैनिकों का आर्तस्वर सुनाई पड़ता है ! हृदय के भीतर तीव्र तीक्ष्ण वासना सारे अन्तःस्थल को उद्वेलित कर रही है ।

नर्स ने भीतर प्रवेश किया ।

सेनापति का भोजन ले कर आई है ।

सेनापति निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे ।

फिर बोले, " कल ही मुझे जाना पड़ रहा है –– "

उन्हें लगा, मानों नर्स के चपल नयनों में वेदना की छाया उतर रही है । एक दीर्घ श्वास को हंसी में बदलते हुए नर्स ने कहा,

" जानती हूँ। "

" क्या जानती हो ? असली बात जानती हो ? "

चकित् दृष्टि से एकबार देख कर आनत – नयनों से कॉफी में दूध मिलाने लगी ।

कुछ देर चुप रह कर सेनापति ने पूछा, " मेरी याद जब आयेगी तो तुम्हें कष्ट होगा ? "

" यह बात तो मुझसे आप ही अच्छी तरह समझ सकते हैं — "

छोटी टेबुल पर कॉफी आदि रख कर उसे सेनापति के पास सरका कर वह द्रुत चली गई ।

" सुनो — "

वह पुनः आई ।

" .... "

अन्त में सेनापति ने बात कह ही डाली ।

अनुक्रमणिका

" मेरे साथ तुम चलोगी ? "

" कहाँ ? "

" मेरे कैम्प में — "

" क्यों ? "

नर्स की आँखें चंचल हो उठीं, अधर काँपने लगे। सेनापति ने कहा, " क्यों, क्या तुम नहीं जानती ? चलो, कम से कम एक रात के लिये ही सही -- "

" नौकरी छोड़कर कैसे जाऊँ ? "

" छुट्टी ले लो — "

" सेनापति के शिविर में नर्स कौन से बहाने जायेगी ? "

" पुरुष के छद्म-भेष में आओ, कोई नहीं पहचान सकेगा -- "

नर्स कुछ देर चुप रही। ऐसा लग रहा था मानों एक आनन्दोच्छ्वास को वह प्राणार्पण दाबने की कोशिश कर रही है।

बोली, " छुट्टी कैसे मिलेगी ? "

" इसकी व्यवस्था मैं कर दूँगा। "

● ●

दो दिन बाद !

सेनापति का शिविर। चारों ओर गंभीर रात्रि स्तब्धता फैलाये हुए है। द्वार की ओर देखते हुए सेनापति अधीर आग्रह से प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पुरूष के भेष में नर्स ने प्रवेश किया।

सेनापति उठ कर खड़े हो गये।

नर्स हँसकर बैठ गयी।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे, अत्यन्त तीव्र मदिर नीरवता छायी थी। दोनों एक दूसरे की ओर अपलक दृष्टि से देख रहे थे। रात्रि का अंधःकार घना हो आया। एकाएक सेनापति ने मौन तोड़ते हुए कहा, " चलो पास के कमरे में चलो — "

नर्स उठी नहीं, मधुर भावसे हँसती हुई बैठी रही।

" चलो, उस कमरे में चलें — "

नर्स फिर भी नहीं उठी।

" उठती क्यों नहीं हो ? क्या चाहती हो ? "

" मैं जो चाहूँगी दीजिएगा ? "

" अवश्य दूँगा ! "

नर्स के अकम्पायमान अधरों से हँसी झरने लगी ! सेनापति ने फिर पूछा, " क्या चाहती हो ? "

" कुछ भी नहीं ! मैं सिर्फ़ यही जानना चाहती हूँ कि आप बड़े बड़े युद्ध कैसे जीत लेते हैं ? "

" कौशल तो एक नहीं है, जो मैं तुम्हें एक ही शब्द में कह सकूँ ? "

" सुना है, कुछ दिनों में आप फिर से शत्रुओं को आक्रमण करनेवाले हैं ? उसका क्या कौशल है ? "

" अर्थात युद्ध का ' प्लान ' तुम जानना चाहती हो ? "

" हाँ ! "

नर्स ने अपलक दृष्टि से सेनापति की ओर देखा ! सेनापति वज्राहत् से बैठे रहे। तो यह मायाविनी गुप्तचर है !

" युद्ध का ' प्लान ' ले कर तुम क्या करोगी ? "

अविचलित कण्ठ से नर्स ने कहा, " कुछ भी नहीं; सिर्फ एक कुतूहल है। "

" युद्ध का ' प्लान ' कभी किसी से नहीं कहता हूँ, मना है। "

" परपुरुष के शयन कक्ष में भी नहीं जाया करती हूँ. शास्त्रों ने मना किया है — "

उसकी काली आँखें कौतुक से नाचने लगीं।

सेनापति का मुखभाव क्रमशः कठोर हो गया। निर्निमेष दृष्टि से थोड़ी देर देख कर उन्होंने पूछा, " युद्ध का ' प्लान ' न कहने पर तुम नहीं जाओगी ? "

अपना कोट खोलकर दीवाल की एक पेग पर लटकाते हुए, हँसती हुई नर्स ने कहा, —" नहीं — "

नर्स के नाति-आवृत् देह की ओर सेनापति प्रलुब्ध दृष्टि से देखते रहे।

उसका यौवन खिल रहा है, अधरों पर मृदु हँसी, आँखें आवेशमय है !

" यदि बल-प्रयोग करूँ ? "

" मै चिल्लाऊँगी। माननीय सेनापति के लिये यह सम्मान जनक न होगा — "

सेनापति का चेहरा और भी कठोर हो गया।

भ्रुसंकुचित कर के और भी थोड़ी देर वे स्तब्ध बैठे रहे।

फिर बोले, " अच्छा, देखो — "

आलमारी से एक नक्शा निकाल कर नर्स के हाथों में दे दिया। वह आग्रह से नक्शा देखने लगी।

" अब चलो — "

"आप चलिये, मैं अभी आ रही हूँ। मुझे एकबार 'बाथ-रूम' में जाना होगा। 'बाथ-रूम' किधर है?"

'बाथ-रूम' दिखाकर सेनापति शयनगृह में चले गये। उनके जाते ही नर्स ने टेबुलपर से कागज़ उठा कर उसमें कुछ लिखा।

लिखना शेष होने पर वह 'बाथ-रूम' में गई और वहाँ से निकल कर सेनापति के शयनगृह में चली गई।

चारों ओर निस्तब्धता छायी हुई थी।

● ●

आध घंटे बाद।

सेनापति शयन गृह से बाहर निकल आये।

विवस्त्र-वासा नर्स भी बाहर आई।

सेनापति का चेहरा पत्थर जैसा कठोर हो रहा था। नर्स मृदु हँस कर कुछ कहने जा रही थी किन्तु उसी क्षण सेनापति की पिस्तौल गर्ज्जन कर उठी। नर्स का मस्तक विचूर्णित हो गया।

दाँतों को घिस कर सेनापति ने कहा, "घृणित गुप्तचर कहीं की!"

नर्स का रक्ताक्त मृत देह धरती पर पड़ा था उसकी ओर देखकर सेनापति निस्तब्ध बैठे रहे। एकाएक टेबुल पर रखी एक चिठ्ठीपर उनकी नजर पडी।

उस में लिखा था:—

प्रिय सेनापति जी,

मैं पकड़ी गई हूँ। इसके लिये शायद मुझे मृत्यु से आलिंगन करना पड़े। आपके हाथों मरने में मुझे आपत्ति नहीं है। मृत्यु को कौन टाल सकता है? आपके हाथों ही अपने प्राण विसर्जन कर रही हूँ, यह मेरा परम सौभाग्य है।

एक छोटीसी प्रार्थना करती हूँ: शत्रुपक्ष के सेनापति से यह प्रार्थना मैं न करती, लेकिन आप से मैंने सचमुच प्रेम किया था। उसी प्रेम की श्रद्धा से मेरी यह छोटीसी प्रार्थना है। मेरा मृत देह मेरे स्वदेश भेज दीजियेगा। आप सेनापति हैं, चाहें तो यह कर सकते हैं। यही मेरा अन्तिम अनुरोध है।

आपकी — *क्षणसंगिनी*

● ●

नर्स का मृत देह उसके स्वदेश में पहुँच गया।

उसके पहले एक संवाद भी पहुँचा चुका था।

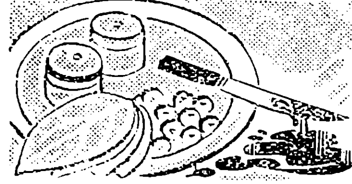
जीवित नर्स ने ही यह संवाद भेजा था — "मेरा शव शायद कोई गुप्त राज़ लेकर आयेगा। ढूंढकर देखना —"

'बाथ-रूम' में जो कागज नर्स ने गलाधःकरण किया था, शव व्यवच्छेदागार में उसके पेट को चिर कर वह निकाला गया।

उसमें युद्ध का 'प्लान' लिखा था।

● ●

रूपांतरकार — *राधेश्याम पुरोहित*



पान खाओगे — ?

दो मित्र थे; एक दूसरे से बेहद प्यार करते थे। दोनों के शरीर भले अलग हों, परन्तु मन एक ही थे। उनमें से एक विवाहित था और दूसरा कुँवारा था।

एक दिन की बात है, जब यह अनब्याहा मित्र अपने विवाहित मित्र के घर जाता है। विवाहित मित्र किसी दूसरे गाँव चला गया था, परन्तु पति के इस मित्र की आवभगत तो करनी ही चाहिए इसलिए पत्नी ने इस कुँवारे मित्र का बड़ी लगन से स्वागत किया। रात हो चुकी। कुँआरा मित्र अपने विवाहित मित्र के घर पर ही ठहरा। मित्र की पत्नी घर में अकेली है यह मालूम होने के कारण, उसके मन में कुछ खलल पैदा हुआ, और उसने अपनी वासना प्रकट की:

"आज की रात तुम मेरी बन आओ!"

यह सुनकर स्त्री को बडा दुःख हुआ। लेकिन उसने इस पुरुष को बिल्कुल कोरा जवाब नहीं दिया। वह सोचने लगी कि उसकी माँग अपने घर के आतिथ्य का एक भाग ही है, और इसीलिए मन न चाहते हुए भी उसने अनमने मन से अपने तन को उसे देना मान्य किया।

मित्र, स्त्री के रंगविलास शयनागार में प्रविष्ट हुआ और वहाँ उस स्त्री की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ ही समय के भीतर वह स्त्री अपनो को शृङ्गारित करते हुए उस शयनागार में प्रविष्ट हुई। अपनी अनीतिपूर्ण वासना को संतुष्ट करने का विकट साहस यह स्त्री कर रही है, यह देख कर कुँवारे पुरुष के मन में यकायक आँधी मचलने लगी। उसे घोर पश्चाताप हुआ। मित्र से द्रोह और साध्वी स्त्री को धोखा देने के अपने आचरण के प्रति उसे बहुत ही घृणा निर्माण हुई और इसलिए पश्चात्ताप की धुन में पास में पड़ी हुई छुरी की सहायता से भोंक लिया। उसका शव उसी मंचक पर खून से तर हो कर गिरा रहा।

यह देख कर स्त्री को बडी व्यथा हुई। वह सकपकायी। वह सोचने लगी, कि मेरा रूप ही इस अनाचार का मूल है, इसीलिए उसने अपनी हत्या कर ली है! ऐसा रूप जो परायों के मन में अनीति बेता है, उसके लिए प्राणदण्ड के सिवा और कौनसा उचित पुरस्कार होगा?

इस प्रकार उसने भी उसी छुरी से अपने को भोंका, और वह भी उसी मंचक पर मृत स्थिति में गिरी पड़ी।

सबेरे के समय घर की दासी ने इस आतंककारी दृश्य को देखा, और उसका कलेजा थर्रा उठा। खून सूख गया। उसे अपनी मालकिन से बडा स्नेह था। उसकी मृत्यु के बाद दासी को सारा विश्व सूना मालूम होने लगा, और इसलिए वह इस नतीजे पर आ पहुँची कि मेरा जीवन व्यर्थ है! मेरा जीवित रह कर लाभ क्या है?

तर्क की सत्यता के विषय में अधिक न सोचते हुए उसने नजदीक की ही छुरी को लिया और अपने नश्वर जीवन का त्याग किया।

थोड़े ही समय के भीतर विवाहित मित्र अपनी यात्रा का सुसंवाद सुनाने के लिए घर पर आता है, तो इस हत्याकाण्ड को देख कर भ्रमित हो जाता है। अपार शोक में वह डूब गया। मित्र व पत्नी दोनों उसके प्राण व शरीर समान थे। उनकी मृत्यु के बाद जीवन का मोह क्यों? रसहीन जीवन को मिटाने के लिए उसने फिर से उसी छुरी को लिया, जिसने इस से पहले तीन जीवों के भौतिक बन्धन बड़ी सरलता से काँट दिए थे।

चारों व्यक्तियों का यह अन्त, अपनी कहानी को समाप्त नहीं करता।

इन चारों ने बाद में पुनर्जन्म लिया। वह विवाहित मित्र पोफल बना। उसकी स्त्री नागवेली बन कर उसे लिपटी रही। वह कुँवारा मित्र बना चुना और दासी बनी कात। ये चारों पान के बीड़े में एकसाथ आते हैं और पान खानेवाले के मुँह में अपना रंग जमाते है।

● ●





(पृष्ठ १२६ से आगे चालू)

" समझा ! याने इस धंधे के लिए तुम्हें अपने पास यह जो रूप की दौलत है उसको बेचकर कुछ कमाना होगा। यही है तुम्हारा *qualification* ! तुम समझती हो इसका माना ? "

मेरे ये शब्द तीर का काम कर गए। कुछ समय उसके होंठ कहने के इरादे से बेमतलब थरारते रहें, आँखें आँसुओं से भर आयीं और यकायक तड़पती चीख फाड़ कर वह फूटकर रो पडी। उसने कहा,

" समझती हूँ। सारा सारा कुछ समझती हूँ। इस चंगुल में से बाहर आने के लिए कोई रिहाई नहीं। आप दिखाएँगे वह दूसरी राह ? "

—दूसरी राह ! दूसरा मार्ग ! भाग्य ! यह दूसरा मार्ग मैं जानता था, और वहीं पर मुझे अपना कदम बढाना नहीं था।

सिसकियाँ जारी थी। आवाज़ रोती थी।

" कीचड़ में फँसे हुए का मज़ाक करना कितना आसान है ! उसका तिरस्कार करना कितना सरल है ! लेकिन इन्हें बाहर निकालने के लिए है कोई आगे बढनेवाला? कौन करेगा मदद? जो कोई आगे बढ़ेगा उसे भी कुछ न कुछ कालिख पोत लेनी ही होगी ! गन्दगी... कीचड, कालिख का थोडा धब्बा ! लेकिन लोग उससे भी डरते हैं—मानों इज्जत खो चुकी ! दूसरों को अगर यह डर सताता है तो जो कीचड़ में पैदा हुए हैं और पलते हैं, उनको यह गन्दगी, कैसी बीमारी और सड़न किस तरह खाए डालती होगी, इसका विचार तो कीजिए ! सारे... सारे पत्थर मन हैं ! कंकड़ फेंक मारने, मज़ाक करने और फिर से उसी नरक में उन्हें ढकेल देने के लिए हर कोई तैयार है ! उन्हें उबारने को कोई आगे नहीं बढता ! बोलिए, क्या करें वे ? कैसे कलंक को धो डालें ? " सिसकियां जारी थीं।

Dangerous moment that ! उसका यह भाषण किसी भी उपन्यास या युगपरिवर्तनकारी नाटक में पाया जा सकता था। *She delivered it so damned well !* एक लमहा ! एक पल ! उस क्षण पर तो उसका परिणाम बाड़ तीखा हुआ था ! उसका " आगे बढ कर "..." उबारने " का इशारा मुझे बड़ा खतरनाक लगा ! मानों, मैं अब गिरा..., अब गिरा...! लेकिन होश में आ कर अपने को सम्हाला ! सम्हाला और कहने लगा, " रोओ मत। पागल कहीं की ! यहाँ याने पर क्या तुम्हें अक्सर दुःख ही मालूम होता है ! "

" नहीं ! " उसने आँखों को पोंछा ! वाणी में शीतलता ला कर कहने लगी :

" यही मेरा इकलौता ठौर है जहाँ आ कर मैं कुछ सुख पा सकती हूँ। सारा दुःख, सारा कीचड़, सारी तमाम बदबू मैं भूल जाती हूँ। कीचड़ गन्दगी धुलाई जाती है ! मानों, पावन बनी हूँ ! "

स्त्रियों को जिस मिठास और दुलार भरे उपायों से सान्त्वना दी जाती है, उन सारे मार्गों का उस दिन मैंने अवलम्ब किया ! उस दिन उसने हिरा के नाम का भूल के भी जिक्र नहीं किया ! सच कहें तो उसे हिरा से बड़ा डर हैं; उसे बड़ी ईर्ष्या और डाह लगता है उससे ! हालाँ कि

यह मेरी जीत की बाजी का निशान मानता हूँ मैं ! *Set a woman against woman !* एक नौकर, दो छोरियाँ, तीन कमरें, और रिता समय .... मतलब है कि वसन्तवहार खिला है !'

तुम्हारा
—मधु



१७

विन्सेन्ट रोड, दादर
१६ सितम्बर ३७

भाई गोपाल,

कार्यक्रम में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। सुरंगा–हिरा; व हिरा-सुरंगा ! सुरंगा ने हिरा के बारे में बातचीत छेड़ना छोड़ दिया है। लेकिन मन में कौनसा दावानल सुलगता होगा पता नहीं। खूब धधके; चाहता हूँ कि वह बावल बन कर बाहर फूट पड़े। चौबीस घण्टे और दो लडकियाँ ! रात के सारे घण्टे काट दो, क्यों कि उन से कोई लाभ नहीं ! दिन का दायरा बढ़ाने के लिए कोई चारा है ? खैर ! हिरा आने का समय हो चुका है ! रुकना चाहिए, क्यों कि...

—मधु



१८

दादर,
१८ सितम्बर १९३७

मित्रोत्तम गोपाल भैया :

नमस्ते !

प्रगति का कोई चिह्न नहीं है। रास्ते अजीब ढंग से बन्द हैं। चौबीसों घण्टे बोलते रहे यानी आखिर बोलें भी क्या ? सवाल को कोरा जवाब है। मेरे बस की बातें उनके लिए सिरपच्ची का मामला है; तो उनकी बातें मेरे लिए सिर दुखन है। साहित्य, कला, विज्ञान राजनीति इन सारी बातों से उन्हें परहेज है। कुल मिलाकर जितनी चाहे उतनी करे तो भी मुल्ला की दौड़ मसज़िद तक ! कुछ मनोविनोद और परिहास की बातें करते रहें तो ऊँचे दर्जे के विनोदों से वे कोसों दूर हैं। यानी यहाँ पर भी चुल्लू भर पानी में जा कर बचपना करें और छिछली बातें करें, तब ही कहीं निभ सकेगी ! घण्टों तक नमकीन और चिकनी चुपड़ी बातें करने और ढेर भर शब्द गिनाने के लिए वह प्रेम का पहला दौर चाहिए। मैं तो आटे दाल का भाव ठीक तरह से जानने लगा हूँ। हवाई घोड़े दौड़ाना अब बीते जमाने कि मरी मिटी कहानी है। प्रेम करनेवाले लोगों की यह बहुत बुरी आदत होती है कि वे मतलब की बातें छोड़कर बेमतलब की उलझनों में समय गँवाते हैं। उन्हें उसी में मज़ा मालूम होता है। मैं सम्पूर्ण मन से चाहता हूँ कि लड़की अपनी ' गाँठ की गठली ' की बात करें। लेकिन सिर्फ उसीकी टालमटौल की जा रही है। कामना के जमाने में बातचीत की पकौड़ियाँ खूब मज़े से चक्खी हैं, इसलिए उसी बात को दुहराने में अब कोई भलमनसाहत मालूम नहीं होती ! इसका नतीजा होता है, सब कुछ खोना





रेंगनेवाली उलझन मन को बड़ी तक़लीफ़ करती है। चाहता हूँ कि इस बोझ को अपने सिरपर से दूर हटाऊँ।

अनुग्रहणप्रवीणा तथा 'उपकृत्या' युवति हिरा बड़ी ही निष्कामकर्मचरितआचरणा है। उसकी राय में फल मिलें तो भी राम, न मिलें तो भी नहीं हलाल! फल के माने अपनी चाह के फल का आग्रह वह कभी मानती नहीं है। वह नियम बाँध कर आती है। सुरंगा के बदौलत उसको होने वाली असुविधा वह भलीभाँति जानती है। कहने की जरूरत नहीं कि सुरंगा का आना जारी है। लेकिन सच कहें तो वह सिर्फ़ आती है। और कुछ नहीं है, इसलिए वह पागल की नाईं आती है। और उसके पागल पने की वज़ह छोड़ने के लिए वह राजी नहीं है।

नागपूर की खबर सुनाओ। नागपूर में कोई न अच्छा थिएटर हैं, न कोई अच्छी पुस्तकोंकी दूकान। *It is really a shame*; बुमन राय, आलूजंग, जिराफ़ और गोंदिया के पत्र कभी-कभो आते रहते हैं। स्नेह सम्बन्धियों आर अपने यार-लोगों को नमस्ते बतलाना।

—मधु

२१

विन्सेण्ट रोड,
२५ सितम्बर ३७

My dear गोपी!

रफ्तार पीछे जैसी थी उसी क़द से आगे बढ़ रही है। सुरंगा मन में सुलग रही हैं। चतुर सुंदरी निपुणिका हिरा उसे धधकाने सुलगाने के लिए पता नहीं, कैसे जाने अनजाने तरीके अपनाती होगी। कहती होगी, "अरी, मैं जब उनके यहाँ गई जब मालूम है एक बडी मीठी..." कहानी इस कौतुहलवर्धक शैली से शुरू होती होगी। इस प्रभावी प्रचारतंत्र के सब परिणाम कुछ कुछ रूप में दिखाई दे रहे हैं। उसने हिरा का जिक्र करना छोड़ दिया है। ज्यादह तर वह अपने ही विचारों में खोई खोई सी होती है। यहाँ तर्क कि कभी – कभी मेरी बातें वह अनसुनी करती है! "जी...।", "क्या...कहा?" इस प्रकार से दुबारा सवाल पूछती है।

भला, तुम्हारा "कानून" क्या कहता है? ऐसा मत समझो कि *Law* और *Medicine* का औषधि मात्र के लिए भी सम्बन्ध न जुटता हो। *Medico Legal cases* में तो उन दोनों का रिश्ता होता है—मानों गलबाहियाँ डाली जाती हैं, हार-जीत का फैसला तय करने के लिए। विधिज्ञ तो सर्वज्ञ माना जाता है! वह डॉक्टरों की अपने विषयों की उल्टी जाँच पड़ताल करने के लिये तत्पर होता है और डॉक्टरों को तब कानून के साथ भाईचारे का रिश्ता निभाते हुए उसकी सूरत को जरा निहार लेना होता है। सुरंगा के सिलसिले में तुम कुछ अलग (अनुराग?) की बात सुझा रहे हो, क्यों भाई?

तुम्हारा
मधु

२२

रात्रि : ११॥ बजे

विन्सेण्ट रोड़,
दादर
२७ सितम्बर १९३७

गोपाल!

सुरंगा आजकल काफ़ी *Moody* बनी है! उसी अनुपात में हिरा की प्रसन्नता बढी है। पता नहीं दोनों में किस तरह की बात-चीत की छेड़ छाड़ होती होगी! आज सुरंगा काफ़ी *Down* थी। मैंने सुझाया,

"चलो, आज सिनेमा चलें! '*Desire*' की तारीफ़ कई बार सुन चुका हूँ, जरा देख लें! गॅरी कूपर और मार्लीन डीट्रिच पार्ट खेल रहे हैं उसमें। डीट्रिच और कूपर होने पर पिक्चर किसी क़दर बोझिल और घटिया नहीं हो सकेगा।"—सच कहूँ तो मुझे Gary Cooper से बेहद प्यार है। तुम्हारी वह आस्मान की परी गार्बो से हमें मार्लीन डीट्रिच और नॉर्मा शिअरर ज्यादह भाती हैं।

सिनेमा चलने की बात सुझाते ही सुरंगा उछल पड़ी। चेहरा खुशी से झूम उठा। और डिझायर देखने के बाद वह खुशी से इतनी झूम उठी कि पूछो मत! मन आनन्द से खिल उठा।

—'डिझायर' की कहानी तुम्हें याद है न? गुनहगारों की टोली में रहकर गुनहगार लड़की को एक 'भलामानस' उत्साही युवक किस तरह उबारता है—इसकी लगभग वह कहानी है।—

सिनेमा के रूप में मुझे भी वह सिनेमा खूब पसन्द आया। लेकिन एखाद अच्छी या भावनाप्रधान पिक्चर देखने के बाद अथवा उसी ढँग का एकाध उपन्यास पढ़ने के बाद मैं पहले के जैसा भौं चक्का बन कर सकपक नहीं जाता हूँ! आखिर सिनेमा अथवा चलच्चित्र यह सिनेमा या चलच्चित्र हैं! निर्जीव व निरानन्द पर्दे पर जो बातें दिखाई जाती है वे सब संसार के साथ वास्ता न रखनेवाली बातें होती हैं, इसे मैं भली भाँति जानता हूँ। जरा अक्लमन्दी आ रही है! फिर से कहता हूँ मुझे *Desire* पसन्द आयी लेकिन यहाँ तक नहीं कि मैं, ओफ्! वाह्...वाह्! ग़ज़ब किया! ओः! *Splendid; Great;* आदि विस्मयकारक उद्‌गारों को अभिव्यञ्जित करूँ! मेरा यह मौन सुरंगा को अखरा और उसने आखिर में पूछा ही कि :

"अच्छी थी यह पिक्चर, है न?"

"अच्छी थी! लेकिन वास्तविक परिस्थिति को ले कर ही निकाली गयी हो, ऐसा कहना मुश्किल है।"

"वाह! क्यों नहीं! उसका वह नायक कितना अच्छा आदमी है, न! डाकुओं से पीड़ित उस गरीब लड़की को वह कित बहादुरी से छुडाता है; और इतना ही नही तो वह उस से ब्याह भी करता है। सचमुच देवता!

"अरी...वाह्। पिक्चर के अन्त में उस लडकी का ब्याह हुआ है, इसलिए वह पिक्चर तुम्हें पसंद आयी न? और नायक नायिका को रिहा करता है और उस से ब्याह करता है इसलिए वह देवता। यही न?"

अनुक्रमणिका





"हाँ··हाँ! सच जो है। डाकुओं की संगत में रहकर वह गरीब बेचारी चोरी करना शुरू करती है, तब भी वह नायक उससे ब्याह करता है। उसका दिल कितना बड़ा है। दिलदार है वह।"

"सुनो तो, सुरंगा! इस कहानी के अन्त में बतलाया है कि वह उस चोरनी के साथ है, न? लेकिन इसके बाद क्या हुआ होगा? यह तुम जानती हो, न मैं!"

"इसके बाद? आगे क्या हुआ होगा? उस लड़की ने अपने पति के घरकी घरवाली बन कर अच्छी तरह से रखवाली की होगी।"

"अथवा यों कहें कि घर की बची सब दौलत ले कर रफू चक्कर हुई होगी? है न? चली गयी होगी अपने पुराने साथीदारों के संग।"

"छीः; छीः; कैसे हो सकेगा यह?" नाक भौं सिकोड़कर वह अपनी एतराजी बतलाते हुए कहने लगी।

"दर असल वही अधिक सही है। भोले-भाले व सीधे लड़कों को अपने जाल में फँसाकर उसका ब्याह रचाकर उसको बरबाद करने के लिए ऐसी लड़कियों का कई बार उपयोग किया जाता है।"

"लेकिन वह लड़की ऐसे चरित्र की बिलकुल नही थी। समझे? अवसर मिलनेपर अच्छी लडकियाँ जरूर अच्छी बनती है।"

"जरा सोचो तो कि जो दिखावे में अच्छी होती है, वे मन से भी अच्छी होती है, यह कहना ढाढस का है। अपराध को बाखूबी से करने के लिए लड़कियों को भोला और अच्छा दिखावा अपनाना पड़ता है। हर कोई आदत से मजबूर होता है। जन्म से पैदा हुई बुराइयाँ क्या ऐसे वैसे, केवल शादी होने से छूट जायेंगी?"

"तो फिर उस नायक ने उस चोर नायिका के साथ ब्याह किया, वह आप को अच्छा मालूम नहीं होता। है न?"

"जहाँ तक मेरी राय का सवाल है, मैं मानूँगा कि यथार्थ में चोर नायिका को जीवनसाथिनी बनाने के बजाय साहु-नायिका को चुनना अपनी भलाई की दृष्टि से अधिक स्वभाविक है। जो चोरी की आदत को ले कर पली है, उसके साथ घरकबीला निभाना याने जलते अंगारे को अंगोछे में रखना! उसकी घुड़दौड़ सिर्फ़ दिलकी चोरी कर के थोडी सकेगी?"

शक का यह जहर काफी था। मैंने सिर्फ़ इतना ही कहा! लेकिन जो कुछ था वह सुरंगा को उदास बनाने की दृष्टि से काफी प्रभावी था। केवल उदास ही नहीं बनी; आँखों से पानी झरने लगा.. सच कहूँ तो हर बात बात पर उसका यह रोना-धोना मुझे बडा तंग कर रहा है।—त्यों ही उसके लिए खरीदी हुई बँगलोरी साडी और सोने की अंगूठी की याद आयी। खास उसी का लिहाज करते हुए खरीदी हुई ये चीजें देखकर उसका मन मयूर नाचने लगा। खोई खुशी लौट आई! रंगीन समाँ शुरू हुआ!—मैं ने इन चीजों को खरीदा था इसी हेतु कि उसके ऋण से उऋण हो जाऊँ—

...और क्या कहूँ? ऐसे मार्क़े के समय जो कुछ रोमानी बातें सोची और को जा सकती हैं उन सबको मैं उस दिन करता गया!

मैंने कहाः

"साडी पहन के दिखाओ..."

"ना, बाबा! अभी क्यों?" अनुराग से वह पुलकित हो उठी थी।

"हत्! अभी और अभी..." मैं ने बाजीराव [illegible] नशे में हुक्म फरमाया। आवाज़ में रोब ला कर कहा,

"पहनती हो या नहीं अब?"

"हाँ...हाँ! पहनती हूँ..., पहनती हूँ!" कहते हुए वह अन्दर के कमरे की ओर भाग गई। मैं फिर से ललकार उठा,

"अरे...तुम...?"

—उस समय लगा कि विवाह का मोल अदा न करते हुए भी मैं किस मधुर सुख को पाने का भागी बना हूँ।

"जी...क्या कहा आपने?" उसने तुरंत पूछा।

"वहाँ किधर जा रही हो? इधर पहनो—मेरे सामने।"

"छीः, छीः।" इन्कारते हुए उसका हावभाव कह उठा।

"छीः, छीः कुछ नहीं चलेगा। इधर पहनो! तुम जानती हो अपनी भाषा के नाटककार ने कहा है कि '··स्त्री का सौंदर्य साडी पहनते समय खिल उठता है।' सुना तुमने?"

"मैं वह कुछ नहीं जानती।" कहते हुए वह दूसरे कमरे में भाग गई।

क्रीम रंग की साडी, बडी बढिया ढंग से पहनकर वह लौट आई; तुरन्त ही मैंने उसकी उंगली में अंगूठी चढा दी।

"जानते हैं, ईसाई लोगों में अँगूठी देने का मतलब क्या होता है?" आँखों की तिरछी चितवन बोल उठी। मैं उस अर्थ से अनजाना नहीं था, लेकिन ऐसे 'नाजुक, प्रसंग पर मेरी जानकारी अपने पास ही रखना मेरे लिए फ़ायदे मंद था। लेकिन बात को उलटाते हुए मैं ने चालाकी शुरू कीः

"तुम क्या जानो कि ईसाई धर्म की लडकियाँ अपने पुरुषों के साथ कितने भरोसे से विश्वास करती है... बिल्कुल खुले पन से बर्ताव रखती है। तुम जानती हो?"

"ना मैं वह जानती हूँ; ना मैं उसे जान लूँगी!"

"तो फिर समझो कि अँगूठी देने का ईसाई मतलब भी मैं नहीं जानता हूँ, और न मैं उसे जान लूँगा! मान लो मैं तुम्हें यह अँगूठी अपने हिन्दु अर्थ में पहना रहा हूँ...!"

"अँगूठी का हिंदु अर्थ क्या होता है?" स्वर में उत्साह भरा कुतूहल था।

"कोई भी नहीं!" मैं ने कोरे भाव से कहा। फिर से आँखें छलछला आयीं। अस्तु! अब पनिया भरन वाला यह पत्र पूरा करता हूँ!

—मधु

पुनरपि :

सिनेमा की बात है; मध्यन्तर में हम थिएटर से बाहर आए थे। तब पान से फूले मुखड़ेवाले दो सेठियों ने सुरंगा को बड़े स्नेह से पुकारा। इतना ही नहीं, सुरंगा उनसे कुछ बातचीत भी कर आई! एक तो मुझे ये आदमी बिल्कुल पसन्द नहीं आए और दूसरी बात कि सुरंगा का उनसे बोलने के लिए जाना भी मुझे ठीक

अनुक्रमणिका





नहीं जँचा। सच कहूँ तो इस नापसन्दगी की कोई भी वजह नहीं है। आखिर सुरंगा मेरी कौन है?

—मधु

२३

विन्सेण्ट रोड़,
दादर,
२९ सितम्बर १९५५.

भाई गोपाल पण्डित।

सुरंगा के *Moods* का प्रमाण बरसाती धूपछाँह के जैसा बढता चला है। त्रिखण्ड सन्तोषसरिता एवं अखण्ड सौभाग्यकांक्षिणी हिरा दिन दूनी और 'रात चौगुनी' हिसाब से अधिकाधिक संतोष गामिनी दिखाई देती है। मेरा असंतोष (अतृप्ति?) बढते हिसाब से चढ़ रहा है। मेरे २७ की तिथि के पत्र को तुमने उत्तर भेजा होगा ही। क्या करें। पत्र *Cross* हुए होंगे। अन्यथा इन पत्रों में है भला क्या? कुछ अजीब अचम्भे की बात हों यही मेरा मन चाहता है। '*It is a lesson you should need try again! If at first you don't succeed, try again and again!*—वाले इस ब्रीद वाक्य को सामने रख कर सन्तोष की साँस लेना ज्यादह मुनासिब है।

—मधु

२४

विन्सेण्ट रोड़,
दादर
१ अक्तूबर १९३७

धनतोलीस्थित श्री गोपाल पण्डित पोस्ट नागपूर की सेवा में मधुकर गणेश बर्वे पोस्ट बम्बई की ओर से सस्नेह कोहनी पूर्ण नमस्ते। अरे भले आदमी, तुम क्या अण्टसण्ट लिखते जा रहे हो। मुझे सुझाते हो कि 'जरा सोच समझ कर काम लो।' सख्त खतरनाक मोड में मैं ने भूल से अपने को एक बार फँसाया था, अब जरा तजुर्बा आया है, अब तक जो कुछ हो रहा है वह सब का सब सोच समझ कर ही तो किया जा रहा है, इसे मत भूलो। सुरंगा की वे आँखें, वह चेहरा, वह भोला-भाला अविर्भाव, और लगातार बहनेवाली आँसुओं की छवि देख कर कहीं गुमराह बनूँगा ऐसा लगता ही था, लेकिन ऐसे समय बेहोशी को हटाते हुए 'होशियार रहो' का नारा ललकारते हुए कामना के विवाह की कुँकुम पत्रिका मुझे अपने 'कर्तव्य' के बारे में दत्तचित्त बना रही है। कुँकुम पत्रिका नोंक से चुभती है:

> 'हमारी (सु) कन्या चि. सौ. कां. कामना का विवाह दिनाङ्क ..मिति...घटिका...पल...पर...श्री............... (रावबहादूर......... के पोते) के साथ श्री कृपा के कारण तय किया है, अतः आप से सानुरोध प्रार्थना है कि कार्य को सुशोभित एवं सफल बनाने के लिए उपरोक्त अवसर पर अपनी उपस्थिति अवश्य प्रदान कीजिएगा।'

गोपाल, इस निमंत्रण पत्रिका को पढ़ने के बाद भूल से भी इस मोहजाल में कौन अटकेगा? तुम कहते हो कि यह 'अविचार' 'अन्याय' होगा। तुम सचमुच क्या कहना चाहते हो? तुम्हारे २९ सितम्बर के पत्र का माना समझना जरा टेढ़ी बात है। खलिल जिब्रान (या गिब्रान?), लिन युटांग आदि महान् दार्शनिकों की बोझिल शैली में तुमने कुछ लिखा है। हाँ, यह मानना होगा कि जो कुछ लिखा है बडा हितप्रद मालूम होता है। लेकिन मैं कुछ समझ नहीं सका, यह भी सही है। तुम क्या चाहते हो, बतलाओ ना? हेतु क्या है, जरा साफ़ साफ़, सीधे ढँग से, लिखोगे न? टट्टी की ओट में शिकार खेलने से क्या लाभ? तुम्हारा यह पत्र बड़ा *Vague* है। हो सकता है कि तुम्हारी इस शैली की विशेषता के कारण ही तुम नामवर लेखक भी बन चुके हो लेकिन, कानून की बाल की खाल निकालने वाला विधिज्ञ नहीं बने हो। शायद नहीं बनोगे। नानी के आगे ननिहाल की बातें क्यों भला? विस्तृतोत्तर की 'कामना' है।

सेवा में
मधुकर गणेश बर्वे

२५

दादर,
५ अक्तूबर १९३७

प्रिय गोपी,

तो यह बात है; आखिर तुम्हारे मुर्गे ने बाँग लगा दी है कि दो चार दिनों में आप साहब की सवारी कलकत्ता, पुरी, दिल्ली, आग्रा आर वृन्दावन की सैर के लिए चल पड़ेगी। दिवाली की छुट्टियाँ इसी तरह दर-दर भटकते हुए काटोगे? *It is really an idea!* हमारे लिए दीपावलि की छुट्टियाँ लगभग न के बराबर बाकी बच के रही है। पहिले सत्र के अन्त में एक मास के भीतर हम ने जो दीवाली का मजा उड़ाया है, वही समझो हमारी दीपोत्सवी। तुम यात्रा पर जा रहे हो, इसका तात्पर्य यह मानता हूँ कि पंद्रह बीस दिनों तक मैं तुम्हें खत-खतावत न करूँ तो भी चलेगा। हाँ, तुम अपनी सैर का पूरा अहवाल 'सवारी का हाल' लिखते जाओ। चाहे जहाँ पर तुम हो उस ठिकाने पर से। एक बात बतलाऊँ, इस यात्रा में जहाँ कहीं तुम पुण्यसंचय करते होंगे अथवा बटोरते भी रहोगे तो उस में अपना एक हिस्सा रखना; जिससे यदि तुम स्वर्ग में स्पेशल ट्रेन से जाओगे तो इस गरीब के लिए कम से कम 'सर्वण्टस् कम्पार्टमेण्ट' में स्थान होना चाहिए। पिछले पत्र में तुमने जिन बातों को बतलाया था, वह सब साफ और सीधा था, यह दावा मैं नहीं मानूँगा। थोडी देर के लिए मान लें कि उस का मतलब तुम्हारे लिए बडा सरल था (मुझे बडा घना शक है!), लेकिन मेरे लिए वह भारी बोझिली बात थी। ध्यान में रखो कि तुम्हारा पत्र मेरे जैसे बिल्कुल 'जनसाधारण' के लिए है। वैसे अगर खलिल जिब्रान (गिब्रान?) से पूछोगे तो वह बेटा भी कह देगा कि, हाँ, हाँ, कितना सरल और सुबोध है मेरा भाष। हालाँ कि अगर सचमुच ऐसी कोई बात होती तो दूसरे





अनुक्रमणिका

पण्डितों को जिब्रान को समझाने के लिए सफेद काग़ज़ काली स्याही से क्यों पोतने पड़ते? और गरीब जिब्रान इस बात को स्वप्न में भी नहीं जानता होगा कि इस तरीके से उसके विचारों को समझा कर पिलाया जा रहा है। हाँ, और एक बात है; मैं पहला पत्र समझ नहीं सका इसलिए उन विचारों को समझाने के लिए सख्त उलझनों से भरा दूसरा पत्र लिखने की कृपा मत दिखाओ। वही घूँट जरा ज्यादह तेज था। हाँ, क्या पूछे तुम लोगों की? क्यों कि एक तो लेखक और तिस पर 'विधिज्ञ'–कानूनगो। अस्तु! सैर सपाटे के दौरे में लड़कियों को भेंट देने योग्य कोई चीजें मिलीं तो जरूर खरीद कर रखना... भाई मेरे ही स्वार्थ की बात नहीं, तुम भी कभी न कभी उससे जरूर लाभ उठा सकोगे।–*Wish you* '*Bon journey*' (ठीक है न?) '*Bon Journey An Revoir*' इन संज्ञाओं से वैसे अबतक पूर्णतः परिचित नहीं बना हूँ, अनुमान से शब्दों की कामनाओं का पाल फेंक रहा हूँ।

—मधु

पुनश्च : सुरंगा के पहनावे में–याने भेष भूषा में–आजकल गौर करने लायक फर्क़ मालूम हो रहा है। अपने संपूर्ण मन को ले कर वह मुझे प्रसन्न करने के लिए झगड़ रही है। मैं ने उसे जब पहली बार देखा था, उस समय वह माथेपर सिंदूर की छोटी टीकी लगाती थी और कभी कभी वह भी भूल जाती थी। ज्यों ही सिंदूर के होने के बारे में मैं ने अपना आग्रह जारी रखा त्यों ही उसकी उस टीकी का आकार चंद्र की कला के अनुसार (केवल) बढ़ता ही जा रहा है। इकन्नी, चौवन्नी के आकार को पर्याप्त न मान कर वह 'आजकल' अठन्नी के आकार को अपनाए हुए है। अगर उसे न समझाता कि यही आकार उसे के चेहरे को शोभा दिलाता है, तो अबतक वह रुपय्या पार करके वीर क्षत्राणियों की भाँति 'जौहर' व्रत के लिए पूरा मत्था सिंदूर से भर कर आना शुरू करती!—स्त्रियाँ 'सिंदूर के मानी' के लिए ज्यों ही छलाँगे लगाना शुरू करती हैं त्यों ही वे किस छोर पर जाकर रुकेंगी इसका अनुमान लगाना मुश्किल है।—इधर उसने सिंदूरी विस्तार को बढ़ाकर नाखूनी रंगों को घटना शुरू किया है—इस से पहले वह आधुनिका पद्धति को अपना कर नाखूनों को थोडा बढ़ाकर उन्हें रंगाती। बातचीत में एकबार मैं ने कहा था कि तुम्हारे यह नाखून चूहे को नाचने के लिए निकली बिल्ली की याद मुझे दिलाते हैं। फ़ौरन दूसरे दिन से नाखूनों को छाँट दिया। और नेलपेण्ट से विदाई ली। एकबार हरी बुट्टी की लाल साडी वह पहन के आई। मैंने कहा, यह रंग छिछले आदमी उपयोग में लाते हैं! उसने अबतक उस साडी को दुबारा पहना नहीं।—सच कहूँ तो वह उसे बडी भानी थी।—सिर्फ मेरी बातचीत का झुकाव देख कर उसने ऊँची एडी के सेण्डल, कर्णफूल और तिरछा भाँग छोड दिया। ज्यों ही उसका सिंदूर सिर के बीच में रेखा करने लगा त्यों ही मैं ने कहा नौ गजवाली साड़ी सभी दृष्टि से अच्छी होती है। मैंने यह कहा था ही न कहा था; त्यों ही नौ गज की साडी उस पर चढ़ गयी। नौ गजिया साडी, अठन्निया सिंदूर, सादी चप्पल, न पावडर है, न नेलपेण्ट, न लिपस्टिक इस भेष में अगर तुम उसे देखोगे तो हैरान हो जाओगे। मान लो, अगर मैं उसे कहता कि वल्कल बड़े अच्छे होते हैं, तो वह साडी को भी त्यागना छोडेगी नहीं! –गोपाल, मैं ने इस वाक्य को यों ही चलते चलते लिखा है–अब तो वह पूरी मीराँ बनती जा रही है। केवल एक कमी है–जपन की माला की। इधर हिरा का रंग विरंगी बनता जा रहा है, नखरे में नाज़ उतर रहा है। दोनों ओर दोनों अलग रंग और ढंग है!

—मधु

पुनरपि : और एक बार '*Bon voyage*' – रेलगाडी की सैर को 'व्हॉयेज' कहना क्या चल सकेगा? अब मिलेंगे तीन चार हप्तों के बाद!

—मधु



२६

रात्रि : ९

दादर, बम्बई,
३ नवम्बर ३७

गोपी,

'*It is done*!' यात्रा की पूर्ति की तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई, इधर मेरी भी मन की चाह पूरी हुई!

—कहते हैं पुराने जमाने में तपश्चर्या का संकल्प तोड़–मरोड़ देने के लिए रंभा आदि आती थी! उस जमाने में अगर मैं होता तो, रंभा आती है इसी कारण मैं तपस्वी बन जाता! कुछ भी हो, आजकल नेक औरतों के लिए तपश्चर्या करने का काल आ बीता है, यह मानना होगा। तुम्हें देवकृपा प्राप्त हुई होगी तो हमें इधर कामदेव संतुष्ट हुए! खैर, एक बात है, अगर तुम पिछले माह में नागपूर होते तो विदग्ध वर्णन शैली से भरपूर ऐसे "टॅच" पत्र तुम्हें मिलते कि पूछो नहीं! लेकिन लेखक जाति भरोसा करने लायक कब मानी गयी है? कहानी का सर्वोच्च बिन्दु आ रहा है और तुम अपने स्थान पर से गायब हो चुके हो, अरे भाई, यह भी कोई तरीका है? (कार्यभाग और) कथा भाग की *Climax* की सीमा पर तुम कहीं गुमनाम बनते हो? ईश्वरेच्छा बलियसी! अब जैसे याद आएगा, वैसे कहते जा रहा हूँ। सोचो कि जब दो लडकियाँ *Double front* खोल बैठती है, तब बातों का मज़ा ऐसा निखर उठा था कि पूछो मत।

भूल गया हूँ, कहानी की किस घटना के बारे में मैं ने इससे पहले लिखा था! तो भी उसके बिना भी बड़े कौशल से पायी हुई जीत का वह दिलचस्प किस्सा बतलाने से सारी बातें मालूम होंगी, सो तो मेरी राय है।

सच कहना हो तो यह जीत मेरी अपनी वैयक्तिक कुशलता पर अवलम्बित न हो कर किसी दूसरे की भूलता पर अवलम्बित है। इस से पहले मेरी मूर्खता की सहायता से किसी और ने अपनी चतुराई का महल खड़ा किया था, अब इस उलटी बाज़ी में मैं ने किसी दूसरे के भोलेपन की दुर्बलता से लाभ उठाया है। संसार का यह नियम है! मानों नियति का एक बीहड़ चक्र है। इस दंगा चक्र का कोई अन्त नहीं, न इसे कहीं विश्राम मिलता है।





अनुक्रमणिका

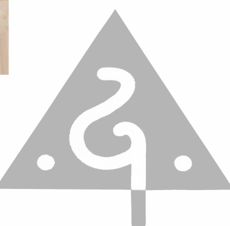
काश्मीर

प्रशान्त विश्व-रूप दर्शन

चित्रकार : दीनानाथ दलाल

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

र ऑर्जल इस पत्र को लिखते समय मेरा दिमाग गर्म बना है। ना ऊब गया है, और वैसे ही कलम भी जरा सख्त बनती जा रही है। अभी अभी सुरंगा रो-धो के और तमाशा नाच के चली गयी है। आजकल तो वह मानने लगी है कि इस तरह सताना और उधम मचाकर जाना उसका अपना निजी अधिकार ही है।

वैसी कोई खास बात नहीं हुई। इसके हिरा के सिलसिले में जो हो चुका था वही आज मिस् दस्तूर के बारे में हो चुका। लड़की का नाम है पेरीन दस्तूर। वह मेरे कमरे में से बाहर जा ही रही थी त्यों ही सुरंगा ने प्रवेश किया--लगभग टकरा रही थी। दोनों ने एक दूसरे को परखती नजरे से घूर्कर देखा। गोरे आदमी जिस नजर से काले आदमी को देखते हैं उस ढंग से पेरीन ने सुरंगा की ओर देखा और काला आदमी जिस नजर से गोरे आदमी की ओर देखता है उसी निगाह से सुरंगा ने पेरीन की जाँच पड़ताल की।

गोपाल, तुम्हारे मन में यह भाव जागा होगा कि यह पेरीन दस्तूर है किस चिडिया का नाम ? यह लड़की हमारे कॉलेज में थर्ड ईयर के कोर्स में पढ़ती है। मन्मथ बॅनर्जी के साथ, उससे हमारी मुलाक़ात हुई। बॅनर्जी ने हम दोनों का परिचय कराया। बिल्कुल पहिली नज़र मिलते ही मैं उसको पसन्द आया यह साफ़ साफ़ दिखाई देता था। इसे मैं ने जाना और वैसे बॅनर्जी भी समझा। सच कहता हूँ बॅनर्जी एक गज़ब आदमी है— *A great great Sport* ! उसने कहा– *This wench is quiet a character !* यों लगता है कि उसने तुम्हें पसन्द किया है, तो फिर देखते हो क्यों? *Go ahead. I gladly make room for you !* उसे अधपके लड़के ज्यादह पसन्द होते हैं। *She has a weakenss for kids*—एक बात ध्यान में रखना *She is a girl of passing fancies*। और उसके बाद बीच में कभी किसी बहाने उसने मेरे पास आना शुरू किया। वह रंग से उजली है ओर आदत से अकड़ है। लेकिन सुरंगा की मिठास उस में कहाँ? मान न मान 'यह फ्रॉक' यह खुली टाँगें, बॉब बाल और नाजुक अदासे मिठी अंग्रेजी बोली का कुछ न्यारा ही ठाठ है।

आजकल सुरंगा हर बात के बारे में हाथ धो पीछे पडती है कि मैं झल्ला उठता हूँ। बे मतलब की सिरपच्ची। पेरीन आँखों से ओझल होने का अवकाश ही था त्यों ही उसने मुझ से जिरह करना शुरू किया।

" यह कौन थी पारसन ? "

" ठीक पहचाना, वह पारसी ही हैं। " मैं ने पुनरोक्ति अलंकार में अंतर्हित की जाएँ, ऐसी उक्ति को कहा।

" पारसी है वह, इसे मैं देख सकती हूँ। लेकिन वह है कहाँ की ? "

" ये लोग, मूलतः ईरान देश के हैं। लेकिन आजकल हिन्दुस्तान में रहते हैं। "

" आप कुछ छिपा रहे हैं। "

" मैं क्यों छिपाऊँ ? मैं ने कुछ भी छिपाया नहीं ! वह दिन दहाड़े मेरे यहाँ आई थी। "

" काहे को ? "

" पढने के लिए और मिलने को भी। "

" तो कहिए कि आप की क्लास में है। "

" क्लास में नहीं, लेकिन कॉलेज में हैं। "

" वह आपके क्लास में नहीं है, फिर भी पढने के लिए आती है ? "

" चाहती हो तो यह समझो कि वह पढाने के लिए आती है। बड़ी अक़्लमंद मानी जाती है। "

" मत कहिए, उसकी अक़्लमंदी के बारे में कुछ। उसके यहाँ आने के बारे में मुझे बड़ा भारी शक है ! वह आप को पढाने के लिए आती है, इस बात पर मैं थोडे विश्वास करूँ। "

" चाहे तो विश्वास करो, या न करो। लेकिन यह सच है कि वह मुझे पढाने के लिए आती है।"

" जरूर पढाती होगी, लेकिन अलग ही क़िस्से "

" सुरंगा— !"

" इस पारसन का कोई भी लक्षण मुझे सीधा मालूम नहीं होता ! ये लडकियाँ कभी सीधी नहीं होती।"

" काहे के लक्षण ? " मैं ने आवाज़ चढाई।

" उसकी वे आँखें, लचकता चलना। औरतें दूसरी औरतों की गहराई फौरन नाप ले सकती हैं। बड़ी खतरा करने वाली लड़की है वह। "

" तुम्हें याद है — तुमने हिरा को बुरा कहा; आज पेरिन को भी वही राह दिखा रही हो ? क्या तुम यह समझती हो कि तुम्हें छोड़ कर बाक़ी सब लड़कियाँ शक्की, बदचलन ओर बेशऊर होती है ? "

" आपके यहाँ आनेवाली ये सब लडकियाँ आपको नुकसान करेंगी, फरेब और दगाबाजी करेंगी। "

" मेरे यहाँ आनेवालों में तुम भी गिनी जाती हो, जानती हो ? जानती हो, उन्होंने अबतक जो नहीं किया है वह तुम इधर कर चुकी हो ? "

" हाय ईश्वर ! क्या उस के लिए भी मैं दोषी हूँ। " सुरंगा पीली पड़ जाती है और बाद में आग बबूला हो कर कहती है :

" मैं ने जो कुछ किया है, वह क्यों हुआ इसके बारे में आप अच्छी तरह जानते हैं। क्या आप मुझे नहीं चाहते हैं ? क्या आप मुझे गर्त में ढकेल देंगे ? "

विदीर्ण व आर्त भाव सुन रहा था। संकट को डरावनी सूरत देखने के बाद मनुष्य जिस हतोत्साही भाव से निहारता है, वही भाव अब सुरंगा पर आच्छादित था।

" उलटी तुम ही मुझे फँसाने वाली थी और हो ! "

" मत बोलिए, ऐसा; क्या कह रहे हैं आप ? "

" बिल्कुल ठीक बोल रहा हूँ। पहले तुमने मुझे अपने घरवालों के बारे में फँसाया, दूसरे तुमने अपनी जात के बारे में झूठ कहा। "

वह नीचे देखने लगी। चेहरे का खून मानों किसी ने यकायक चूस लिया हो ! लगातार बन्दूकों की गोलियाँ दागने के ढंग पर मैं ने शब्दों की झडी शुरू कि :

" तुमने मुझे कहा था कि तुम 'ब्राम्हण' हो तुम ब्राम्हणी नहीं





हो। आजकल पितृसावर्ण्य वाली परम्परा अपने देश में नहीं है, हो सकता है कि वह तुम्हें मालूम न हो लेकिन तुम अपनी जात को अच्छी तरह से जानती थी। तुम क्या यह समझ बैठी हो कि मैं जन्म के बडप्पन को माननेवाला आदमी हूँ ? "

समाजवादी वृत्ति को अपनाकर जातीयता का सम्पूर्ण खण्डन करनेवाले किसी नेता की पुरजोश भाषा में मैं कहता रहा,

" लेकिन तुम मुझसे झूठ बोली। क्यों ? तुमने मुझे फँसाया, क्यों मुझे अधेरे में रखती थी, आखिर क्यों ? "

अपने वक्तृत्व (?) का परिणाम देखने के लिए मैं कुछ थोड़ा समय रुका। वार कामियाब था। डर के मारे सिहरते हुए वह कहने लगी,

" नहीं—नहीं। ऐसा मत कहे आप! समगुच ऐसा कुछ मैं नहीं चाहती थीं। मेरी कुछ सुनिए तो।–यकायक अपनी... अपनी जात कहने को मेरा मन सकुचाता था। मुझे डर लगता था कि आप को मेरी जात पाँत मालूम होने से, आप मुझे ठुकरा देंगे। मैं ने झूठ कहा था...लेकिन मैं आपको धोखा देना नहीं चाहती थी। "

" दग़ाबाजी करती थी, दगा कर रही थी। याद है तुम्हें..., मैं तुम्हारे पास आया था, जरा नजदीक आया कि पतिव्रता का बहाना बना कर मुझे दूर ढकेल दिया। क्यों रचा था वह इज्जत की नाक रखने का नाटक ? इज्जत का खयाल उस जोशी व देशमुख के समय कहाँ गायब हुआ था ! क्या भूल गयी हो वह किस्से ! "

उसका चेहरा दयनीय भावों को बतलाने लगा। होंठ विकलता से काँपने लगे।

" तो यह बात है ! " कड़ुआ जहर बिखेर कर उसने कहा।

" अच्छा है कि तुम ये नाम अब भी भूली नहीं हो। इसके अलावा वह बँगाली लड़का भी तुम्हें याद होगा—बॅनर्ज़ी कहते हैं उसे। "

उसकी झुकी नज़र यकायक ऊपर उठी। मैं आगे कहने लगा,

" तुम्हारी यह दलील होगी कि खुशी न होते हुए भी उसने जबर्दस्ती की। यही न ? तो फिर जोशी और देशमुख इनके बारे में क्या है ? क्या उन्होंने भी ऐसा ही किया था ? ... तुम ही उनके पास चली गयी थी। उन बेचारों को धोखा देने की तुमने बेहद कोशिश की। जिस तरह तुमने मुझे दगा करने का यह सारा खतरनाक खेल रचा हैं। तुम्हारे साथ मैं ब्याह करूँ इसलिए कोई भी शरीफ़ घर की, कुलीन घर की लडकी जो कभी भी नहीं देना चाहती उसे तुमने हफ्ते ...हफ्ते से मुझे रिश्वत के तौर पर दिया। मुझे लालच दिखाती थी। सच कहो, ऐसा किया था या नहीं ? "

" ना... ना! मेरे ईश्वर! राम–कसम! " रोती हुई वह कहती गयी :

" आपको कुछ गलत बतलाया है। इस से पहले मेरे हाथों से ऐसा कुछ नहीं हुआ है। "

" जोशी–देशमुख को तुमने भले अधिक कुछ नहीं दिया हो, लेकिन कम से कम कुछ देना ही पड़ा होगा न ! फिर से सच बतलाओ ? "

वह चुपचाप खडी थी। आँखों में भय था। अब मानों पैर तले की धरती नीचे धँसती जा रही हो! परिस्थिति के डोर मेरे हाथों में थे, उस में हार जीत का फैसला तय करना मेरे बस की बात थी। मैं ने नुकीली तलवार के आड़े और खड़े पट्टे लगाना शुरू किया :

" ये झुठ नहीं है ! वे लोग बाल बाल बच गए! खैरियत समझो बड़े चालाक लडके थे वे लोग। लेकिन तुमने अपनी ओर से मकडी की नाईं अपने जाल में फँसाने की भरसक कोशिश की। तुम्हारा सुहाना आकर्षण, तुम्हारी मिन्नतें, इस मीठे फ़रेब की मिठास चख कर वह हाथों हाथ भाग गए। खैर; वह एक अलग कहानी है। लेकिन उस किस्से के बारे में मुझे कुछ भी कहने को तुम्हारा मन नहीं चाहता था! क्यों नहीं बतलाया मुझे ? मैं ने एक बार पूछा था कि क्या ऐसी कोई बात इससे पहले कभी हो ही नहीं चुकी है ? याद है, याद है तुम्हें ? "

आँखों को उसमें गड़ाकर मैं पूछता गया। उस ने मेरी नज़र से अपनी नज़र हटा दी। मैं आगे कहता ही रहा,

" मानों मेरा हाथ लगते ही तुम्हें सौ बिच्छु चुभते थे। तुम ये स्वाँग रच रही थी, उसी वक्त मैं ने यह सवाल पूछा था, समझी तुम ? उस वक्त जोशी – देशमुख के बारे में तुम सब कुछ भूल गयी थी! उस 'बँगाली बाबू' का भी जिक्र नहीं किया तुमने। उस समय भी तुमने मुझे सरासर धोखा करने की कोशिश की!

" ना... ना...! सच कहती हूँ! मैं धोखा देना बिल्कुल नहीं चाहती थी! " सिसकियाँ मसोसना एक साथ घुल मिल गये थे।

" मुझे डर लगता था कहीं...! कितनी बार यह सब बतलाने के लिए मैं ने कोशिश की लेकिन धीरज खो बैठती थी। सच कहती हूँ, कई बार कोशिश थी लेकिन, लेकिन मैं कुछ कह न सकी आपको!"

" जानती हो इस न कहाई देनेवाली प्रवृत्ति को 'दग़ाबाजी'— 'फँसाना' कहते हैं ? जानती हो... एक बार सिनेमा में दो चिकने रंगीले सेठिया मिलें थे! उन्होंने तुम्हें बुलाया, और तुम उनके पास जा कर बोलती बैठी! "

" वह तो हमारे सेठजी के रिश्ते में होते हैं। "

" ये तुम मुझे कहो, और मैं इसे सच मान बैठूँ! सहज ही में सच बोलने वाले कौन है आजकल ? मेरा और तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, तुम यहाँ किस लिए आती हो और क्या करती हो क्या ये सब बातें तुम किसी के सामने थोड़े कबूल करनेवाली हो ? अगर मुझे कोई पूछे तो मैं भी साफ़ साफ़ इन्कार ही करूँगा, सच है न ? तो क्या अपना यह कहना तुम सच मानोगी ? "

वह ठिठुरी शिशिर वृक्ष की भाँति निर्वाक् और निस्पन्द थी। मानों अपने संपूर्ण अपराधित्व के बारे में उसके मन ने उसे कोसना शुरू किया था। बात बात पर, पलपल पर मुझे ऊबाने वाली उसकी वह टें टें मैं सदा के लिए समाप्त करना चाहता था! सारी बातों का पोल खोलते हुए मैं ने फिर से कहना शुरू किया :

" मैं तुम्हारे नाज़ से और नखरे से भूल जाऊँ, इसलिए तुमने बात बात पर मेरी राज़ी खुशियाँ अपने में अपनाने की कोशिश की! तुम्हारे सिन्दूर को देखो क्या कहता है वह ! तुम्हारी नौ

अनुक्रमणिका





गजिया साडी से पूछो, बालों को सँवारने का वह तुम्हारा ढँग... सब कुछ कैसा बना सिखाया स्वाँग है? फरेबी दगाबाज़।"

"ना... ना।" वह विकलता से आर्त स्वर रो उठी। "मैं क्यों स्वाँग रचूँ? मैं ने जी लगाकर वह अपनाया था।"

"हाँ। जी लगा कर तुमने उस स्वाँग की रचना की।" निर्दय भाव से मैंने कहा। "और तिस पर तुम हिरा को बुरा कहती हो, अब तो परीन बेचारी भी बुरी बनी है।"

अब उसका मन अधिक सह नहीं सकता था। आकाश फँट रहा था, कहाँ तक थिगली से उसके संरक्षण करेगी? कहना तो था बहुत लेकिन शब्दों की ढूँढ ढाँढ़ करने पर भी वे कहीं लापता बने थे। और कोई चारा न पा कर वह यकायक मेरे पास आयी। डूबनेवाला मनुष्य जिस भाव से सहारा खींच कर पकड़ता है, उसी ढंग से उसने मुझे कस कर पकड़ा और एक सा एक ही जप करते लगी.

"आप मेरे हैं। आप क्या जानो?...आप मेरे है। मैं कभी नहीं छोड़ूँगी आपको। आप...मेरे हैं।

उसका पकडना प्रति पल पर सख्त बनता जा रहा था! मानों वह सोचती हो कि इसी कृपण प्रेम के अथाह भाव से नहलाऊँ। लेकिन मेरे प्राण मानों, घोंटने लगे थे। उसके इस स्पर्श में पाई जाने-वाली वह खींचावी और मदमाती गन्ध अब गायब थी। उसका स्पर्श मेरे लिए कोई आकर्षण की वस्तु न थी। उसे इस सत्य का ज्ञान हुआ था, इसीलिए वह दिलोजान से मुझपर करने कब्जा की पूरी कोशिश करती थी। उसके प्राणों को किसी भी तरह से अपनी बाजी जीतनी थी। जीवन व्यथासक्त हो कर फूट फूट कर रोता था। वह मुझे केवल अपना, और केवल अपना बना कर रखना चाहती थी। लेकिन कौन किस के लिए रुकता है? जीवन प्रवाह में हम सब अपनी चाह के लिए कभी रुकते हैं। उस अवसर पर सब कुछ खो भी देते हैं; लेकिन उस के बाद? किसी के लिए भी रुकना फिजूल मालूम होता है। मैं जानेवाला था। और हाथों हाथ बचने के लिए पेरीन ने दिया हुआ अवसर अनजाने में मेरे पास आया था जो मैं शायद कमी भो न बोलता, उसे कहने मौका आया था। मुझेयकायक जो कुछ हो चुका है उसका ज्ञान हुआ। जिसे मैं इतनी असानी से तोड़ सकता, उसे मैं बडी सरलता से खण्डित कर न सका।

मुझे अपने साथ पूरी तरह बाँध रखने की जो अहं की प्रवृत्ति सुरंगा ने दिखाई थी, उसी के बदौलत मैं यह कर सका। दर असल उसी ने मुझे मुक्ति का यह पथ दिखा दिया। अपने साथ बाँध कर रखने के इस दुराग्रह के कारण वह अन्यथा जो कभी न करती, आज उसे अनजाने में कर बैठी, खो बैठी। धरती की दरारें खुली बनीं। आज पेरीन आयी थी, इस लिए मेरा सौभाग्य जाग उठा, उस वक्त हिरा आयी थी, इसलिए उस वक्त भी मेरा सितारा बुलन्द हुआ था। किस्सा लगभग ऐसा हो है।

सुरंगा दरवाजे के भीतर कदम बढ़ा रही थी उसी क्षण हिरा भी दरवाजे से बाहर निकल रही थी। मानों टकरा रही थी। हिरा फूले चेहरे से, मतवाली चाल से, चमकती आँखों से, बिखरे हुए बालों से अशब्दों में कोई रोमानी खबर कहती थी। आँखें सुस्त थी फिर भी चमकीली थी। सुरंगा ने पल भर के भीतर यह सब देखा और आहत मृगी की भाँति देख कर मुझे पूछने लगी,

"क्या चल रहा था यहाँ?"

"ना...कुछ भी नहीं।"

"आपका चेहरा कुछ अलग ही कहता है।

"मुझे तुम्हारी सूरत बीमार-सी लगती है। क्या तुम्हें कुछ होता है?"

"बहुत कुछ होता है, आपको मुझ पर दया भी नहीं आती!"

"तुम ही मुझ पर दया नहीं करती! तुम मुझपर विश्वास नहीं करती।" मैं ने अपने हरवार के तराने की तर्ज़ को छेडा।

"हिरा पर आप विश्वास करते हैं?"

"ऐसा तो कुछ नहीं है। लेकिन वह मुझपर भरोसा करती है, यह वही कहती थी!

"यानी वह जो कुछ कहती थी, वह सच निकला।"

"क्या कहती थी वह?"

"कहती थी कि वह आपको चाहती है। आप उसे विश्वासपात्र मानते हैं! वह आपके लिये चाहे वह कर दिखाएगी।"

"और?"

"और यह भी बतलाती थी कि वह आपके लिए जो कुछ कर सकेगी उसे मैं किसी भी परिस्थिति में कर नहीं सकूँगी। क्या आप आप भी यही सोचते हैं?"

"बिल्कुल वैसा नहीं। लेकिन तुम मुझे दूर-दूर मत रखो..." मैं उसके पास गया और हाथों को हाथों में दबा लिया।

शरीर! शरीर तप्त हो रहा था। नसें फड़क उठ रही थी। खून तेज़ बन रहा था। आँखें उस में धँसती जा रही थीं।

"दूर हटो...। बाजू हटो...।" कण्ठ की ऊँघती आवाज़ मैं ने सुनी।

"किसी को दूर रखने से कोई बहुत दूर जाते हैं। क्या हिरा ने इस बात को तुम्हें नहीं बतलाया?" यह कहते हुए मैं ने उसे अपने पास, नजदीक खींच लिया। खींचता गया...और नज़दीक और नज़दीक...। वह सकपकायी, डर गयी, सहम गयी; चौंधिया बन कर मुझे हटाने की कोशिश करने लगी। लेकिन उसके इस विरोध में पुराने दृढ़ संकल्प का साहस और जोर नहीं था। उसका यह प्रतिरोध, इन्कार की उसकी भावना का आधार, मानों भय और मर्यादा का एक अंग मात्र था। सर्व समर्पण करने की उसकी मूक भाषा मेरी नस ने समझी ली।

विवाह का मूल्य न देते हुए पाया हुआ विवाह का वह आनंद। वह लाभ! अनायास? सहज और यकायक। प्रश्न जाग उठा कि सुरंगा ने आज इस तरह का बर्ताव क्यों किया। मैं उसका उत्तर ढूँढ रहा हूँ और कुछ सही अंदाज़ा लगा सका हूँ। हिरा उसे नीचा दिखाने की कोशिश में थी। पता नहीं हिरा को वह अपना सानी किस मतलब से माननी थी। लेकिन डाह, यौवन, मोह और आशा व इन सबों के साथ उसके मन में बसा मेरे भोले पन के बारे में भरोसा। सोचती होगी कि इस अन्तिम बन्धन की सहायता से वह अन्त तक मुझे बाँध रखेगी। इस खयाल में वह





रही होगी कि मैं इस वेदी को पार करूँ, कि जिस के बाद यह मुझ पर दूसरों से अलग, विशिष्ट प्रकार का अविशिष्ट अधिकार जमा सकेगी। इस अधिकार को चुनौती देनेवाली कोई भी न होगी। सब से ऊँचा अधिकार; वहाँ तक मेरे आसपास की कोई भी लड़की पहुँच न सकेगी। मानों मैं ने जो छाँग लगाई है उसे पार करनेवाली कोई भी न होगी! विश्वास के साथ कह नहीं सकता कि सुरंगा के विचार इसी प्रकार के ही रहे होंगे, लेकिन यह अनुमान मात्र है। चाहे कुछ भी हो, अपना उन मनोव्यापारों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे मैं कहते आया हूँ, केवल शरीर यही मेरा इकलौता विषय है।

सुरंगा के आँसू! सुरंगा बडी फूट फूट कर रोती थी। आँसू न रुकते थे न सिसकियों का ताँता रुक जाता था। जीवन भर के इस कशमकश में जिस धरोहर को कइयोंने छीनना चाहा लेकिन बरबस उसे बचाती रही, आज वही किसी ने हाथों हाथ लूट लिया। जो आधार ले कर वह कुछ नए जीवन की उम्मीद किए हुए थी, आज वह कल्पना का महल एक झोंके के साथ तितर बितर हुआ। रे भाग्य! जीवन – निधि रिक्त बनी। और उसके बाद उसने अपना सारा संकोच और लज्जा त्याग कर उसने मुझे अपनी बाँहों में पकड़ कर रखा। मानों वह सोच रही हो अबतक काफ़ी दूर रहे थे अब वह दूर रखाने वाला कोई पटल नहीं रहा है, अब दूर क्यों रहूँ?

ब्याह न होने पर भी ब्याही औरत के जैसा अधिकार जमाने की बातं वह हर पग – पग पर ठान लगा कर दिखाने लगी। किसी जोंक की नाईं मुझे हर कदम कदम पर रोक–टोक कर चूसने लगी। *Nagging* की कला को इतनी जल्दी से अपनाया कि मैं बड़ा तंग आया! भाई, ब्याही औरतों की हैरानियाँ पुरुष ज्यादह समय तक बर्दाश्त नहीं कर सकता तो अनब्याही औरतों की 'जी...हुजूरी' के लिए कौन मानेगा? और ऐसी पार्श्वभूमि को ले कर पेरिन दस्तूर दरवाजे से बाहर जा रही थी त्यों ही सुरंग उसे लगभग टकराते हुए अन्दर आ रही थी। तुम्हारी क्या राय है?

पत्र जरा बड़ा हुआ है। बीते हुए कई हसों को मैंने यहाँ एकदम थोड़े में लिख दिया है। *Flash back* आदि निवेदन की पद्धतियाँ यहाँ पर अगर अपनाई होंगी तो बस वैसे ही बिना किसी लक्ष्य को ले कर! काफ़ी हुआ, पूरा थक गया हूँ। सुरंगा से भी जी नाराज है; उस से ऊब गया हूँ।

उसके बारे में दीर्घ पत्र लिखने की बात भी अब मन नहीं चाहता। पेरिन दस्तूर *Comes as a very refreshing change though!*

तुम्हारा
— मधु



२७

बिन्सेण्ट रोड,
दादर,
७ नवम्बर ३७

प्रिय गोपाल,

सुरंगा आती है; क्यों नहीं आएगी? दिल के हजार टुकड़े हुए हैं, इस ढँग से उसास छोड़ती बैठती है। कभी कभी बीच में यकायक रोना शुरू करती है। पागल लड़की अपने आँसुओं को बे मोल में कौड़ी दाम में बहाती है। हम थोड़े नमक के देवता है जो इस पानी में घुल जाएँगे? अगर घुलने वाला होता तो क्या इस से पहले ही पिघल नहीं जाता? इन आँसुओं को किसी और के सामने बहा कर अब भी बहुत कुछ बनाया जा सकता है, चाहता हूँ कि ईश्वर करें, और वह समझे।

उस की मरम्मत करने का रास्ता मैं पहले ही से जानता हूँ। उसे न के बराबर गिनता हूँ, उसे अनदेखा मानता हूँ। उस की ओर ध्यान ही नहीं देना। कभी कभी सुरंगा और पेरीन दोनों एकदम एक साथ आती हैं। तब मैं सिर्फ पेरीन से अपना नाता रखता हूँ। *I just ignore her!* बस्; केवल यही कर रहा हूँ, और करूँगा। भला तुम क्या कहोगे?

— मधु

२८



विन्सेण्ट रोड़, दादर, बम्बई
ता. १२ नवम्बर ३७

मेरो गिरिधर गोपाल,

तुमने कमाल किया, मेरे मालिक! आजकल तुम्हारी तबीयत का क्या हाल है? तुम ही वह हो जिस ने कुछ समय से पहले मुझे हिदायत दी थी कि अगर लड़की को हज़म नहीं किया जाता है, तो बेहतर है कि प्यार ही न करो; वही तुम प्यार न करते हुए लड़की को आसरा देने की बात सुझा रहे हो। तुम्हारी यह उलटबाँसी मैं नहीं समझा सकता। कहीं तुम पागल तो नहीं बनें? तुम्हारी राय में वह लड़की अच्छी है और इसी लिए मैं उसको संसार के इस बीहड़ बन में बेआसरे और बेसहारे न छोड़ूँ! और ब्याह करूँ? यही है न तुम्हारी समदर्शी राय? बलिहारी है गुरू! तुम उसकी भलाई और अच्छाई के बारेमें इतने ठोस इतमिनान से किस कदर बता सकते हो इसका रहस्य मैं समझा नहीं सकता। तुम्हारा आधार केवल मैं ने लिखे हुए पत्र ही है न, कि और कुछ? तुम सचमुच कल्पना प्रधान निरे लेखक हो! मैं एक पूछूँ, तुमने जो लिखा है क्या उसे तुम भी समझ सकते हो? या मैं समझूँ कि तुम्हारा जिब्रॉन (गिब्रान) हुआ है?

वह अपना जीवन नए सिरे से शुरू करें, और उसके बारे में मैं यह नया पथ खोल दूँ, क्या यह मेरा काम है? मैं मानता हूँ कि किसी दूसरे महान्, उदरात्मा के लिए इस काम को बचत के रूप में रखूँ। मैं तुम्हारा दोस्त बना, क्या इस लिए तुम चाहते हो कि अपने जीवन को मैं बरबाद करूँ? मैं उसका जीवन बनाऊँ और अपना संकल्प बिगाड़ूँ, तुम यही चाहते हो? तुम्हारे पत्र का मतलब इस से और कुछ अलग नहीं हैं। कामना के अवसर पर खोया हुआ आँतर्जातीय विवाह का समाजोन्नति का, कार्य इस अवसर पर पूर्ण करूँ, यह भी तुम चाहते हो? और यह सब करने के लिए मैं पिताजी की इच्छा, अपनी तमन्ना, अपना अरमान, दौलत, यश, कीर्ति इन सबको बलि वेदी पर चढाऊँ? तुम सचमुच बडे नीतिवादी मित्र हो, नहीं तो इस तरह का उपदेश देने के पचड़े में कौन पड़ता! उसके जीवन का 'नया द्वार' खोलने का मौका देने के लिए, समझो कि मैं ने उस से ब्याह किया, और ब्याह के बाद

अनुक्रमणिका

उसके पुराने आश्रयदाताओं ने मेरे दरवाजे पर भीड़ का तौंता लगाया तो, हे मेरे मित्र! यह बतलाओ कि 'इस नए दरवाजे' को खोलने के मौके के बदौलत किस के मुँह में कालिख लगेगी? मनुष्य जीवन पारस्परिक विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण है। मन की अंदर की गुत्थियाँ इतनी जटिल हैं कि उनको सुलझाते सुलझाते दिमाग चकरा जाता है। इस लिए पूछता हूँ कि इसका कौन भरोसा करें कि उसने अबतक जो कुछ किया होगा उसको वह बाद के जीवन में पूर्णतः छोड़ देगी? कहते हैं कि हमारी जिंदगी समय के साथ खेला जानेवाला एक जूआँ है। लेकिन सुरंगा के साथ का यह जूआँ मुझे तबाह कर देगा, सच्ची कहता हूँ। क्या तुम यह चाहोगे कि वह अपना नाश अपनी करतूत से करें? जहाँ तक मैं सोच सकता हूँ, विश्वास से कहूँगा कि मैं उसे शायद ही बरबाद करूँगा, हालाँ कि वह पूरी तरह से मेरा सर्व नाश कर डालेगी! बातें साफ साफ। हैं अगर दोनों में से किसी एक को कुछ भुगतना पड़ने वाला है तो बेहतर है कि वह इस सजा को भुगते। मैं नहीं चाहूँगा, किसी भी तरह की सज़ा! भाग्य की क्या कहे, हो सकता है कि हम दोनों में से कोई भी बरबाद नहीं होगा, जो दरअसल दोनों के लिए अधिक भला होगा। कामना ने मुझे धुत्कार दिया, क्या इसीलिए मैं गिर गया! तुम मुझे उपदेश देते हों, कहीं अक्ल के पीछे लट्ठ ले कर घूमता नहीं रहे हो?

सच ही है, मैं ब्याह करनेवाला हूँ! लेकिन संसार के चार भले आदमी जिस तौर तरीके से ब्याह के गठबंधन से शोभायमान होते है, वही मेरी राह होगी। प्यार का उधार और नुकसानी खाता आयंदा बंद! कामना के बदले अगर पहली ही बोर मुझे सुरंगा मिलती तो मैं जरूर उससे ब्याह करता! खैर! अगर मैं देवता होता वाली यह बेहुदी बात है, जो तर्क के आधार पर कभी खरी उतर नहीं सकती। कामना ने किए हुए अपराध का दंड किसी दूसरी निर्दोष लड़की दे रहा हूँ, यह तुम्हारा अभियोग बेहुदा है! किस बूते पर तुम उसे निर्दोष मानते हो? मनोविज्ञान की उल्टी टेढी सीढियाँ मेरे बस की बात नहीं! लेकिन यह चौड़े प्रकाश की जैसी सत्य बात है कि उसने मुझे दगा दिया। भाई, एक बार नहीं कई बार! जहाँ ढूँढे, फरेबी यह वजह है और दगाबाज़ी उसका नतीजा है। खैर, यह सब किसी खास तहपर चलता जाता है। उसका मतलब भलाई का था, या बुराई का था इस से मुझे कुछ ताल्लुक नहीं। मैं यही देखता हूँ कि उसने कई बातें जान बूझ कर छिपा रखी! मैं थोड़े ही धर्मराज हूँ कि पूरी सचाई को निभाऊँ? तुम जानते हो कि बगैर किसी अपराध के मैं लातों का गुलाम बना — कामना की वह बेहया कहानी! यहाँ पर दाँव उल्टा है। मैं ने अपने बोझ को दूसरे के हवाले किया है। तुम चाहते हो तो कहो कि एक लडकी ने मेरे बारे में जो किया। वही मैं ने किसी और लड़की के बारे में कर के बदला लिया। भाई, यह सब एक विकट यंत्रणा है। सुरंगा, इस बोझ को किसी दूसरे के हवाले करेगी। इसीलिए कहता हूँ कि यह सब घोर षडयंत्र है। मै ने संसार के इस दस्तूर को न कुछ बिगाडा है न कुछ उसमें तरक्की की है। मेरी मामूली चाह है कि, मैं अब घुला जाना नहीं चाहता और तुम वह रास्ता सुझाते हो जिससे मैं जरूर घुला जाऊँगा। फिर से कहता हूँ नानी के आगे ननिहाली क्यों? समाचार लिखते जाओ।

तुम्हारा
बंधु



२९

विन्सेण्ट रोड, दादर,
५ जनवरी, ३८

प्रिय गोपाल,

नमस्ते। तुम्हारा पत्र ईद के चाँद की खबर बनकर आया। बेमतलब से किया हुआ गुस्सा, बेमतलब से उड़कर चला गया होगा। यह मैं मानकर चलता हूँ बेटा! लडकियाँ हजार हैं, उनमें से किसी एक को ले कर अपने मित्र से झगाड़ करोगे? और ऐसी एक लड़की के बारे में जिस की सूरत को भी तुमने देखी नहीं थी। तुम क्या, सचमुच, मानते हो कि इस मामले को ले कर हम पुराने साथी एक दूसरे से अलग हो जाएँ? उसकी योग्यता भी क्या? और एक बात है, हौलेहौले वह लड़की भी मेरे इस जीवनप्रवाह के दायरे से बाहर चली गयी है। मेरा अंदाज सच्चा निकला था। कई दिनों तक वह अटूट मेरे यहाँ आया करती थी। मैं ने उसके बारे में बर्ताव की एक ही रट तय की थी। मैं उसे अनगिना करता था। पहले पहल उसके आने में बडा उतावलपना था, लेकिन कुछ ही दिनों के भीतर वह समझ गयी कि मैं उसके बारे में उदासीन हूँ, यहाँ तक कि मैं कुछ हद तक नफ़रत करता हूँ। इस बात का जब उसे पता चला तब वह हैरान हुई कि उसने मेरे नज़दीक आना भी छोड़ दिया। सारा हौसला खो कर वह आती थी—कभी परशानसी, कभी मिन्नत करती हुई, कभी मुझे कुछ कड़ा सुनाने के लिए। वह आती थी और सिर्फ़ लगातार एक टकी लगा कर देखती रहती, उसासों को छोड़ती रहती, नहीं तो आखिर में रोना तो उसके बाँझे हाथ का खेल था ही।

आखिर का किस्सा है; एक दिन उसने सचमुच मेरे गले में पड़ कर कलेजा फँटने की नाईं फूट फूट कर रोना शुरू किया। लगातार रोती थी वह, तब उसने कहा :

"क्या इसी तरह मैं मिटने वाली हूँ? मैं ने कौनसा अपराध किया है, कि जिस के कारण आप मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। क्यों हटा रहे हैं, मुझे?" मैं ने कुछ भी कहा नहीं!

कंधों को पकड़कर मुझे हिलाकर वह धँसती आवाज़ में कहने लगी :

"आखिर आप ही के हाथों मेरी हत्या होनेवाली थी! रे ईश्वर!"

मैं चुपचाप था।

"बोलिए बोलिए तो ..." मेरे कँधों को हिलाते हुए उसने मुझ पर अभियोग लगाया :

"मैं ने क्या किया है बतलाइए तो! मैंने कौन सा गुनाह किया है, क्यों मुझे गर्त में ढकेल रहे हो?"

उसका स्पर्श! उसका स्पर्श जोंक की नाईं चूसता था, मैं ने बेदर्द हो कर कठोरता से कहा :

" तुमने यहाँ पर जो किया था क्या उसे कहीं दूसरे टिकाने पर नहीं किया होगा ? साबित कर के दिखाओ। तुम्हारा इस बुरी तरह मेरा पीछा करना किसी कुलीन शरीफ लडकी को जेबा नहीं देता। समझी ? "

" और आपका वर्ताव ? मेरे पाप में आपका कोई हाथ नही ? "

" कुलीन, भले घर की लड़की के साथ, मैं कुलीनता से वर्ताव रखता, तुम्हारे जैसी लड़की के साथ कुलीन पुरुष भी किस और तरीके को उपयोग में लाता ? बतलाओ ? "

कुछ देरी तक वह आवाक् और अवर्णनीय दृष्टि से निर्निमेष देखती रही। आँखों में आग और पानी एक साथ धधक कर मँडरा रहा थे। कुछ क्षणों तक वह उसी ढँग से मुझे देखती रही। और अन्त में अजीब स्वर में दबी चीखती रुलाई सुना कर वह यकायक सिढियाँ उतर कर देखते देखते गायब हुई।

उसकी वह नजर, वह चेहरा, वह चीख देख कर पल भर मैं सिहर गया। सोचा कि दौडते दौडते जाऊँ और पहले के जैसी पुकार करूँ, " सुरंगा, सुरंगा...... जरा आओ तो यहाँ। "

सीढ़ियों को धड़धड़ाहट से तोड़ती हुई दौडने वाली नायिका और उस के पीछे विकल स्वरों से आर्त क्रन्दन करते हुए ललकारने वाला नायक। बिल्कुल नाटक। सिनेमाई हकीक़त होगी वह। किसी की बॉक्स हिट वाले सिनेमा में यह दृश्य देखने को मिलेगा। मैं यकायक होश में आया। मैंने पहले की कल्पना की बेहद रोमानी हाल्त को गौर किया और मुझे अपनी ही शर्म लगने लगी। मानों मैं बाल-बाल बच गया।

गोपी, यह सारा मामला यहीं पर रुका, बडा अच्छा हुआ। मेरी परीक्षा अप्रैल में है। मुझे 'फिर से एक बार' की कतार को बाँधना नहीं है। विदेश जाना है एक नर्सिंग होम बाँधना है, और वह यहीं पर इसी बम्बई में। लड़कियों की ब्याहनी बाजी में अटकता रहा कि पूछो मत, आगे क्या होगा।

—मधु



३०

बर्वेज़ नर्सिंग होम,
शिवाजी पार्क,
बम्बई,
८ जून ४७

प्रिय गोपाल !

तुमने भेजे हुए उपन्यास मुझे मिल गए। यकायक इतेने सालों के बाद देखा हुआ तुम्हारा पत्र और तुम्हारी पुस्तकें देख कर मुझे आश्चर्य हुआ। सालों की कतारे गुजर गयीं, और आज तुम्हारा पत्र मिल गया। तुम्हारा पत्र पाते ही *Felt like old times* ! यह जीवन बड़ा अजीब है। नहीं तो एक दूसरे के इतने घने साथी होने के बाद भी लगभग कई महीनों तक या सालोंतक पत्र लिखने की भी फुर्सत नहीं पा रहे हैं। तुम अपनी वकीली में फँसे हो, और मैं भी अपने पेशे में उलझ गया हूँ—जहाँ तक मेरा अनुमान है तुम वकीली की अपेक्षा लेखन में ही अधिक समय बीता रहे हो। मेरा हाल मत पूछो, भाई ! औषधालय और शुश्रुषालय दोनों बड़े अच्छे पैमाने पर चल रहे हैं। अलावा मेरे मेडिकल कॉलेज में ही 'ऑनरेरी' के रूप में नियुक्त हो गया हूँ। सप्ताह के तीन दिन जाना होता है—इस से भला पैसा न मिलें लेकिन 'सम्मान' तो काफ़ी मिलता है। प्रॅक्टिस के हिसाब से इस *position* का बड़ा लाभ होता है। जानते हो मैं ऑनररी किस विषय के सम्बन्ध में हूँ ? गुप्त रोग और चर्म रोग—मेरा फ्रेंच डिप्लोमा इन्हीं विषयों का है। खैर, तुम्हारे उपन्यास मेरी पत्नी ने पढ डाले हैं, और उसे पसन्द आए। मैं भी समय बचाकर कभी पढ़ डालूँगा। मेरी जिन्दगी आजकल इतनी तेज घुड़दौड बनी है कि अमन-चैन से बैठ कर जीऊँ वह भी मयस्सर नहीं होता। इसलिए पढना-लिखना कोसों दूर रखना पडता है। तुम्हारी पत्नी को मेरी पत्नी और मेरा नमस्कार कहना। बच्चोंको आशिर्वाद। पत्तोत्तर की कामना है।

तुम्हारा
—मधु

पुनश्च :

तुम्हारे उपन्यासों के ढेर को देखकर याद आयी। लगभग दस सालों से पहले मैं ने तुम्हें लगातार कई खत भेजे थे। तुम कहते थे, उसका विषय उपन्यास की रचना के लिए बड़ा अच्छा है। क्या है कोई किताब लिखी है उस विषय को ले कर ?



३१

बर्वेज़ नर्सिंग होम
शिवाजी पार्क : बम्बई
१० अगस्त १९४९
रात्रि : १॥

गोपाल,

क्या हुआ होगा, जानते हो तुम ? क्या हुआ होगा ? तुम तो फिर कल्पना करो, सोचो कि क्या हो सकता है और फिर बतलाओ कि क्या हुआ होगा ? *Oh, the irony of it, all the tragedy of it* ! तुम्हें ये पत्र लिखनेवाला कौन आदमी है, जानते हो तुम ? एक भला आदमी, एक नामवर डॉक्टर ? ना—नहीं—नहीं—। एक अधम, नीच, कमीना। गुनहगार हत्यारा। खूनी हत्यारा। हाँ, सच कहता हूँ। मैं सख्त और खतरनाक गुनहगार। इस देश का कानून भले मुझे गुनहगार न गिनता हो लेकिन मैं गया बीता, कमीना, पापी मनुष्य हूँ।

मेरा जी चाहता है कि रास्ते पर जाऊँ और जोर से चिल्ला कर हर किसी को बतलाता जाऊँ कि मैं एक वहशी हूँ। मैं ने इन्सानियत को डूबो देने का एक कमीना काम किया है। आइए, मेरे मुँह को कालिख लगाइए। गाँव में ढिंढोरा पीट कर मुझे नीचा दिखाइए। आदमी के भेष में सजे इसे बेरहम पशु को फौरन आदमियों की बस्ती में से दूर फेंक दो। हजारों टुकडे करो, इसे काँटो। चाहिए उस ढँग से इस को तड़पा तड़पा कर सताते जाओ। उस ने जो तड़पना सहा होगा, उसी तरह का तड़पना इसे दिलाओ। यह तो कोई नामवर डॉक्टर बर्वे नहीं है, यह कमीना जाति का कोई जालीम वहशी है।

बिरादरी के लिए यह एक कलंक है। निरपराधों की हत्या से इस के हाथ लथपथे हैं। लोगों, थूकिए इस पर! क्या तुम लोगों की इन्साफ, न्याय करने की बुद्धि गुम हवा बनी है? इन्साफ चाहिए लोगों, इन्साफ़ चाहिए! क्या आँखें अन्धी बनीं? अब भी इसे दूर ढकेल देने के बारे में तुम लोग लापरवाही करते हैं? कोढ़ी को जिस दिलचस्पी से समाज से दूर फेंका, ठुकराया जाता है, उसी तरह इस आदमी को भी बाहर निकाल दो। अब भी यह समाज में एक प्रतिष्ठित की हैसियत से प्रतिष्ठा बघारता घूमता है। अब भी इसे क्यों सज्जन माना जा रहा है? आओ, सब आदमी आओ और इसके बदन पर थूँको। आओ, सारे तमाम लोग आओ और इसको टोकरें लगाओ! क्यों कि यह जाहिल है। गुनहगार है। साँप है, हत्यारा है। देखिए खून से लथपथने वाले इसके हाथ।

गोपाल! मैं पागल नहीं बना हूँ। मैंने अपने को सम्भालने की भरसक कोशिश की, लेकिन मैं अब पागल बनते जा रहा हूँ।

क्या ऐसी परिस्थिति में मनुष्य आत्मघात करता है? होगा, लेकिन मैं नहीं। मैं आत्मघात कर सकूँगा। क्यों कि मैं डरपोक हूँ, सच कहता हूँ, मैं कायर हूँ। बुरी तरह से अपने ही स्वार्थों में रेंगनेवाला एक बिलबिलाता कीड़ा हूँ। मेरे पास बहादुरी है, इसलिए अगर खुद खुशी करना चाहूँ तो भी वह कर नहीं सकूँगा। मैं इस शरीर से बड़ा बेहद बाँधा गया हूँ। लोभ छुटता नहीं है। शरीर से मोह है, दौलत से प्यार है और नाम बढाने की अज़ीब हवस है। इन सबों के कम्बल को ओढ़ कर मैं जीता जाऊँगा। इस लिए मेरी प्रतिष्ठा के बारे में कोई भी उंगली उठाने का साहस नहीं करेगा; और मैं जैसे अब तक जीते आया हूँ, वैसे ही आगे जीता जाऊँगा। चाहता हूँ कि जी भर रो लूँ। मन मसोसता है। औरत बारबार पूछती है कि क्या हुआ? पूछती है, कि क्या हुआ? ताज्जुब है, क्या हुआ है इसे अगर कह दूँ, तो उसके बदनपर नफरत के रोंगटे खडे होंगे; फिरसे नहीं चाहेगी कि इस घृणित पशु को छू दूँ। मैं उससे भी अपने को बचा के रखूँगा। फरेबी, हाँ, मैं उसके साथ भी फ़रेब खेलनेवाला हूँ! गोपाल! हजारों बिच्छुओं की जहरीन काँट मन को काँटती जा रही है। अपना दिल हल्का करना चाहता हूँ, तुम्हारे सिवा संसार में और कोई दूसरा ठौर कहाँ, कि जिसके पास जा कर अपनी बात कहूँ? मैं ने जो कमीना काम किया है वह बेज़बान है। मुझे जो ग़म है वह बेज़बान है। कोई भी भाषा इन्हें कह नहीं सकेगी। यह कमीनापन शब्दों में नहीं कहा जाएगा और इस सदमे को दवाई का मरहम काम नहीं देगा। *Oh the irony of it–all the irony of it!* बीता जीवन मैं सरासर भूला गया था। मानों कभी भूल से भी अपने हाथों कोई जाहिल काम नहीं हुआ था, मानों सुरंगा नाम की लड़की मेरे लिए अजनबी थी। वह किस चिड़िया का नाम है, मैं क्या जानूँ? दिल को बेहया बनाकर मैं ने उसका गला घोंटा था। जिस गलेको कई बार प्यारसे चूमा था, उसको मैंने कभी जाना नहीं था; इसलिए बे रहमी से किसी हत्यारे के जैसा मैं उसकी गर्दन छाँटने के लिए उतारू बना था। संसार मुझे एक अच्छी नियत का आदमी समझता था और मैं भी अपनी अच्छाई के बारे में कभी शक्की नहीं बना था। ठीक है, यह तहज़ीब का तकाज़ा है। गुनाह पकडा तो महाशय गुनहगार; चोरी की और पुलिसने पकड लिया तो महाशय चोर; संसार के इस दस्तूर में जो कानून की चहार दीवारों में फँसता हैं, मान लो वह बहुत बुरी तरह फँसता है—संसार उसे उचक्का, चोर, फरेबी, दगाबाज, चाहे उस नाम से पुकारना शुरू करता है। और अगर, वह कानून से पकड़ लिया नहीं जाता तो—? उसकी करतूत कितनी भी काली और बुरी क्यों नहो, कोई उँगली उठा कर कहने का ढाढस नहीं करेगा कि यह उचक्का, चोर, फरेबी, दगाबाज है—चाहे वह दस्तूर से बाँधा गया है। इसलिए कई पापियों को यह कानून रिहाई देता है। और इसीलिए पाप करने के बाद भी उससे बेखबर ऐसे अनगिनत तुम लोग भी अपने को अकलंकित, निर्दोष और पुण्यवान मान बैठते हो। आखिर यह तहज़ीब का तकाज़ा है।

ऐसी बात न होती सुरंगा की बदसूरत लाश हमारे अस्पताल के 'कोल्डरूम' में जाने के बदले आज मेरी लाश वहाँ गिरनी चाहिए थी। सुरंगा की लाश? हाँ गोपाल, मेरी सुरंगा की लाश।

जीता हूँ और जीनेवाला हूँ। रईस हूँ, बम्बई के एक नामवर अस्पताल का 'ऑनररी' हूँ, और उसी अस्पताल के 'कोल्डरूम' में उसकी लाश बेआसरा, बेसहारा देख रहा हूँ। जिसको मैं ने अपनी बीती जिन्दगी में कई बार, बारबार सीने से लगाकर प्यार किया, बड़ी अज़ीब मतवाली चाह से रहरहकर चूमा और आखिर जिसको दगाबाजी से भोंक दिया, उस सुरंगा की लाश देख रहा हूँ। यह लाश देखने लायक नहीं। यह लाश टूटी फूटी हड्डियाँ है, जिसको नंगी आँखों से देखना मश्किल है, ऐसी ठंडी ठिठुरी लाश! अपने जीवन के शुरू प्रभात में वह मेरे पास आयी थी। रे भाग्य! तुम कैसे हो? अब जीवन के आखिरी कदम पर भी वह मेरे पास आयी है। मानों मेरी और उसकी, हम दोनों की ज्यों ही पहली मुलाकात हुई त्यों ही मृत्यु के काले बादलों ने मँड़राना शुरू किया। सर्वनाश और बरबादी की साँया हमें छाया करने लगी। और अब उसके साथ जब मैं मिला हूँ, तब लगता है कि मैं ही वह जीता जी मौत का पैगम्बर था। गोपाल, सुरंगा के बारे में मैं ने किया हुआ बर्ताव, पाप बन कर मुझे रौंदने लगा है। सचमुच, मैं ही वह बहशी था, जिसने उसको जान बूझ कर आदमी बनने नहीं दिया। और आज उसकी जीवन यात्रा को भी जान बूझकर खण्डित करनेवाला घातक बना! कितनी सरलता से और सत्वरता से मैं अपने अतीत को भूल गया था! कितनी सहजता से मैंने अपने पाप को मन से हटाया था! बड़ी सफाई का काम है यह! उसने भी कोई हिचकिचाहट नहीं की! सुरंगा ने जीवन भर कभी किसी बात का आग्रह नहीं रखा! वह आग्रह और जिद करती भी क्यों? किस की चल सकती है जिद इस नमकहराम दुनिया में, दस साल बीत चुके हैं। मैं सुरंगा को भूल गया था।

यह भी एक कहानी है। हर दिन की नाई मैं अस्पताल के ऊपर के माले के अपने विभाग की ओर एक चक्कर लगाने के लिए निकला, तब कल्पना भी नहीं थी कि मेरे बीते जीवन के पाप की करतूत आज अपनी आँखों से जीते जी देखने वाला हूँ। क्या जानता





कि सुरंगा चिथडी, सडैल हालत में मेरे सामने खड़ी रहनेवाली है। क्या जानता, कि सुरंगा को बीहड़ शिकंजे ने बुरी तरह फँसाया है, और मैं उसकी दर्दनाक हालत निहारने जा रहा हूँ। क्या मालूम गोपाल भैया, कि मौत के दरवाजे में ढकेल देने के वहशी काम को करने के लिए मैं अपने मनहूस कदमों के कद बढा रहा हूँ।

....बारह नंबर की खटिया। किसी को भगंदर, किसी को लाल पानी, प्रमेह, किसी को शॅंकॅइड, कोई बेचारा इन तीनों से जकड़ा। हम अपनी शरीफ जिन्दगी में जिसे 'मुहब्बत' 'इश्क बाजी' कहते हैं उसके ये–मतलब में अधिक बहने की वजह पनपी हुई यह जहरीली बाग। हाँ, गोपाल यहाँ पर खूबसूरती नहीं है। यहाँ, कुछ भी सुहाना नहीं दिखता। यहाँ पर एक दूसरे के मिलन को तडपनवालों की आहें नहीं हैं। लेकिन जरूरत से ज्यादह मिलें इसलिए सतानेवाली कराहें सुनाई देती हैं। यहाँ पर सारी सुन्दरता बरबाद हुई हैं और कुरूपता और जीवन का घोर कलंक अधिकार जमा बैठ हैं। जिसके लिए लड़के और लडकियाँ, स्त्री व पुरुष, औरत व मर्द, युवक व युवतियाँ, बावले बनते हैं, जिस प्रेम के कारण संसार की हर शती पागल बनी हुई हैं, जिस के लिए मित्रों के गले घोंटे जाते हैं, जिसके लिए संसार को सल्तनतें डूब चुकी हैं, जिसके लिए मन, चञ्चल हो कर दरबदर भटकता जाता है, उसका यहाँ सारा सच्चा निचोड देखने को मिलता है। हाँ, यहाँ पर न कुछ सुहाना, न कुछ भुलावा देता था। यहाँ पर जीवन का नंगा यथार्थ, घोर वास्तविकता ले कर पशु और नारकीय रौद्र रूप कडी बदबू पैदा कर रहा था।...

बारह नंबर की खटिया। क्या जानता था, गोपाल कि यही पर मैं ने जिसे प्यार किया था उस सुरंगा को कुछ अलग ही रूप से देखने वाला हूँ। स्वप्न में भी कभी सोच सकता था कि बिछौने में किए जाने वाले अथाह पापों का शिकार बनी हुई, गरीब बेचारी, मेरी सुरंगा मैं देखने वाला हूँ।...सुरंगा।

मैं अपने बारे में क्या कहूँ? मेरा सारा शरीर तंदुरुस्त था, ना काहे की बीमारी, ना किसी भी तरह की शिकायत। शरीर के बारे में अगर कोई शिकायत करता, तो मैं उन्हें हँस सकता था, अगर कुछ इलाज करना है तो इलाज भी कर सकता। उन्हें हीन समझने की इजाजत मुझे थी। अँधे पाप के वे गुलाम बने होंगे लेकिन इस पाप के महल में पाप के परिणामों से दूर रहने की कला मेरे पास थी। यह दृश्य कौन महत्त्व का माने। फुर्सत कहाँ। न सावन सूखे न भादो हरे। एक ही रफ्तार से सब कुछ होता था।

यह दुनियाँ भी अजीब है। सचमुच सिर्फ अजीब ही नहीं, एक अजीब ढकोसला है। यहाँ जिन्दा रहना है तो इसके दस्तूर के मुताबिक चलना होगा। अखण्ड धारा है, जो तीव्र वेग से बहती है; हर किसी को यहाँ अवकाश नहीं कि सोच और समझकर अपनी गति विधि को तय करें। मैं भी उन करोडों में से एक हूँ जो इस धारा के शिकार बने हैं। आखिर जीना जो है।

बारह नंबर की खटिया! तैयार निगाह ने मशीन की जैसी जाँच पडताल शुरू की। बीमार का 'केस शीट' देखा। अस्पताल में होता है क्या? बिछौने, बीमारियाँ और दवाइयाँ। घना जमघट है, वह! मेरे लिए बारह नंबर का बिछौना यह एक बिछौना, खटिया है। अस्पताल की दुनियाँ में आदमी की परख उसके नस से नहीं होती, उस के 'केस शीट' से उसको 'पहचाना' जाता है। आदमी तो कई हैं, लेकिन हरएक के लिए एक–एक अलग 'केस शीट' है, यह अजीब बात हैं, भूलना नहीं। आदमी तो क्या, आते हैं और चले जाते हैं। कोई गीली जिन्दगी ले कर तो कोई जिन्दगी की लाश बनाकर; लेकिन चले जाते हैं यह सही। उनकी पहचान है, खटिया नम्बर। इस बिछौने का केसशीट जरा गौर करने लायक है। मैं ने दिलचस्पी से देखना शुरू किया। इस बिछौने पर लेटा हुआ बीमार – चाहे जो कोई हो कुछ अलग ही है। अपने पेशे में अपने धन्ध में नामवर और पहुँचा हुआ सिद्ध। मालूम होता है कि यह एक स्त्री है। छछोर इश्क बाजी में उसे ऊँचे ऊँचे किताब मिलें हैं। शॅंकॅइड, भगंदर, प्रमेह। कहान टेस्ट... कुल छ; वासरमन... भी लगभग उतने ही। बीमारी का इतिहास पूछने जाएँ? बडी दिक्कत है। बीमारियों के 'ओरिजिन', ड्यूरेशन और 'प्रोग्रेस' के बारे में कुछ देखना मुश्किल है। एक का 'प्रोग्रेस' और दूसरे का 'ओरिजिनल', सारे एक दूसरे में अपनावा पनपा कर घुल मिल गये थे। "ब्युबोज" कराहता था। शरीर में 'कामज्वर' अपना कायम बसेरा लिये हुए था। बुखार का दौर जारी था; अब तो एक सौ दो अंश। बारह नंबर की खटिया का "वह केस शीट" और "चार्जशीट" देख कर मेरे मन में कुछ गुदगुदी हुई। अपने साथी 'असिस्टण्ट ऑनररी' से पूछा—

"क्यों भई, आप ही ने ॲडमिट किया इस केस को?"

"जी हाँ। आप नहीं थे, तब।"

"कब।"

"कल ही।"

"*Oh! very interesting!*" मैं ने आश्चर्य बतलाया। और कौतुहल के कारण 'केस शीट' के दूसरे खाने देखना शुरू किया। नाम, उम्र, जात। और...? और— और मैं सिहर गया। नोंकदार छुरी ने मुझे जगाया। नाम सुरंगा शिरोडकर, उम्र २८, कहान टेस्ट...प्लस सिक्स,...टॅंपरेचर एक सौ दो। नाम सुरंगा शिरोडकर।...मैं सकपकाया। लगा कि अब गिरा...अब गिरा! ऐसा लगा कि सारी दुनिया घूम रही है; बिछौने पर दिखाई देनेवाला जवानी में बुढिया की सूरत से भरा वह स्याह चेहरा मेरी आँखों के सामने चक्कर काटने लगा। वह चेहरा!...

"*Anything wrong with you, Doctor?*" असिस्टण्ट ने हमदर्दी से पूछा।

"*Nothing at all!*" मैं ने अपने को सम्हालते हुए कहा।

कुछ न कुछ बहाना करना ही होता हैं; इसलिए मैं ने उसकी कलाई पकड़कर नस को नापना शुरू किया त्यों ही सुरंगा हँसी। बडी आवाज में नहीं, लेकिन जो शिष्टता के अनुसार भला, मर्यादायुक्त नहीं माना जा सकता, ऐसी हँसी मैंने सुनी। उस में बेशर्मी की बू थी, उस में रंडी बाजार का नखरा था। ऐसी हँसी होटों ही होठों में होती है। फस्...फुस...मैं ने उसकी ओर देखा था। मैं ने सुरंगा की ओर देखा।

(शेष भाग पृष्ठ ५४ पर देखिए)

॥ श्री ॥

दि महाराष्ट्र शुगर सिण्डिकेट लि., पुणें २

ऊख और शक्कर ये दोनों

॥ ये यथा मां प्रपद्यन्ते । तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥

इस गीता तत्व के हैं । वे, उसी प्रमाण में फलप्राप्ति करा देते हैं ।

ऊख

हल, खेत मशक्कत, चुर्नी बीज बोई, मौसमी
फ़सल तैयार करना, खत और पानी, साफ सफाई
इनकी ओर ध्यान देने से हर दूसरे साल हर
एकड़ पर ८० टन की ऊपज देता है । सुरू और
खोड़वा हर एकड़ में ५० टन से अधिक ऊपज देता है ।

अत्यन्त महत्त्व की दक्षता !

१५ अप्रैल तक ऊख से शकर बनानी होगी

अर्थात

१०० टन ऊख से १२० से १३० बोरे शक्कर मिलती हैं।

यंत्र सामग्री

ऊख में पायी जानेवाली अधिक से अधिक शकर चूस लेने के लिए तथा सफेद, दानेदार और चमक (Lustre) दार शक्कर तैयार करनें के लिए सम्भव हों उतनी बडी और अद्ययावत् सुधारों से युक्त यंत्र साधन सामग्री चाहिए ।

सिण्डिकेट की पहली यंत्र सामग्री २५० टनों की थीं, उस समय १०% मुनाफा बाँटा गया । अब तो हर दिन १००० टन ऊख को निचोड़ लें इतने बड़े पैमाने की यंत्र साधन सामग्री केवल सांग्राहकों की आर्थिक सहायता पर ही सिण्डिकेट शुरू कर सकी है ।

इसलिए

सिण्डिकेट को इसके बाद के काल में २०% प्रतिशत मुनाफा स्थायी रूपमें स्थिर रखना सम्भव होगा ।

WAIT AND SEE

हमारे हिज्जेदारों, सांग्राहकों, हितैषियों को
यह दीपावली व नूतन संवत्सर
सुखप्रद व शुभकारी हों

कॉमनवेल्थ बिल्डिंग, ६८० सदाशिव पेठ
लक्ष्मी पथ, पुणें - २.

चंद्रशेखर गोविंद आगाशे,
मॅनेजिंग एजण्टस्

अनुक्रमणिका

भारत का किसान अपनी खेती में से फ़सल की अधिक से अधिक और निश्चित वृद्धि की ओर कदम बढ़ा रहा है। ग्रामसुधार और खेती-विकास की योजनाओंकी कार्य तत्परता से बढ़े इसी हेतु से किर्लोस्कर एंजिनों की निर्मिति की गयी है, और इसीलिए भारत में अन्य सब एंजिनों की एकत्रित बिक्री की अपेक्षा किर्लोस्कर एंजिनों की खपत ज़्यादह है। अधिक जानकारी के लिए लिखिए।

किर्लोस्कर
डीझेल एंजिन

किर्लोस्कर ऑईल एंजिन्स लि., खडकी, पुणें ३.

अनुक्रमणिका

